THE BOOK WAS DRENCHED

प्रेम-पत्र

(द्वितीय भाग)

परम गुरु हुज़ूर महाराज

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186666

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H294.554 H98P Accession No. 2.G1 H2936

Author

Title હુજૂર મહારાજ પ્રેમપત્ર પ્રથમ ભાગ 1952

This book should be returned on or before the date last marked below.

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

प्रेम-पत्र

(द्वितीय भाग)

परम गुरु हुज़ूर महाराज

(ALL RIGHTS RESERVED)

– प्रकाशक –
राधास्वामी सतसंग सभा,
दयालबाग़

राधास्वामी संवत् १३४

सन् १९५२ ई०

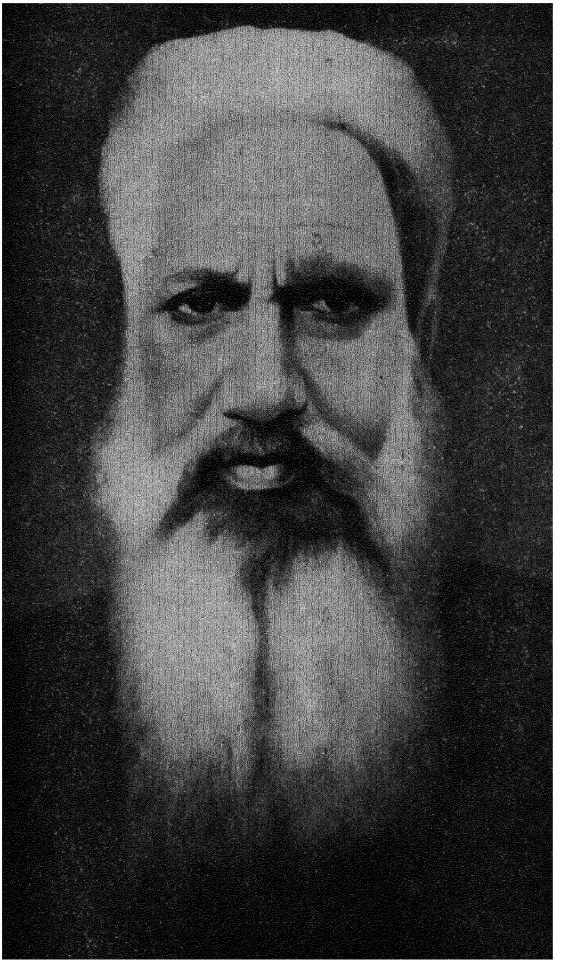
Printed at the Dayalbagh Press, Dayalbagh, Agra

निवेदन

राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य परम गुरु हुज़ूर महाराज ने सन् १८८७ ई० में पोस्ट मास्टर जनरल यू० पी० के ओहदे से रिटायर होकर पीपलमंडी आगरा में मुस्तक़िल तौर पर सतसंग का सिलसिला जारी फ़रमाया और राधास्वामी मत और दूसरे मतों के सिद्धान्तों पर बचनों द्वारा जो अद्भुत प्रकाश डाला उसका कोई वार पार नहीं है। हैडक्वार्टर से बाहर के सतसंगियों को और दूसरे प्रेमी सज्जनों को भी इन बचनों से लाभ पहुँचाने की ग़रज़ से एक पाक्षिक पत्रिका भी जारी फ़रमाई जिसमें यह बचन सबसे पहिले प्रकाशित किये गए और जो बाद में 'प्रेमपत्र' नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये।

सतसंगी भाइयों के हृदय में इन बचनों के लिए विशेष आदर और प्रेम है। इसी कारण राधास्वामी सतसंग सभा ने प्रेमपत्र का प्रथम भाग पिछले अक्तूबर के महीने में प्रकाशित किया था। इस सिलसिले में अब प्रेमपत्र का दूसरा भाग बसंत के इस शुभ अवसर पर प्रकाशित किया जाता है। आशा है प्रेमी सज्जन इससे लाभ उठाएँगे।

दयालबाग़ (आगरा) — प्रकाशक —
बसंत पंचमी, ३१ जनवरी १९५२



परम गुरु हुज़ूर महाराज

प्रेम-पत्र

(द्वितीय भाग)

सूचीपत्र

नं०	बचन	पृष्ठ
१	राधास्वामी मत वालों का बरताव अपने मन और इंद्रियो के साथ ...	१
२	राधास्वामी मत वालों का बरताव साथ अपने कुटुम्ब परिवार और बिरादरी के ...	७
३	राधास्वामी मत में जो हुक्म दिये हैं, उनके मानने के वास्ते जुगत भी बताई है। और मतों में यह बात बहुत कम पाई जाती है ...	११
४	होशियार करना राधास्वामी मत के अभ्यासियों को वास्ते सम्हाल अपने मन और इंद्रियों के और दुरुस्ती से करने अभ्यास के अंतर में ...	२१
५	राधास्वामी मत में जो गुरुभक्ति जारी है, उस पर तान मारने वालों का जवाब और वर्णन इस बात का कि सच्चे परमार्थ और सच्चे उद्धार की प्राप्ति के लिये अपने समय के भेदी और अभ्यासी मनुष्य स्वरूप गुरु से मिलना और उनके साथ दीनता और भाव और प्यार करना बहुत जरूर है ...	३८
	अर्थ शब्द नम्बर २३, बचन ४१, पोथी सार बचन नज़म	५१
६	राधास्वामा मत करनी का है, सिर्फ़ विद्या और बुद्धि के समझ और विचार का नहीं है ...	५५
७	संग का बयान ...	६५
	अर्थ शब्द नं० १३, बचन ४१, सार बचन नज़म ...	७१

नं०	बचन	पृष्ठ
८	सब जीवों को, जो कुल मालिक राधास्वामी दयाल के बाल बच्चे हैं, अपने निज घर और सच्चे माता पिता की सुध लेकर चलने और उनके चरणों में पहुँचने का जतन करना चाहिये ...	७३
९	परमार्थी को सतसंग में और सतगुरु के सन्मुख मुआफ़िक़ परमार्थ की रीति और क़ायदों के बरताव करना चाहिये	८०
१०	संतों के बचन हरचंद अधिकारी प्रति हैं, पर कुल जीवों को अपनी २ ताक़त के मुआफ़िक़ उनका मानना और उनके मुआफ़िक़ अपनी रहनी और बरतावा दुरुस्त करना ज़रूर चाहिये ...	८६
११	राधास्वामी मत केवल दया का मत है और इस मत में जीव का उद्धार सहज होता है ...	९२
१२	चेत कर सतसंग और अभ्यास करके परमार्थी चिन्ता और खटक हृदय में पैदा करना कि जिससे पूरा काम बन जावे	१०३
१३	मज़बूत करना प्रतीति और प्रीति का राधास्वामी दयाल के चरण कँवल में ...	१०८
१४	वर्णन प्रीति और प्रतीति का गुरु चरनन में ...	१२५
१५	राधास्वामी मत संदेश ...	१४३
१६	राधास्वामी दयाल के चरणों में जैसी तैसी प्रीति करना चाहिये, तब सहज २ सच्चा उद्धार होता जावेगा और एक दिन काम पूरा बन जावेगा ...	२२०
१७	हर शख़्स को अपने जीव चैतन्य के भंडार का खोज और पता लगाकर वहाँ पहुँचने का जतन करना चाहिये कि जिससे परम आनन्द को प्राप्त होवे और जन्म मरण और देह के दुख सुख से बचाव हो जावे	२२८
	अर्थ शब्द नम्बर २, सार बचन नज़्म बचन ४१ ...	२३६
१८	मालिक का संसार में नर रूप धर कर औतार लेना जीवों के सच्चे उद्धार और कल्याण के वास्ते निहायत दर्जे की दया और मेहर का निशान है ...	२४०
१९	इतसे मोड़ और उतको जोड़ यानी संसार और माया के पदार्थों से चित्त को हटा कर राधास्वामी दयाल के चरणों में यानी स्वरूप और शब्द की धार में जोड़ना चाहिये	२५१

नं०	बचन	पृष्ठ
२०	मन और सुरत का मुख अंतर में ऊपर की तरफ़ मोड़ने और आहिस्ता २ चढ़ाने में हमेशा सुख और आनन्द ज़्यादा से ज़्यादा मिलेगा और दुख और तकलीफ़ और चिंता दूर और कम होते जावेंगे। इस वास्ते यह अभ्यास कुल जीवों को, चाहे औरत होवे या मर्द वास्ते अपने असली फ़ायदे के करना लाज़िम और मुनासिब है ...	२५६
२१	वर्णन रोशन और अँधेरी किरणियों का जो कि पिंड और ब्रह्मांड की रचना में चैतन्य और जड़ की प्रकट अंश हैं और उपदेश वास्ते पहुँचने निर्मल चैतन्य यानी हमेशा नूरानी देश में, जहाँ अँधेरा यानी काल और माया बिलकुल नहीं है ...	२६६
	अर्थ शब्द १२, बचन ४१, सार बचन नज़्म ...	२७५
२२	चैतन्य को विशेष चैतन्य और महा चैतन्य से मेल करना चाहिए, न कि सामान्य चैतन्य और जड़ से ...	२७७
२३	ध्यान में आसानी अभ्यास की और भजन में किसी क़दर कठिनता का वर्णन ...	२८७
२४	वर्णन निर्मल और कपट या लपेट की भक्ति का ...	२६६
२५	सच्चे परमार्थ की कमाई के वास्ते सच्ची और निर्मल चाह और प्यार और ख़ौफ़ ज़रूर है और जो यह बातें न होंगी तो जो कुछ कार्रवाई परमार्थ की की जावेगी, वह कर्म में दाख़िल होगी, प्रेम और भक्ति की तरक़्क़ी नहीं होगी ...	३०५
२६	सतसंग अंतर और बाहर सम्हाल कर करना चाहिए, तब फल और फ़ायदा उसका प्रगट होगा ...	३१४
२७	जीवों को वास्ते बचाव तकलीफ़ और दुखों से और प्राप्ति सच्चे और अमर सुख और आनन्द के, अपने घट में संतों की जुगत के मुआफ़िक़ स्वरूप का ध्यान और शब्द के सुनने का थोड़ा बहुत अभ्यास ज़रूर करना चाहिये ...	३२४
२८	साध के संग की महिमा और उसका फ़ायदा, जो सच्ची दीनता और प्रेम के साथ संग किया जावे ...	३३०
२६	वर्णन महिमा सुरत शब्द मार्ग और संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और दया	

नं०	बचन	पृष्ठ
	का कि जिससे सहज में जीवों का सच्चा उद्धार होता है ...	३४०
३०	क़ुदरती सबूत इस बात का कि सिर्फ़ राधास्वामी मत में असल भेद सच्चे मालिक और उसकी क़ुदरत का और सच्चा और पूरा तरीक़ा जीव यानी सुरत के सच्चे और पूरे उद्धार का वर्णन किया है और जिसके समझने और अभ्यास करने के वास्ते कुछ ख़ास ज़रूरत विद्या के पढ़ने की नहीं है यानी राधास्वामी मत के भेद और जुगत को मर्द और औरत, पढ़े लिखे और अनपढ़, सब आसानी से समझ सकते हैं और उसका अभ्यास मेहर और दया से बेख़तरे और निर्विघ्न कर सकते हैं ...	३५२
३१	वर्णन इस बात का कि संत मत के मुआफ़िक़ राधास्वामी पद कुल का आख़ीर और सिद्धांत है और यही अपार और अनन्त है। इसके परे और कोई पद नहीं है और न हो सकता है ...	३६५
३२	शब्द द्वारे सुरत अपने निज घर में (जो कि राधास्वामी धाम है) पहुँच सकती है। और द्वारों से धुर मंज़िल तक नहीं पहुँचेगी, कहीं न कहीं रास्ते में अटक रहेगी और कारज पूरा नहीं बनेगा ...	३७०
३३	मन और सुरत नौ द्वारों से झाँक कर इस लोक के भोगों में फँस गये हैं। सो दसवें द्वार की तरफ़ झाँकने और चलने से उन बंधनों से छुटकारा होगा और संत सतगुरु की दया से एक दिन निज घर में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होंगे ...	३६१
	अर्थ शब्द ५, बचन ३५, सारबचन नज़्म ...	४०३
	अर्थ शब्द १६, बचन ४१, सार बचन नज़्म ...	४०७
३४	कुल मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा और भेद सुन कर हर एक जीव को (जो उनके बाल बच्चे हैं) शौक़ मिलने का बिछुड़े हुए बालक के मुआफ़िक़ पैदा करके और सतगुरु से चलने की जुगत दरियाफ़्त करके दिन दिन बिरह और प्रेम अंग के साथ रास्ता तै करना चाहिए ...	४१०
३५	बचन मुतफ़र्रिक़ पिछले महात्माओं के ...	४१६

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

प्रेम-पत्र

(भाग २)

बचन—१

राधास्वामी मत वालों का बरताव अपने मन और इंद्रियों के साथ

१—जो कोई सच्चा होकर परमार्थ में लगे और राधास्वामी मत में शामिल होकर उसके मुआफ़िक़ अभ्यास शुरू करे, तो उसको चाहिये कि अपने मन और इन्द्रियों की चौकीदारी करने की आदत डाले, यानी इनकी चाल ढाल की निरख परख करता रहे कि फ़ज़ूल कामों और फ़ज़ूल ख़्यालों और फ़ज़ूल चीज़ों में किस क़दर मन और इन्द्रियाँ बहती रहती हैं और उन कामों और ख़्यालों और चीज़ों से इनको, जब जब उस तरफ़ को जावें, रोकता रहे।

२—यह काम एक दिन या जल्दी का नहीं है। जन्मान-जन्म[1] और जुगानजुग[2] और सालहासाल[3] से यह मन इंद्रियों के वसीले[4] से मुनासिब और नामुनासिब और ज़रूरी और फ़ज़ूल ख़्यालों और कामों और पदार्थों में भटकता रहता है और कहीं भी इसको पूरी शान्ति या ठहराऊ आनंद,

१—अनेक जन्मों से। २—अनेक युगों से। ३—वर्षों से। ४—ज़रिये।

कि जिसके पीछे फिर तृष्णा या इच्छा उससे बढ़ कर दूसरे भोग की पैदा न होवे, नहीं मिलता है। इस सबब से यह मन हमेशा दुखा और भोगों की चाह की चिंता में सदा मलीन और उदास रहता है और जब देखो किसी न किसी मतलब के वास्ते जतन यानी मेहनत और मशक्कत करता रहता है।

३—असल बात यह है कि असली स्थान सुरत यानी रूह का राधास्वामी के चरणों से लगा कर सत्तलोक तक है और असली स्थाल मन का त्रिकुटी में है। और जोकि[1] वहाँ का थोड़ा बहुत सुख और आनंद यह मन भोगे हुए है और उसी स्थान के मसाले का इसका ख़मीर[2] है, इस सबब से यह मन जब तक कि उलट कर त्रिकुटी में न जावेगा, तब तक नीचे के स्थानों में भूल और भरम करके हर एक काम और ख़्याल और पदार्थ में उस असली स्थान के आनंद को ढूँढता है और जैसे जैसे अपने अपने संगियों से जिस जिस बात या पदार्थ की महिमा और उसकी प्राप्ति में आनंद और मान बड़ाई वग़ैरह का हाल सुनता है, उसी मुआफ़िक़ उस पदार्थ के हासिल करने के लिये मेहनत और जतन करता है। और जब वह पूरा आनंद नहीं मिलता, तब उसी पदार्थ और उसी काम से चित्त इसका किसी क़दर हट जाता है, यानी फिर उसकी तरफ़ इसकी वैसी तवज्जह नहीं रहती है और दूसरे पदार्थों या कामों या ख़्यालों की तरफ़, जिनकी ज़्यादा तारीफ़ सुनी

१—चूँकि। २—बनावट।

है, लग जाता है। और ऐसे ही कभी किसी और कभी किसी चीज़ में इसका शौक़ लगता रहता है और कभी ख़ाली नहीं रहता है, यानी अपनी चंचलता नहीं छोड़ता है।

४—सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि अपने मन और इन्द्रियों की चाल की जाँच करता रहे और जब वह नामुनासिब और ग़ैर-ज़रूरी और फ़ज़ूल ख़्यालों या कामों में तवज्जह करें, उसी वक़्त या जिस क़दर जल्दी होश और समझ आवे, उनको रोक कर या तो चरणों की तरफ़ अपने अंतर में लगावे या सुमिरन और ध्यान करे या पोथी का पाठ करे और नहीं तो जो ज़रूरी और मुनासिब कार या ख़्याल दुनियावी होवे, उसमें लगावे। ख़ुलासा[1] यह कि मन और इन्द्रियों को बाहर की तरफ़ या अपने अन्तर में नीचे की तरफ़ बेफ़ायदा बहने से जहाँ तक मुमकिन होवे रोकता रहे और जब कभी इसका बल पेश न जावे, तब चरणों में प्रार्थना करे और अपनी नालायक़ी पर अफ़सोस करके आइंदा को हिम्मत बाँधे कि फिर ख़्याल या तरंग[2] के उठते ही रोक लगाऊँगा। और जब ऐसा मौक़ा होवे, उस वक़्त फ़ौरन् नाम के सुमिरन या स्वरूप के ध्यान या शब्द के श्रवण में लग जावे। तो वह तरंग, जो बहुत ज़बर न होगी, हट जावेगी और जो पूरी पूरी न हटा सके, तो भी इस खैंचातानी में उसका ज़ोर बहुत कम हो जावेगा, यानी यह उसको ऊपर की तरफ़ खींचेगा और वह तरंग नीचे या बाहर की तरफ़। जो इसकी ताक़त

१—सारांश। २—मन की लहर।

ज़बर होगी तो वह तरंग दूर हो जावेगी और मन अंतर में चरणों में लग जावेगा और जो तरंग ज़बर हुई, तो भी उसका ज़ोर बहुत घट जावेगा और धार उसकी बाहर या नीचे की तरफ़ बहुत कमज़ोर होकर जारी होगी। इसी तौर[१] से लड़ाई करते करते अभ्यासी की ताक़त बढ़ती जावेगी और फिर वह हर क़िस्म की तरंग को उसके उठते ही राधास्वामी दयाल की दया से जीत सकेगा।

५—मालूम होवे कि मन और उसकी तरंग[२] का ऐसा हाल है कि जब ख़्याल करके अंतर में पहिले हिलोर होकर कोई तरंग काम, क्रोध, लोभ, मोह या अहंकार या दस इंद्री के भोग की प्रगट हुई और इस शख़्स ने उसको मदद देकर बढ़ाना शुरू किया और उसकी धार बढ़कर उस इन्द्री के द्वारे तक आ गई कि जिस इन्द्री के विषय का भोग लेना मंज़ूर है, तो इस वक़्त जो कोई अभ्यासी उस तरंग की धार को रोकना या उलटाना चाहे, तो उसका उलटाना बहुत मुश्किल मालूम होवेगा। जो किसी तरह से उस वक़्त वह भोग नहीं भोगा जा सकता है, तो यह तरंग की धार दूसरा रूप धर के बाहर निकलेगी, यानी अकसर तो वह क्रोध रूप धर कर प्रगट होवेगी और अभ्यासी इसके रोकने में अपने आपको बे-इख़्तियार[३] और बेताक़त[४] देखेगा। एक तरकीब से अलबत्ता यह तरंग की धार उलट सकती है और वह सच्चा ख़ौफ़ और सच्चा रंज और सच्ची शर्म और हया[५] है, यानी जब तेज़ ख़ौफ़ ग़ालिब[६] होवे, या अपनी बेइज़्ज़ती

१—ढंग। २—लहर। ३—बेक़ाबू। ४—निर्बल। ५—लज्जा। ६—क़ायक़।

का ख़याल दिल में पैदा हो जावे, या कोई सख़्त मुसीबत या रंज का खटका[1] मन में आ जावे, तो उस वक़्त कैसी ही ज़बर तरंग किसी किस्म की क्यों न होवे, फ़ौरन् इन्द्री द्वार से लौट कर मन की मन में समा जावेगी।

६—इसी वास्ते सच्चे परमार्थियों ने ख़ौफ़ और रंज और फ़िक्र को वास्ते इलाज अपने मन की बीमारी के मुक़द्दम[2] रक्खा है। बल्कि बाज़ों ने अपने मालिक से आप यह बात माँगी है कि किसी क़िस्म की बीमारी यानी रोग और किसी किस्म की चिंता उनको ज़रूर बख़्शिश होवे कि उसके सबब से उनका मन किसी क़दर दुबला और कमज़ोर रहा आवे और भोगों में बहुत चंचलता न करे। संतों ने डर की महिमा इस तौर पर करी है—

दोहा

डर करनी डर परम गुर, डर पारस[3] डर सार[4]।
डरत रहै सो ऊबरे[5], ग़ाफ़िल खाई मार॥

और रोग और सोग और चिंता की निस्बत ऐसा कहा है—

रोगी सद जीवत रहे, बिन रोगहि मर मर जाय॥
सोगी[6] नित हर्षत रहे, बिन सोग चौरासी जाय॥
चिन्ता में जो नित रहे, सो मिले अचिन्ते[7] आय॥

खुलासा यह है कि जो अपने मन को चिंता में परमार्थ के रक्खेगा और सच्चे मालिक और सतगुरु की अप्रसन्नता का ख़ौफ़ दिलाता रहेगा और अपने प्रीतम के

१—अंदेशा। २—ज़रूरी। ३—पारस पत्थर। ४—असली वस्तु। ५—बच जाता है। ६—दुखी। ७—अचिन्त पुरुष।

बिछुड़ने यानी जुदाई का सोग और रंज उसके मन में जब तब पैदा होता रहेगा और दुनियाँ और अपने मन की बीमारी का हाल देखकर सुस्त और उदास होता रहेगा, वही शख़्स जल्दी मन और इन्द्रियों को क़ाबू में लावेगा और परमार्थ का असली फ़ायदा उठावेगा।

और चंचल मन हमेशा धक्के खाता रहेगा, क्योंकि उसको दरबार में दख़ल नहीं मिल सकता और रास्ते ही में से काल और माया उसको उसकी चाह के मुआफ़िक़ अनेक तरह की तरंगें उठवा कर गिरा देंगे, यानी नीचे की तरफ़ को वापिस कर देंगे और उसकी चढ़ाई नहीं होने देवेंगे।

७—अब विचारना चाहिये कि सच्चे परमार्थी को किस क़दर ज़रूरत अपने मन और इन्द्रियों की सम्हाल की है। इसी का नाम निरख और परख है। निरख से यह मतलब है कि अपने मन और इन्द्रियों की चाल पर नज़र रक्खे और परख यह कि जब वे ग़ैरवाजिब या नामुनासिब या ग़ैर-ज़रूरी और फ़ज़ूल कामों या ख़्यालों या चीज़ों या बातों में लगें, तो उसी वक़्त उनको उस तरफ़ से हटा कर मुनासिब और फ़ायदेमंद काम और ख़्याल में लगावे। बहुत से इल्मवाले लोग भी अपना बरताव और व्यवहार बहुत सम्हाल के साथ रखते हैं और अपना वक़्त फ़ज़ूल कामों या बातों में ख़र्च नहीं करते। फिर परमार्थी पर तो उनसे भी ज़्यादा फ़र्ज़ है कि अपने वक़्त की सम्हाल रक्खे कि बेफ़ायदा ख़र्च न होवे और अपने मन और इन्द्रियों को भी रोक रक्खे कि नामुनासिब और फ़ज़ूल

कामों और बातों की तरंग न उठावें। तब कोई दिन के इस क़िस्म के अभ्यास से वह अपने मन और इन्द्रियों की सच्ची और पूरी चौकीदारी और सम्हाल कर सकेगा और फिर परमार्थ का गहरा फ़ायदा हासिल करता जावेगा।

बचन—२

राधास्वामी मत वालों का बरताव साथ अपने कुटुम्ब परिवार और बिरादरी के

१—राधास्वामी मत के अभ्यासियों को हुक्म है कि अपने घर में रह कर और पेशा या रोज़गार बदस्तूर[1] जारी रख कर, जो जुगत कि उनको बताई जावे, उसका अभ्यास दो बार, तीन बार या चार बार हर रोज़ एक एक घंटे या कुछ कम करते रहें और दुनियाँ की फ़ज़ूल और बेफ़ायदा चाहें उठानी मौक़ूफ़ करें। और जिस वक्त अभ्यास करें, उस वक्त तो ज़रूर इस क़दर होशियारी रक्खें कि दुनियाँ के ख़याल उनके मन में, जहाँ तक मुमकिन होवे, न आवें और जो बग़ैर इरादे के ऐसे ख़याल उठें, तो उनको जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे हटा देवें।

२—सतसंगी को चाहिये कि अपने कुटुम्ब परिवार के संग प्रीति भाव के साथ बरताव करे और जिसका जो हक़ होवे, जहाँ तक मुमकिन होवे, उसको अदा करे[2]। जो कुटुम्बी इसके साथ सच्चे परमार्थ में शामिल हो जावें तो बहुत अच्छा, नहीं तो एक, दो या तीन मरतबा इसको चाहिये कि उनको राधास्वामी मत की बड़ाई और उसके

१—हस्बमामूल। २—देवे।

अभ्यास का फ़ायदा खोलकर समझावे। जो यह बात उनकी समझ में आजावे और वे अपनी राज़ी से जिस क़दर शामिल होवें, उनको अपने साथ परमार्थ में लगा लेवे और जो वे टेकी[१] या कर्मी और भरमी होवें और संतों के बचन को न मानें और भेष और पंडितों की चाल के मुआफ़िक़ अपना बरताव जारी रक्खें, तो राधास्वामी मत के अभ्यासी को चाहिये कि उनके साथ ज़िद और अदावत[२] न करे। उनको उनके हाल पर छोड़ देवे और दुनिया का व्यवहार उनके साथ बदस्तूर बरतता रहे।

३—जो इसके कुटुम्बी बेफ़ायदा झगड़ा और लड़ाई इसके साथ इस निमित्त[३] करें कि यह राधास्वामी मत को छोड़ कर उन्हीं का संग देता रहे, तो (जो इसकी समझ में राधास्वामी मत की बड़ाई अच्छी तरह आगई है) उनसे साफ़ कह देवे कि वह उनका संग नहीं दे सकता है, चाहे वे उससे प्रीति भाव और दुनियाँ के व्यवहार का बरतावा रक्खें या नहीं, लेकिन उनके दीन और दुनियाँ के मुआमले में किसी तरह से दख़ल न देवे। जिस तरह का परमार्थ और व्यवहार उनको भावे[४] वे बदस्तूर करते रहें, धन की मदद जिस क़दर हो सके उनकी करता रहे, और एहतियात रक्खे कि इसकी बेपरवाही के सबब से उनको किसी तरह की तकलीफ़ न होवे।

४—जो इसकी स्त्री और पुत्र परमार्थ में इसके संगी हो जावें और माता पिता और भ्राता और बहन भी संग

१—टेक रखने वाले। २—दुश्मनी। ३—कारण। ४—पसंद आवे।

देवें, तो इन सब की ज़्यादा ख़ातिरदारी और प्यार भाव करे, क्योंकि यह सब धुर मंज़िल तक का संग देकर आख़िर को सब मिल के एक ही स्थान यानी सत्तलोक और राधास्वामी धाम में बासा पावेंगे और जब तक दुनियाँ में उनका संग है तब तक एक दूसरे को दोनों काम में यानी स्वार्थ और परमार्थ में मदद देवेंगे। धन्य भाग हैं ऐसे सतसंगी के कि जिसका कुल घर परमार्थ में उसके शामिल है। और जो सब शामिल न होवें और थोड़े से ही, जैसे स्त्री और पुत्र, शामिल होवें तो भी भागवान[1] है कि उसको घर में भी मदद मिल सकती है और सतसंग में भी मदद तैयार है।

५— अपनी बिरादरी से भी राधास्वामी मत के सतसंगी को जहाँ तक मुमकिन होवे ऐसी होशियारी और सम्हाल के साथ बरताव करना चाहिये कि जिसमें कोई झगड़ा और बखेड़ा पैदा न होवे और न किसी से दुश्मनी या अदावत क़ायम होवे। हर जगह और हर हालत में दीनता यानी नियाज़मंदी बड़ा भारी असर वाला औज़ार[2] काम देने के वास्ते सतसंगी के पास मौजूद रहता है। जहाँ जैसा मौक़ा और मुनासिब देखे, वहाँ उसी मुआफ़िक़ कार्रवाई करे। और बेपरवाही और धमकी और सख़्ती के बचन किसी से या किसी की निस्बत[3] ज़बान से निकालना मुनासिब नहीं। इसमें नाहक़[4] तकरार[5] और फ़िसाद खड़ा होता है और सतसंगी को फ़िसाद और झगड़े को हमेशा जहाँ तक मुमकिन होवे, बचाना चाहिये, ताकि उसके परमार्थ में ख़लल[6] और नुक़सान न आवे।

१—ख़ुशकिस्मत। २—हथियार, ज़रिया। ३—बारे में। ४—व्यर्थ। ५—झगड़ा। ६—विघ्न।

६—अपने दोस्तों से भी राधास्वामी मत के सतसंगी को प्यार भाव के साथ बरताव रखना चाहिये, पर जो वे और रिश्तेदार और बिरादरी के लोग जब जब मिलें इसके परमार्थ की हँसी या खिल्ली[1] उड़ावें और तान और तंज़ के बचन कहते रहें, तो एक, दो या तीन बार उनको सहूलियत के साथ जवाब साफ़ देकर उनकी ग़लती पर उनको ख़बरदार कर देवे और राधास्वामी मत की महिमा और बड़ाई उनके रूबरू[2] बयान कर देवे। और जो फिर भी वे अपनी आदत हँसी और खिल्ली की न छोड़ें और जब जब मिलें तब तब उस सतसंगी के साथ छेड़छाड़ करते रहें, तो मुनासिब है कि उनसे कम मिले और अपने वक़्त फ़ुरसत को सुमिरन ध्यान या भजन या पाठ में लगाना शुरू कर देवे। राधास्वामी दयाल की मेहर से वे सब आहिस्ता २ आपही उस सतसंगी की तरफ़ से हट कर अलहदा सोहबत इख़्तियार कर लेंगे और इससे आइंदा को बहुत सरोकार[3] न रक्खेंगे। जब ऐसी सूरतें होती जावें तो जानो कि राधास्वामी दयाल की दया है कि वे आप अपने अभ्यासी सतसंगी का पीछा हर एक से छुड़ाते जाते हैं और एक दिन इसी तरह सब रिश्ते और डोरियों को बिलकुल ढीला करके सुरत को सहज में अपने निज घर में पहुँचा देवेंगे।

७—सतसंगी को चाहिये कि जो उसके घराने में पुरानी रस्में जारी हैं और उसके कुटुम्बी उनको बिरादरी के ख़ातिर[4] बदस्तूर रखना चाहें, तो उनको उन रस्मों में बरतने देवे। और जो वे परमार्थ में इसका संग दे रहे हैं, तो

१—मज़ाक। २—सामने। ३—ताल्लुक़। ४—लिए।

इसको भी मुनासिब है कि ज़ाहिरी तौर पर उन रस्मों में अपने कुटुम्बियों का संग देवे और अंतर में यह भी और कुटुम्बी भी राधास्वामी का ध्यान करें। इसमें किसी तरह का परमार्थी हर्ज नहीं होगा। जब तक सतसंगी गृहस्थ में बैठा है, तब तक उसको अपनी बिरादरी से थोड़ा बहुत व्यवहार रखना ज़रूर और मुनासिब है और इस वास्ते उनकी ख़ातिर कोई कोई पुरानी रस्म और चाल भी जारी रखना मुनासिब है। और जिसमें बिरादरी के शरीक होने या दख़ल देने की ख़ास ज़रूरत नहीं है, उस रस्म में कमी बेशी करने का इख़्तियार है। और जिस रस्म के सबब से कोई ख़ास तकलीफ़ या नुक़सान या मुश्किल उठानी पड़े और ऐसी रस्म को बदलना मुनासिब मालूम होवे और बिरादरी का उसमें ख़ास दख़ल नहीं है, तो इख़्तियार है कि उस रस्म को जिस तौर से मुनासिब होवे बदल देवे, पर इस क़दर एहतियात रक्खे कि कोई काम अहंकार और ज़बरदस्ती (और लोगों के दिल दुखाने को) दिखावे के साथ न करे कि इसमें नाहक़ तकलीफ़ और नुक़सान उठाना पड़ेगा।

बचन—३

राधास्वामी मत में जो हुक्म दिये हैं, उनके मानने के वास्ते जुगत भी बताई है। और मतों में यह बात बहुत कम पाई जाती है।

१—मालूम होवे कि हर एक मत में हुक्म दिये गये

हैं, कोई मानने के वास्ते और कोई छोड़ने के वास्ते। इन हुक्मों का पढ़ लेना और ज़बान से कह देना और सुना देना बहुत आसान है, पर उनके मुआफ़िक़ बरताव करना इस तौर पर कि जो बात करना चाहिये उसको थोड़ा बहुत ज़रूर करना और जो बात मना है उसको जहाँ तक मुमकिन होवे न करना, यह काम बहुत मुशकिल है, क्योंकि इस बरताव में मन और इंद्रियों पर चोट पड़ती है और उस चोट की बरदाश्त हर किसी को नहीं हो सकती है।

२—यही सबब है कि कुल मतों में (१) बहुत से लोग तो अपने मत से बिलकुल नावाक़िफ़ यानी मूर्ख हैं और (२) जो थोड़ी बहुत समझ बूझ रखते हैं वह वाचक हैं, यानी ज़बानी अपने मत के हुक्म और क़ायदे सब सुना सकते हैं पर उनके मुआफ़िक़ बरताव बिलकुल नहीं है और (३) कोई बिरले यानी बहुत कम ऐसे लोग होंगे जो थोड़ी बहुत कोशिश हुक्म और क़ायदों के मुआफ़िक़ अपना बरताव दुरुस्त करने को कर रहे हैं और जाँच कर देखते हैं कि उनकी मेहनत और कोशिश बहुत कम फ़ायदा देती है, यानी मन और इंद्रियाँ और उनकी तरंगें बहुत ज़बर हैं और उनकी रोक और अटक[1] बहुत मुश्किल बल्कि नामुमकिन मालूम होती है।

३—इससे ज़ाहिर है कि जितने हुक्म हर एक मत के आचार्य ने दिये हैं, वह सब बेकार और बेफ़ायदा हो गये, क्योंकि आम तौर पर उनके मुआफ़िक़ कार्रवाई कहीं नज़र

१—रोक टोक।

नहीं आती है, बल्कि बहुत से मुआमलों में साफ़ उन हुक्मों के बरख़िलाफ़ यानी उलटा बरताव होता है और फिर वे लोग अपनी उलटी कार्रवाई देख कर न शरमाते हैं न पछताते हैं और न ख़ौफ़ मालिक या अपने आचार्य का दिल में लाते हैं। अब किस तरह यक़ीन किया जावे कि इस क़िस्म के लोग अपने आचार्य का हुक्म मानते हैं, या उनसे उम्मीद अपने उद्धार की रखते हैं ? ऐसे लोगों की कार्रवाई पर पूरा पूरा भरोसा और एतबार[1] न दुनियाँ के मुआमलों में हो सकता है न दीन के मुआमले में, क्योंकि जब उनका कोई ख़ास मतलब या नफ़े का मुआमला होगा, उसमें फ़ौरन् अपना बुद्धि और चतुराई के साथ सत्य और असत्य और हक़ और नाहक़ और दूसरे का नुक़सान और हक़तल्फ़ी[2] का ख़्याल छोड़कर जो कुछ कार्रवाई होगी, उसको फ़ौरन् अपने दुनियाँ के मतलब के पूरा करने के वास्ते उलट पलट कर देंगे।

४—कोई कोई मत में ऐसा लिखा है कि जो कोई हुक्मों को न मानेगा वह जहन्नुम यानी नरकों में सज़ा पावेगा और उद्धार उसका नहीं होगा। पर यह डर बहुत कम असर लोगों के दिल पर पैदा करता है क्योंकि प्रत्यक्ष यानी मौजूदा हाकिम का ख़ौफ़ सज़ा वग़ैरह का यह मन बहुत कम मानता है और अनेक तरह की तदबीर और जुगती निकाल कर क़ानून के पंजे से अपनी निकासी[3] ढूँढ़ लेता है, फिर ग़ायब हाकिम यानी मालिक का डर कौन माने ?

१—विश्वास। २— हक़मारने। ३—बचाव।

सिवाय इसके विद्या और बुद्धिवान् लोगों ने बहुत सी किताबें हर एक मत में ऐसी बनाई हैं कि जिससे लोगों के दिल से इस बात का यक़ीन भी जाता रहा कि आया नरक, चौरासी और जहन्नुम वग़ैरह मौजूद हैं। बल्कि ऐसी समझौती उनको दी गई है कि यह मुक़ामात और सज़ायें वास्ते डराने और धमकाने नादान[1] जीवों के उस्ताद लोगों ने अपनी मान बड़ाई और धन पैदा करने के मतलब से तजवीज़ की हैं और असल में उनका कहीं वजूद[2] नहीं है।

५—इस तौर पर आम लोग हर एक मत में थोड़े या बहुत निडर होकर बरतते हैं और वहाँ के हुक्मों के मानने या न मानने की कुछ परवाह नहीं करते। और जो लोग कि अफ़सर और आम लोगों के अगुआ और समझाने बुझाने वाले हैं, वे आपही उन हुक्मों पर जैसा कि चाहिये नहीं चलते, फिर औरों की सम्हाल उनसे क्या हो सकती है ?

६—यहाँ तक हाल और मतों का बयान किया गया। अब राधास्वामी मत का हाल लिखा जाता है कि इस मत में जितने हुक्म हैं, वह बतौर नसीहतनामे[3] के लिखे गये हैं और यह उपदेश है कि उनका मानना वास्ते अपने फ़ायदे और भले के जीवों को मुनासिब और ज़रूर है।

७—और उन हुक्मों के साथ ही उपदेश वास्ते कमाने सुरत शब्द योग के लिखा गया है कि जब तक कोई अभ्यास करके अपने मन और सुरत को इन्द्री घाट से हटा कर ऊँचे की तरफ़ अपने घट में नहीं चढ़ावेगा,

१—मूर्ख। २—अस्तित्व। ३—हिदायतों।

तब तक उसका उद्धार नहीं हो सकता है।

८—और यह भी संग संग उपदेश है कि कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की, जो घट घट में मौजूद हैं, सच्चे मन से सरन लेकर जो कोई अभ्यास में लगेगा, उसी को मेहर और दया प्राप्त होगी और वही मेहर और दया आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उसके जीव का सच्चा उद्धार कर देगी, यानी उसकी सुरत को सत्तलोक और राधास्वामी के चरणों में पहुँचा देगी कि जहाँ पहुँच कर वह अमर[1] और अजर[2] आनंद पाकर हमेशा को मगन और सुखी हो जावेगी और जन्म मरण और दुख सुख के झगड़ों से हमेशा को उसका बचाव हो जावेगा।

९—और राधास्वामी मत में यह भी पहिले ही समझाया जाता है कि जो कुछ रचना बाहर ब्रह्मांड वगैरह में मौजूद है, वह सब छोटे नमूने के तौर पर हर एक आदमी के पिंड में मौजूद है और जो कि कुल मालिक सब जगह मौजूद कहा जाता है, तो हर एक जीव के संग उसके पिंड में भी मौजूद है। इस वास्ते सच्चे मालिक से मिलने का रास्ता राधास्वामी मत में हर एक जीव के घट में बताया जाता है।

१०—अब मालूम करो कि कर्म तीन क़िस्म के हैं—एक संचित कर्म जो कि आइंदा जन्मों में भोगे जायँगे, दूसरे प्रारब्ध कर्म जो कि इसी जन्म यानी देह में भोगने पड़ेंगे और तीसरे क्रियमाण कर्म जो इस जन्म में बनते

१—हमेशा रहने वाला। २—कभी नाश न होने वाला।

हैं और जिनका फल कुछ इसी जन्म में और कुछ आगे के जन्मों में भोगना पड़ेगा। और जब तक कि यह तीनों क़िस्म के कर्म काटे नहीं जावेंगे, तब तक सच्चा और पूरा उद्धार होना मुमकिन नहीं है।

११—अब समझना चाहिये कि राधास्वामी मत की ख़ूबी[1] और बड़ाई इस बात में है कि राधास्वामी दयाल और संतों ने ऐसी जुगत दया करके बताई है कि उसके कमाने से दिन दिन जीव का घाट यानी स्थान बदलता जावेगा और इसी कमाई के साथ इसके कर्म सहज में कटते जावेंगे और इसी जन्म में वह संतों की दया से निःकर्म[2] होता जावेगा। फिर जो हुक्म कि नसीहत के तौर पर लिखे हैं, संतों का जीव उनकी मेहर और दया से आप ही अपने मन और इंद्रियों पर ज़ोर देकर मानता जावेगा और रफ़्ता रफ़्ता एक दिन ऐसे मुक़ाम पर पहुँच जावेगा कि जहाँ पर कर्म और भर्म और काल और माया का असर इस पर हरगिज़ नहीं पहुँच सकेगा और इस तौर पर एक दिन अपना पूरा उद्धार जीते जी आप देख लेगा।

१२—अब वह तरकीब कि जिससे सुरत, मन और इन्द्री और पिंड और ब्रह्मांड से न्यारी होकर, अपने निज घर में पहुँचे और तीनों क़िस्म के कर्म यहाँ के यहाँ ही कट जावें, तफ़सील के साथ आगे बयान की जाती है कि जिससे संतों की दया का हाल अच्छी तरह समझ में आवेगा और तब राधास्वामी मत की बड़ाई का थोड़ा

१—बड़ाई। २—कर्मों के प्रभाव से मुक्त।

बहुत यक़ीन मन में आवेगा।

१३—जिस वक़्त कि जीव राधास्वामी मत में शामिल हुआ, उसी वक़्त से उसको दो क़िस्म का अभ्यास करना पड़ता है—एक वास्ते समेटने मन और सुरत बिखरी[1] हुई के असली बैठक की जगह पिंड में, और दूसरा वास्ते उनको चढ़ाने के आकाश में और फिर उसके और पिंड के परे ब्रह्मांड में और फिर उसके भी परे संत अथवा दयाल देश में, जहाँ सच्चा और पूरा और अमर आनंद प्राप्त हो सकता है। और मालूम होवे कि इससे नीचे के देश में ऐसा पूरा और अमर आनंद बसबब मिलौनी माया के हासिल नहीं हो सकता है।

१४—पहिले अभ्यास का यह फ़ायदा है कि मन और सुरत, जो जगह जगह पिंड में और बाहर अनेक पदार्थों और जीवों में बँधे और बिखरे हुए हैं, सिमट कर मध्य[2] में आँखों के परे जमा[3] होवें। वही असली बैठक का स्थान है।

इतने ही अभ्यास में, जो दुरुस्ती से बन आवे, इस क़दर रस और आनंद मिलेगा और कैफ़ियत नज़र आवेगी कि इस जीव के दिल में सच्चा शौक़ और प्यार अपने सच्चे और कुल मालिक के चरणों में पैदा हो जावेगा और अपने घट में सब सामान के भंडार होने का यक़ीन दिल में आवेगा।

१५—दूसरे अभ्यास का यह फ़ायदा है कि मन और सुरत धुन की डोरी पकड़ के ऊपर को चढ़ेंगे और अपने

१—फैली। २—बीच। ३—एकाग्र।

सच्चे और प्यारे मालिक की दया और मेहर के परचे अंतर में सिवाय मामूली रस और आनंद और कैफ़ियत वग़ैरह के देखने लगेंगे। तब सच्चा प्रेम जागना शुरू होगा और सच्चा यक़ीन मालिक के हाज़िर और नाज़िर[1] और हर वक़्त अंग संग मौजूद होने का दिल में आता जावेगा। और जिस क़दर यह हालत पैदा होती और आइंदा बढ़ती जावेगी, उसी क़दर इस जीव के मन में सच्चा ख़ौफ़ अपने सच्चे मालिक की अप्रसन्नता यानी नाराज़गी का पैदा होता जावेगा और उसी क़दर यह जीव नापसंद और बुरे कामों से आप बचता जावेगा। और जिन कामों के वास्ते हुक्म है और मालिक की प्रसन्नता उसमें हासिल होने की उम्मीद है, उसमें यह जीव आप बरतने लगेगा।

१६—ख़ुलासा[2] यह कि जब कोई काम इस जीव से नाक़िस या नापसंद बनेगा, फ़ौरन् उसको मालिक की अप्रसन्नता का हाल अपने अंतर में वक़्त अंतर अभ्यास के मालूम हो जावेगा, यानी उस रोज़ मामूली रस और आनन्द भजन का नहीं मिलेगा और न कुछ ख़ास मेहर और दया मालूम पड़ेगी। इस भारी नुक़सान के ख़ौफ़ से यह जीव आप कोशिश करेगा कि जिसमें इस पर दया और मेहर दिन दिन ज़्यादा होती रहे और भजन का रस और आनन्द मिलता रहे। इस तरकीब के साथ जीव सच्चे तौर पर आसानी के साथ तामील सच्चे हुक्मों की कर सकता है, और नहीं तो चाहे जिस क़दर पढ़ो

१—देखने वाला। २—सारांश।

और समझो और चाहे जिस क़दर बातें बनाओ, यह मन और इन्द्रियाँ हरगिज़ किसी के क़ाबू में नहीं आवेंगीं। कहीं कहीं अगर किसी ख़ास ख़ौफ़ या दुनियावी नुक़सान के ख़्याल से जो कोई बच रहा या उसने दुरुस्ती से बरताव किया, यह आम[1] जीवों के वास्ते काफ़ी नमूना नहीं हो सकता है। आम तौर पर जो कोई बचेगा, वह राधास्वामी दयाल कुल मालिक की दया और अपने वक़्त के संत सतगुरु की मदद से। और उस दया और मदद के हासिल करने को राधास्वामी मत के मुआफ़िक़ अभ्यास करना ज़रूर दरकार[2] है और उसके उसूल और क़ायदों के मुआफ़िक़ समझ और बूझ सम्हालना चाहिये।

१७—अब राधास्वामी मत के अभ्यासी के कर्मों के कटने का हाल सुनो कि जिस क़दर यह जीव अभ्यास करके ऊपर को चढ़ता जाता है, उसी क़दर उसके कर्मों का दफ़्तर[3] साफ़ होता जाता है। यानी अंदर में जो चैतन्य आकाश है, उसमें सब संचित कर्मों के नक़्श मौजूद हैं। जैसे सुरत और मन उस आकाश मंडल से गुज़र करते हैं, वे कर्म ज़िंदा होकर घड़ियों और पलों में अपना भोग दे देते हैं और कर्मों का मैदान इस तरह साफ़ होता चला जाता है। दूसरे प्रारब्ध कर्मों का असर बसबब नित्त अभ्यास चढ़ाई मन और सुरत के बहुत कम व्यापता है, यानी जब सुरत आँख के मुक़ाम पर, जैसे जाग्रत अवस्था में, बैठती है, उस वक़्त संसार और देह के दुख

१—साधारण। २—ज़रूरी। ३—हिसाब।

दर्द और चिंता और फ़िक्र सब व्यापते हैं और जिस क़दर कि सुरत की धार अपने अंतर में मुतवज्जह[१] होवे यानी खिंच जावे, जैसे सोने के वक़्त या गहरे नशे या ग़श[२] की हालत में या जब कि डाक्टर लोग शीशी सुँघा कर फोड़ा चीरते हैं या बदन काटते हैं, उस वक़्त देह और संसार का दुख और सुख बहुत कम बल्कि बिलकुल नहीं व्यापता है। इसी तरह जिस क़दर अभ्यास करके सुरत का अंतर में खिंचाव और चढ़ाव हुआ है, उसी क़दर प्रारब्ध कर्मों का वेग[३] यानी असर उस अभ्यासी को कम मालूम होवेगा। तीसरे क्रियमाण कर्मों का फल इस तौर पर दूर हो जावेगा कि राधास्वामी मत का अभ्यासी, जिसने सच्ची सरन राधास्वामी दयाल की ली है, जो कुछ काम ज़रूरी करेगा, वह उनकी मेहर और दया और मौज के आसरे करेगा और फल की इच्छा उनकी मौज और दया के आसरे रक्खेगा। जो मौज मुआफ़िक़ हुई तो बहुत अच्छा, और जो ना-मुआफ़िक़ हुई तो भी बहुत अच्छा, हर हाल में अपने प्यारे मालिक की मौज और मरज़ी के मुआफ़िक़ अपने मन को चलाना और उसी में राज़ी रहना।

जब इस तौर पर अभ्यासी ने कर्म किये तो उसका बंधन उन कर्मों और उनके फल में मुतलक़[४] नहीं हुआ। इस तरह रफ़्ता रफ़्ता[५] सब कर्म कटते जावेंगे और जब अभ्यासी मेहर और दया से त्रिकुटी के मुक़ाम तक पहुँचेगा, तब सब झगड़े और बखेड़े काल और कर्म और

१—आकर्षित। २—बेहोशी। ३—ज़ोर। ४—ज़रा भी। ५—धीरे धीरे।

माया और भरम वग़ैरह के नीचे रह जावेंगे और अभ्यासी की सुरत इन सबसे न्यारी होकर अपने निज घर में यानी सत्तलोक और राधास्वामी धाम पर पहुँच कर परम और अमर आनन्द को प्राप्त होवेगी।

बचन—४

होशियार करना राधास्वामी मत के अभ्यासियों को वास्ते सम्हाल अपने मन और इन्द्रियों के और दुरुस्ती से करने अभ्यास के अपने अंतर में

१—जो लोग कि राधास्वामी मत में शामिल हुए हैं, उनको चाहिये कि जिस क़दर बन सके मन के विकारों[1] में न बरतें और अपना भजन और ध्यान होशियारी के साथ करें कि जिसमें मन दुनिया के ख़्यालों में बहता न फिरे और थोड़ी देर को ज़रूर एकाग्र होकर शब्द या स्वरूप में लग जावे और थोड़ा बहुत रस और आनंद अंतर में पावे।

२—जो इस क़दर होशियारी नहीं की जावेगी कि थोड़ा बहुत मन एकाग्र होकर अभ्यास में लगे, तो अंतर में कुछ भी रस नहीं आवेगा और न कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया का परचा अंतर में मिलेगा, क्योंकि राधास्वामी दयाल का बचन है कि जो कोई मन के विकारों में बरतेगा, वे उसका संग नहीं दे सकते यानी

१—बुराइयों।

कुछ मदद नहीं कर सकते।

३—मन के विकारों से मतलब यह है कि पाँचों दूत—अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह के साथ और दसों इन्द्रियों की तरंगों[1] में निडर और निलज्ज होकर और ज़रूरी और फ़िज़ूल चाहों का फ़र्क़ न करके बेतकल्लुफ़[2] बरताव करना। अब इन विकारों का थोड़ा सा हाल लिखा जाता है।

१—अहंकार का वर्णन

१—इस अंग की जड़ वहीं समझनी चाहिये जहाँ से कि अहं शब्द का ज़हूर[3] हुआ। यह अंग सबसे ज़बर है और सबसे पीछे इसका पूरा पूरा अभाव होगा।

मान और बड़ाई की चाह हर एक के दिल में इसी अंग के सबब से पैदा होती है।

२—संतों ने कहा है कि अनेक तरह के मान मन में हर एक आदमी के धसे रहते हैं—जैसे (१) ज़ात पाँत का अहंकार, (२) ख़ानदान यानी घराने का अहंकार, (३) धन और हुकूमत का अहंकार, (४) विद्या और हुनर का अहंकार, (५) रूप, ज़ेवर और पोशाक और सवारी वग़ैरह का अहंकार, (६) देह, बल और कुटुम्ब और बिरादरी का अहंकार, (७) क़ौम की बड़ाई का अहंकार, (८) बुद्धि, चतुराई और गुण का अहंकार, (९) औलाद और नौकर चाकरों का अहंकार, (१०) मकान और जायदाद का अहंकार, (११) इज़्ज़त और हुरमत[4] का अहंकार,

१—लहरों। २—खुल कर। ३—प्रकाश। ४— आबरू।

(१२) बुज़ुर्गों की अमीरी और बड़ाई का अहंकार, (१३) राजों और अमीरों और साहूकारों और बड़े आदमियों से दोस्ती और जान पहिचान होने का अहंकार, (१४) वैराग्य और त्याग का अहंकार और (१५) अभ्यास का अहंकार वग़ैरह वग़ैरह।

३—जब तक यह मान मन से दूर न होंगे या किसी क़दर ढीले नहीं पड़ेंगे, तब तक सच्चे मालिक और सतगुरु के चरणों में सच्ची दीनता और सच्चा प्रेम मन में नहीं आवेगा। इस वास्ते हर एक आदमी को चाहिए कि जहाँ तक बन सके सतगुरु और उनके सतसंग में निष्कपट[1] होकर दीनता के साथ बरताव करे तो कुछ फ़ायदा परमार्थी प्राप्त होगा और इसी तरह अभ्यास के समय अंतर में भी दीनता के साथ भजन और ध्यान में लगे, तब अंतर में रस आवेगा।

शब्द प्रेम बहार

मान मद त्याग करो गुरु संग ॥ टेक ॥
जब लग सजनी मान न छोड़ो।
तब लग रहो तुम तंग[2] ॥ १ ॥
करम भरम जब लग नहिं छूटे।
नहिं धारो गुरु रंग ॥ २ ॥
वैर ईर्षा नित्त सतावे।
करत रहो तुम सब से जंग[3] ॥ ३ ॥
याते कहना मान पियारी।
सीखो भक्ती ढंग ॥ ४ ॥

१—बिना किसी कपट के। २—परेशान। ३—लड़ाई।

दीन होय गुरु सरनी आओ।
चित से चेत करो सतसंग ॥ ५ ॥
गुरु भक्ती की रीत सम्हालो।
धुन में सुरत लगाओ उमंग ॥ ६ ॥
नित अभ्यास करो अस कोइ दिन।
प्रेम बसे तुम्हरे अँग अंग ॥ ७ ॥
राधास्वामी मेहर से सुरत चढ़ावें।
होयँ करम सब भंग ॥ ८ ॥

२—काम का वर्णन

१—यह अंग भी बहुत ज़बर है और जड़ इसकी दसवें द्वार में है। और रचना की तरक़्क़ी का सबब यही अंग है।

और सब तरह की कामना यानी चाहें इसी अंग के सबब से मन में जीवों के पैदा होती है।

ब्रह्मांड में इस अंग की धार बहुत सूक्ष्म है, लेकिन पिंड में जिस क़दर कि उतार नीचे को होता गया, उसका ज़ोर बहुत बढ़ता गया है।

२—परमार्थी अभ्यासियों को लाज़िम[1] है कि इस अंग से बचते रहें। और जो गृहस्थी हैं, वह एहतियात[2] के साथ अपना बरताव करें यानी ज़्यादती न होने पावे, नहीं तो अभ्यास के फ़ायदे में कसर पड़ेगी क्योंकि काम अंग के साथ चैतन्य की धार नीचे को उतरती है।

३—काम अंग का असर मन पर बहुत जल्द होता है। इस क़िस्म के बचन सुन कर या पढ़कर या उनका

१—ज़रूरी। २—होशियारी।

ख़्याल करके या कोई ख़ूबसूरत स्त्री को देखकर या उसका ज़िक्र सुन कर या उसकी तसवीर देख कर या औरतों के पास बैठने उठने से या उनके लिबास[1] और पोशाक वग़ैरह के देखने से कामी पुरुषों के मन में फ़ौरन् काम अंग जागता है। और चाहे उनको उसका भोग प्राप्त न होवे, लेकिन इसके ख़्याल करने ही में बहुत सा हर्ज और नुक़सान परमार्थी अभ्यासी का हो जाता है, यानी उसके मन की हालत किसी क़दर बदल जाती है, यानी इस क़दर चैतन्य धार का उतार या बहाव हो जाता है कि कुछ देर तक उसका मन अभ्यास के क़ाबिल नहीं रहता है। इस वास्ते राधास्वामी मत के अभ्यासी को मुनासिब और लाज़िम है कि ऐसी हालतों में अपना बचाव रक्खे, यानी ऐसे ख़्यालों और ज़िक्रों में और ऐसे तमाशा वग़ैरह में शामिल न होवे और पहिले ही दम अपने मन को उस तरफ़ से हटा लेवे, नहीं तो थोड़ा बहुत शामिल हो जाने पर मन का हटाना बहुत मुश्किल मालूम पड़ेगा बल्कि नामुमकिन होगा।

४—मालूम होवे कि यह मन आप ही चोर है यानी रस का रसिया है। इस सबब से काम की तरंग और ख़्याल और ज़िक्र और तमाशे वग़ैरह में यह आप ही दौड़ कर जाता है और उन बातों में रस और मज़ा लेता है।

चाहे उस वक़्त परमार्थी बुद्धि याद भी दिलावे और इसको होशियार भी करावे, पर यह मन रस में आसक्त होकर तवज्जह नहीं करता है और उन ख़्यालों से नहीं

१—पोशाक।

हटता, जब तक कि पूरा रस अपने ख़्याल में नहीं ले लेता है। इस वास्ते परमार्थी को चाहिये कि जिस क़दर होशियारी और एहतियात बने शुरू में ऐसे ख़्याल या बातों की करे। और जब उसमें लिपट गया तब जल्दी से नहीं हटता है।

५—जो काम की निस्बत[1] ऊपर बयान किया गया, यही हाल कुल कामनाओं[2] का समझना चाहिये, यानी जो कामना जिसके दिल में ज़बर है, वह उस कामना के ख़्याल या बातचीत और विस्तार वग़ैरह और पूरे करने में ऐसा ही आधीन और आसक्त और बेहोश है जैसे कामी कामिन के साथ होता है। इस वास्ते परमार्थी अभ्यासी को कोई कामना संसार की बहुत ज़बर नहीं उठाना चाहिये और न काम अंग में नामुनासिब और नाजायज़ और बेमौक़े बरताव करना चाहिये। सब चाहें अपनी राधास्वामी दयाल के चरणों में अर्पण करके, जो कुछ जिस जिस मुआमले में मौज से होता जावे उसको राधास्वामी दयाल की मौज समझ कर उसी पर राज़ी होवे और शुकर करे। और जो किसी मुआमले में ज़रूरत ज़्यादा होवे, तो राधास्वामी दयाल के चरणों में वक्त भजन के प्रार्थना करे। वे अपनी मेहर और दया से कोई न कोई तरह से इसका काम बनावेंगे या वह ज़रूरत दूर कर देंगे।

३—क्रोध का अंग

१—यह अंग भी बहुत ज़बर है और जड़ इसकी त्रिकुटी

१—बारे में। २—वासनाओं।

में है। जब जब कामना मन के मुआफ़िक़ पूरी नहीं होती है, तब ही क्रोध अंग जागता है, कभी अपने ऊपर जो कसर अपनी नज़र आती है और कभी दूसरे पर जो उसकी तरफ़ भरम कसर डालने का इसके मन में पैदा होता है।

२—इस अंग के साथ चैतन्य की धार शरीर में या बाहर फैल कर किसी क़दर भस्म[1] हो जाती है और इस वास्ते अभ्यासी को चाहिये कि इस अंग से बहुत डरता रहे और जहाँ तक हो सके, इसमें जान कर या भूल कर कभी बरताव न करे। सिर्फ़ मसलहत[2] के मुआफ़िक़ बरताव चाहिये कि जिसमें बंदोबस्त अंतर या बाहर दुरुस्ती के साथ जारी रहें और हर एक अंग या शख़्स अपनी अपनी कार्रवाई मुनासिब करता रहे।

३—जो कोई मामूल[3] से ज़्यादा ज़ोर सुरत के चढ़ाने के लिये भजन या ध्यान में देते हैं, उनको अकसर यह दोनों अंग यानी काम और क्रोध अंतर में ज़्यादा सताते हैं, बल्कि क्रोध अंग ज़्यादा ज़बर होकर ज़रा ज़रा सी बात में बाहर प्रगट हो जाता है।

सबब इसका यह है कि जब सुरत ऊपर को किसी क़दर चढ़ेगी, तो जो वह निर्मल और साफ़ है तो ऊपर ठहर सकेगी, नहीं तो जिस अंग की मलीनता[4] उसमें विशेष करके है, वही अंग प्रगट होकर सुरत को नीचे उतार लावेगा, जैसे काम की धार अंतर में तरंग[5] उठा कर सुरत को नीचे को गिरा देवे या क्रोध की धार उठकर

१—नष्ट। २—जरूरत। ३—साधारण। ४—मैल। ५—लहर।

सुरत को फैला देवे। इस वास्ते अभ्यासी को अपनी सफ़ाई का ज़्यादा ख़्याल रखना चाहिये इस तौर पर कि जाग्रत और स्वप्न की हालत में उसके होश दुरुस्त रहें, यानी मन और इन्द्रियाँ उसकी काम और क्रोध की तरंग के साथ न बहें। तो भजन और ध्यान के समय और उसके पीछे भी थोड़ा बहुत यक़ीन पड़ेगा कि यह तरंगें उसकी सुरत को नहीं उतारेंगीं, और जो जाग्रत के समय मन चलायमान[1] हो जाता है और होश नहीं लाता है, तो अभ्यास के समय या उसके पीछे भी इसकी होशियारी काम नहीं देगी।

४—लाभ का अंग

१—यह अंग बहुत ओछा[2] और नाक़िस[3] है और शुरूआत इसकी सहसदलकँवल और उसके नीचे से समझना चाहिये। जिस किसी में यह अंग ज़बर है, वह परमार्थ से ख़ाली रहेगा, क्योंकि उसकी वृत्ति[4] का ज़बर झुकाव बाहर की तरफ़ पदार्थों में होगा। और ऐसी हालत वाले से अभ्यास सुरत और मन को समेटने और चढ़ने का नहीं बन सकता।

२—सिवाय इसके लोभी पुरुष कभी संतों के बचन के मुआफ़िक़ कार्रवाई नहीं कर सकेगा, क्योंकि वह अपने लोभ की तरंग को पूरा करने के वास्ते जीवों को दुख पहुँचाने और उनका हक़ मेटने में ज़रा ख़ौफ़ नहीं करेगा और इस सबब से उसको परमार्थ का लाभ नहीं मिल सकेगा।

१—चंचल। २—ख़राब। ३—तुच्छ। ४—मन की धार।

यहाँ लोभ से मतलब यह है कि अपने वाजिबी[1] हक़ से ज़्यादा हासिल करने की चाह उठा कर, जिस तरह वह चाह पूरी होवे, उसके निमित्त[2] जतन करे, चाहे उसमें जीवों को दुख और नुक़सान पहुँचे।

३—लोभी पुरुष सच्चे परमार्थ और सच्चे प्रेमियों की हमेशा निंदा करेगा और आप अपने जीव के सच्चे कल्याण के निमित्त[2] कुछ ख़र्च नहीं कर सकेगा, बल्कि सच्चे प्रेमियों को ख़र्च करते हुए देख कर बहुत अपने मन में जलेगा और कुढ़ेगा और उनको नादान और मूर्ख कहेगा, जिसके सबब से अपने सिर पर निंदा का भार और पाप में चढ़ावेगा।

४—राधास्वामी मत के अभ्यासियों को लोभ अंग से ज़रूर बचते रहना चाहिये, बल्कि अपने हक़ और वाजिबी आमदनी से मालिक के प्रसन्न करने और जीवों के उपकार के निमित्त कुछ ख़र्च करना चाहिये। तब कुछ परमार्थ मिलेगा यानी मालिक के चरणों का प्रेम हिरदे में पैदा होगा।

५—मोह का अंग

१—यह अंग भी लोभ अंग के मुआफ़िक़ बहुत ओछा और परमार्थ के वास्ते नाक़िस है और शुरूआत इसकी सहसदलकँवल और उसके नीचे से है। वाजिबी और मुनासिब तौर[3] का मोह इस क़दर दुखदाई नहीं है, पर ज़्यादती इसकी बहुत नुक़सान और तक़लीफ़ पैदा करती है। और ऐसा आदमी परमार्थ में बहुत कम लग सकता है, क्योंकि वह हमेशा उन लोगों का, जिनमें उसको मुहब्बत

१—मुनासिब। २—लिए। ३—प्रकार।

और मोह विशेष है, आधीन[1] रहेगा और जैसे वह उसको चलावेंगे वैसी चाल चलेगा। फिर उससे सतगुरु और मालिक का बचन, जोकि उसके मुहब्बत वालों के मन के ख़िलाफ़ होगा, नहीं माना जावेगा और न मालिक के चरणों में उससे गहरी प्रीति करी जावेगा।

२—मोही[2] आदमी दुनियादारों और कुटुम्बी और बिरादरी के डर और लज्जा से सतसंग भी नहीं कर सकेगा। और इस सबब से उसकी आँख भी नहीं खुलेगी और बुद्धि भी मलीन यानी संसारी रही आवेगी और परमार्थ की बड़ाई और ज़रूरत उसके मन में नहीं समावेगी, बल्कि सच्चे परमार्थ और परमार्थियों की निंदा करने को तैयार होगा और जो भक्ति के अंगों में सच्चे परमार्थी और प्रेमी जन बरतेंगे, उनको देख देख करके वह अपने मन में जलता और कुढ़ता रहेगा। इस सबब से सच्चा परमार्थ इसको कभी हासिल न होगा।

ईर्षा और विरोध का अंग

१—सिवाय ऊपर के लिखे हुए अंगों के दो अंग और भी हैं कि वह अहंकार और क्रोध से क़रीब क़रीब मिले हुये हैं, यानी जिसके मन में अहंकार ज़्यादा है उसको दूसरे की मान और बड़ाई देख कर ज़रूर ईर्षा आवेगी और जो कोई विशेष अहंकारी[3] और क्रोधी है, वह दूसरे से, जो वक्त क्रोध या मान बड़ाई के मुआमले में थोड़ा बहुत उसका मुक़ाबला करेगा, विरोध यानी दुश्मनी

१—दीन। २—मोह करने वाला। ३—अभिमानी।

करने लगेगा। इस तरह यह दोनों अंग ईर्षा और विरोध के उन पाँचों अंगों से थोड़े बहुत मिले हुए हैं। अब इनका थोड़ा सा हाल जुदा जुदा लिखा जाता है, ताकि अभ्यासी जीव इन अंगों से डरते रहें और जहाँ तक बने इनके चक्कर में न आवें।

ईर्षा का वर्णन

१—अभ्यासी के वास्ते यह अंग बहुत नुक़सान देने वाला है, क्योंकि जब ईर्षा किसी की तरफ़ से उसकी बुराई देखकर या भरम के सबब से मन में बस जाती है, तब हमेशा उसको देख कर या उसका ज़िक्र सुनकर एक क़िस्म की जलन पैदा होती है कि वह विरह और प्रेम अंग को थोड़ा बहुत सुखा देती है और भजन और ध्यान का रस नहीं आने देती है। और जो जो तरंगें कि ईर्षा के सबब से उस शख़्स की तरफ़ उठती हैं, वे भी विरोध की बढ़ाने वाली और भजन के रस और आनन्द से दूर डालने वाली होती हैं, यानी ऐसे ही ख़्याल उठा करते हैं कि किस तरह उस आदमी को नुक़सान या दुख पहुँचे। और उसकी निंदा सुनने में चित्त मगन[1] होता है और आप भी अनेक तरह से उसकी बुराई और निंदा करता है, यानी अपने ऊपर पाप पर पाप बढ़ाता है। और जो दूसरी तरफ़ से भी बराबर मुक़ाबला होता जावे, तो यह ईर्षा का अंग विरोध[2] की सूरत पैदा करता है यानी पूरी दुश्मनी आपस में हो जाती है और फिर उसके

१—प्रसन्न। २—दुश्मनी।

बढ़ाव में और जारा रहने में दोनों का परमार्थी नुक़सान होता है। इस वास्ते अभ्यासी परमार्थी को ईर्षा के अंग में बरताव करने से बहुत परहेज़ करना चाहिये, बल्कि जो किसी वक़्त अपना थोड़ा बहुत नुक़सान या हर्ज भी हो जावे तो कुछ ख़्याल न करे। और जहाँ तक बने ईर्षा को चित्त में न धसने देवे।

२—जो किसी अपने बराबर की बड़ाई या मान प्रतिष्ठा[1] होवे तो उसको देख कर अंतर में जलन न लावे और यह समझे कि बिना मौज मालिक के कोई बड़ा या छोटा नहीं हो सकता, फिर जो कोई उसके साथ ईर्षा करेगा, वह मालिक के हुक्म के साथ बरख़िलाफ़ी करेगा और हुक्मअदूली[2] के पाप का भागी होगा। इस वास्ते परमार्थी को मुनासिब है कि अपने काम का फ़िक्र करे और दूसरों के काम के झमेले में न पड़े और अपने चित्त में सदा दीनता रक्खे और जिसको मालिक बड़ाई देवे, उसके सामने जो अपना काम पड़े, ज़रूर दस्तूर[3] के मुआफ़िक़ दीन होवे और वहाँ अहंकार न करे, नहीं तो अपना नुक़सान करेगा।

विरोध का वर्णन

१—यह अंग अकसर क्रोध या ईर्षा के पीछे पैदा होता है और कभी भरम करके भी मन में धस जाता है और फिर बढ़ता चला जाता है। यह अंग भी दूसरे की तरफ़ से अंतर में जलन और ग़ुस्सा पैदा करने वाला है

१—आदर सत्कार। २—मालिक की आज्ञा न मानने। ३—रिवाज।

और जब और जिस घट में यह अंग प्रगट होगा, भक्ति और दीनता और बिरह और प्रेम को सुखा देगा।

२—यह संसारी जीवों का हाल है कि जिस किसी से किसी बात पर नाराज़ हो जावें तो उसके विरोधी हो जावें, पर सच्चे परमार्थी जीवों को हुक्म है कि जहाँ तक मुनासिब होवे औरों के क़सूरों को मुआफ़ करें और उनकी बुराई और ऐब[1] को याद न लावें यानी अपने मन में धसने[2] न देवें, क्योंकि इसमें उनके परमार्थ का नुक़सान है।

३—सच्चे मालिक को यह अंग, जैसे ईर्षा और विरोध और क्रोध वग़ैरह, निहायत नापसन्द हैं और जिस घट में इनका थाना[3] है, वहाँ उसका नूर[4] प्रगट नहीं हो सकता। सच्चा मालिक दीनता और प्रेम को पसंद करता है। सो सच्चे परमार्थी को चाहिये कि अंतर में अपने इन्हीं अंगों का जहाँ तक बने बरताव रक्खे और ईर्षा और विरोध और क्रोध को न आने देवे, लेकिन बाहर बंदोबस्त[5] के वास्ते और ख़ास कर संसारी लोगों से व्यवहार और बरताव के वास्ते, जैसा जहाँ मुनासिब होवे, ज़ाहिरी तौर पर बरताव करे। पर अपने मन में किसी से असली विरोध या ईर्षा को ठहरने न देवे और जिस क़दर जल्दी हो सके इन ख़्यालों को हटा कर सफ़ाई कर लेवे, ताकि अभ्यास और सतसंग में बहुत विघ्न[6] न डालने पावें।

१—बुरी आदत। २—घुसने। ३—स्थान, निवास। ४—प्रकाश। ५—अपने कामकाज। ६—रुकावट।

मन और इन्द्रियों का वर्णन

१—यह मन ज़ाहिरा इन्द्रियों का आधीन मालूम होता है, यानी जिस तरफ़ इन्द्रियाँ जाती हैं मन भी उसी तरफ़ जाता है। पर असल में इन्द्रियों की चाल मन के हाल पर मौक़ूफ़[1] है, यानी जो मन भोगी और बिलासी है वह हमेशा इन्द्रियों के संग चंचल रहेगा और उसकी इन्द्रियाँ भी भोगों में भरमती रहेंगी। पर जो मन परमार्थी है वह आप भी किसी क़दर निश्चल रहता है और उसकी इन्द्रियाँ भी मुनासिब तौर पर और मुनासिब तरफ़ जाती हैं, अंधाधुंध[2] चाल उनकी नहीं होती है।

२—इस मन की अजीब बनावट है कि अपनी मानन यानी समझ के मुआफ़िक़ जल्द दुखी और सुखी हो जाता है और असली दुख सुख का ख़्याल बहुत कम करता है। इस वास्ते इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि परमार्थी जीव पहिले कोई दिन सतगुरु या साध गुरू या सच्चे अभ्यासी सतसंगी का सतसंग करे और बचन चित्त देकर होशियारी के साथ सुने और उनका मनन[3] भी करे और जो अपने फ़ायदे की बातें होवें उनको फ़ौरन् ग्रहण करता जावे और जो नुक़सान की बातें होवें उनको छोड़ता जावे। तो कुछ अरसे में ऐसे परमार्थी की समझ और विचार बदल जावेगा, यानी उसकी समझ और हालत परमार्थी होती जावेगी और संसारी अंग और ख़्वास[4], जोकि थोड़े बहुत पशुओं के मुआफ़िक़ होते हैं, दूर होते जावेंगे और तब इस मन

१—मुनहसिर। २—ग़ैर मुनासिब और ग़लत।३—विचार। ४—गुण।

की मानन और समझ बदलेगी, यानी दुनियादारों के मुआफ़िक़ इस का व्यवहार और बरताव नहीं रहेगा बल्कि सच्चे भक्त और प्रेमीजनों की समझ और चाल इसमें आती जावेगी।

३—मालूम होवे कि परमार्थियों की चाल दुनियादारों की चाल के बरख़िलाफ़ यानी उलटी होती है। दुनियादार धन, स्त्री, पुत्र और नामवरी के वास्ते जान देने को तैयार होते हैं और परमार्थी अपने सच्चे मालिक के चरणों पर इन सबको, बल्कि अपने तन मन और जान को, वारने[1] को तैयार रहता है।

उसकी नज़र में मालिक की प्रसन्नता और उसके नूर[2] के दर्शन के बराबर कोई चीज़ रचना भर में नहीं ठहरती है और दुनियादार धन और नामवरी की सब में ज़्यादा क़दर करते हैं और मालिक की तरफ़ से बेख़बर[3] रहते हैं।

परमार्थी हर एक के साथ दीनता और प्यार के साथ बरतना चाहता है, पर दुनियादार अहंकार और मान और बेपरवाही की नज़र से हर एक को देखता है।

परमार्थी को दुनिया के सामान सब नाशमान और नाचीज़[4] और दुखदाई नज़र आते हैं और संसारी इन चीजों की बड़ी क़दर करता है और उनको बड़ी न्यामत[5] और अपने वास्ते निहायत सुखदाई देखता है। इस सबब से परमार्थी और संसारी जीवों का आपस में मेल नहीं हो सकता, क्योंकि उनके मन और समझ की हालत जुदी जुदी है।

१—अर्पण करने। २—प्रकाश। ३—लापरवाह। ४—तुच्छ।
५—बहुमूल्य पदार्थ।

४—दुनियादारों की मानन और समझ ग़लत है और यह ग़लती उनको अख़ीर वक्त पर या निहायत सख़्त तकलीफ़ के वक्त पर नज़र आती है कि उस वक्त कोई शख़्स या सामान, जिसका उन्होंने बड़ा भरोसा बाँधा था, उनकी मदद नहीं कर सकता, बल्कि उनको छोड़ कर सब जुदा[1] हो जाते हैं। और परमार्थी ने जो समझ धारण की है, उसका फ़ायदा उसको हर वक्त और तकलीफ़ या अख़ीर के वक्त बहुत ज़्यादा मालूम होता है, यानी जिस सच्चे मालिक को उसने अपना सच्चा माता और पिता मान कर पकड़ा है और उसकी याद अंतर में बढ़ाई है, वह मालिक दयाल हर वक्त उसकी ख़बरगीरी[2] करता है और तकलीफ़ के वक्त ज़रूर मौजूद होकर और अपने दर्शन देकर और कुल तकलीफ़ को फ़ौरन् दूर करके महा सुख और आनन्द अपने बच्चे को देता है।

५—अब समझना चाहिये कि हर एक परमार्थी जीव को परमार्थियों की चाल और समझ धारण करके और चेत कर सतसंग और अभ्यास करके अपने मन और इन्द्रियों की हालत, जिस क़दर जल्दी हो सके, बदलना चाहिये कि जिससे हमेशा आनंद ही आनंद प्राप्त होता रहे, क्योंकि जब तक यह संसारी या मिलौनी के अंग में थोड़ा बहुत बरताव रक्खेगा, तब तक सतसंग में भी कभी सुखी और कभी दुखी होता रहेगा और जब संसारी ख़वास[3] और चालें[4] मन से निकल जावेंगी, तब दुख भी

१—अलहदा। २—रक्षा। ३—गुण। ४—व्यवहारिक बातें।

इसके पास नहीं आवेगा और जो आवेगा तो यह उसको जल्द अपनी समझ और विचार की मदद से दूर कर देगा।

६—खुलासा[1] यह है कि जिस मन में दुनियाँ और दुनियादार और माया के पदार्थों का भाव[2] ज़बर है और दुनियादारों के स्वभाव और चाल के मुआफ़िक़ उसका बरताव और व्यवहार है, वही मन संसारी है। और जिस मन में सच्चे मालिक और सतगुरु और सतसंग और सच्चे मालिक के नाम यानी शब्द और प्रेम का भाव ज़बर है और भक्तों और प्रेमियों की चाल के मुआफ़िक़ उसका व्यवहार और बरताव जारी है, वही परमार्थी मन है।

७—ऐसे परमार्थी मन की चाल संसारी मन की चाल से जुदी होगी और इस वास्ते उसकी इन्द्रियों की चाल और रीति भी संसारी जीवों की इन्द्रियों से जुदी होगी, यानी परमार्थी की इन्द्रियाँ चंचल नहीं होवेंगी और संसारी जीव और माया के पदार्थ और संसारी बातों में उनकी तवज्जह बेज़रूरत और बग़ैर किसी काम के नहीं जावेगी।

८—जो परमार्थी अभ्यासी इस तरह की सम्हाल अपने मन और इन्द्रियों की रक्खेगा, उसको बहुत कम माया और भरम और काल और करम का झटका लगेगा और अपने अंतर में थोड़ा बहुत रस और आनन्द अभ्यास का लेता रहेगा और सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया और मेहर के भी परचे[3] उसको अंतर और बाहर बराबर मिलते जावेंगे और उसके सुरत और मन को परमार्थ में पुष्ट[4] और मज़बूत करते जावेंगे।

१—सारांश। २—प्रेम। ३—तजरुबे। ४—दृढ़।

बचन—५

राधास्वामी मत में जो गुरुभक्ति जारी है, उस पर तान मारने वालों का जवाब और वर्णन इस बात का कि सच्चे परमार्थ और सच्चे उद्धार की प्राप्ति के लिये अपने समय के भेदी और अभ्यासी मनुष्य स्वरूप गुरु से मिलना और उनके साथ दीनता और भाव और प्यार करना बहुत ज़रूर है।

१—राधास्वामी मत के मुआफ़िक़ सुरत यानी रूह कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी की अंश है और उन्हीं के चरणों से निकस[1] कर और नीचे उतर कर पिंड में नेत्रों के मुक़ाम पर बैठ कर अपनी देह और दुनियाँ की कार्रवाई करती है और रास्ते में जितने मुक़ाम हैं, उन हर एक मुक़ाम पर ठहरती हुई उतरी है। इसी तौर पर जब संत सतगुरु की दया से उलटने की जुगती का भेद लेकर उसका अभ्यास करेगी, तब हर एक मुक़ाम पर चढ़ती हुई और वहाँ कुछ दिन ठहर कर सैर करती हुई कुछ अरसे में अपसे निज स्थान पर जा पहुँचेगी।

२—हर एक स्थान का जो रूप है, वह आदि में सुरत

१—निकल।

ने ही वक़्त उतार के धारण किया और इसी तरह लौटते वक़्त वही रूप उसका हर एक स्थान पर होता जावेगा।

३—उतार के वक़्त जो रूप कि सुरत ने जिस मुक़ाम पर धारण किया, वह रूप नीचे की रचना का कर्त्ता और मालिक है।

४—उलटते वक़्त जब तक कि सुरत अपने से ऊपर के स्थान के रूप में प्यार और भाव लाकर और उससे मिलने की चाह ज़बर[1] उठा कर, जो जुगत कि संतों ने दया करके बताई है उसका अभ्यास रोज़मर्रह[2] शौक़ के साथ न करेगी, तब तक उस स्थान और स्वरूप की प्राप्ति न होगी यानी वह मुक़ाम फ़तह न होगा।

५—इसी तरह हर एक स्थान की भावना[3] करके रास्ता चलेगा और धुर मुक़ाम यानी राधास्वामी के चरणों में पहुँचने का इरादा पक्का और सच्चा करके हर एक रास्ते की मंज़िल को तै करती हुई सुरत चलेगी और हर स्थान पर अपना असली रूप धारण करती हुई जावेगी।

६—जोकि हर एक स्थान का धनी यानी मालिक नीचे की रचना का कर्त्ता और मालिक है, इस वास्ते इसी क़िस्म का भाव अपने से ऊपर के स्थान के स्वरूप में धारण करके सुरत को चलना पड़ेगा।

७—लेकिन जोकि धार आदि में राधास्वामी दयाल के चरणों से जारी होकर हर एक स्थान पर ठहरती हुई और रूप धर कर रचना करती हुई चली आई है और

१—तेज़। २—हर रोज़। ३—ध्यान।

जोकि अभ्यासी सुरत को धुर मुक़ाम पर पहुँच कर अपने सच्चे माता पिता और कुल मालिक का दर्शन करना मंज़ूर है, इस वास्ते उसको मुनासिब और लाज़िम[1] है कि बजाय इसके कि हर एक मुक़ाम के धनी को मालिक समझ कर उसमें प्यार और भाव लाकर चले, सिर्फ़ कुल मालिक राधास्वामी का ध्यान और उन्हीं के चरणों में प्यार और भाव धर कर रास्ता तै करे। इसमें उसको पूरी मदद और दया हर जगह मिलती जावेगी और हर मुक़ाम पर इष्ट के बदलने की ज़रूरत न होगी, क्योंकि एक से ज़्यादा स्वरूप में सच्चा और पूरा भाव और प्यार नहीं आ सकता है और जब कि वे सब स्वरूप रास्ते के सिर्फ़ अपनी अपनी हद में कार्रवाई कर सकते हैं और अपने से ऊपर के स्थान में उनका कुछ दख़ल नहीं पहुँच सकता है, तो वह पूरे और सच्चे कर्त्ता और मालिक नहीं हो सकते। यह सब कार-परदाज़ यानी कारिन्दे हैं और राधास्वामी दयाल कुल मालिक और उनका हुक्म सब जगह जारी है। इस वास्ते उन्हीं का इष्ट मज़बूत बाँधकर और उन्हीं के चरणों में पूरा प्यार और भाव लाकर चलना चाहिये, तो रास्ता सुखाला[2] और आसानी से तै होगा और किसी क़िस्म का ख़तरा और विघ्न रास्ते में वाक़ै न होगा।

८—यहाँ पर इस बात का जताना बहुत ज़रूर है कि जो लोग सत्तपुरुष राधास्वामी से बेख़बर रहे और जिनको सतगुरु भेदी[3] धुर धाम के नहीं मिले, उन्होंने रास्ते में धोखा

१—ज़रूरी। २—सुखपूर्ण। ३—भेद जानने वाले।

खाया, यानी जिस मुक़ाम तक जिसको रसाई[1] हुई, वह उसी मुक़ाम के धनी को मालिक और कर्त्ता समझ कर वहीं ठहर गये और आगे चलने का रास्ता उनका बंद हो गया और इसी सबब से अनेक मत दुनियाँ में जारी हो गये। पर जिनको कि संत सतगुरु भाग से मिले, उनको धुर मुक़ाम यानी राधास्वामी पद का भेद मिला और वही रास्ते के सब मुक़ामों को तै करते हुए सच्चे मालिक के चरणों में पहुँचे और जिस ख़तरे में कि और लोग, जिनको धुर मुक़ाम का भेद नहीं मिला, पड़ कर धोखा खा गये, वे उस ख़तरे से बच गये।

६—मालिक के चरणों में प्यार और भाव भी कई तरह पर करते हैं। बाज़ों ने (१) पुत्र भाव यानी मालिक को बाल स्वरूप मान कर प्रीति करी और किसी किसी ने (२) सखा[2] भाव यानी मित्र भाव माना और कोई (३) स्वामी और सेवक यानी दास भाव क़ायम करते हैं और बहुत से (४) पति और स्त्री भाव मानते हैं और बिरले (५) पिता पुत्र भाव मान कर प्रीति करते हैं। हरचंद कि सबका मतलब मालिक के चरणों में प्रीति पैदा करने और बढ़ाने का है, पर इन सबमें पति और स्त्री और पिता पुत्र भाव बहुत उम्दा है, बल्कि पिता पुत्र भाव सबमें बेहतर[3] और सुखाला और निर्मल और निर्विघ्न है। और ख़ास कर इस ज़माने में जब कि जीव निहायत निबल और कमज़ोर हो गया है और काल के झकोले[4]

१—पहुँच। २—मित्र। ३—अच्छा। ४—झटके।

और माया का लुभाव[1] अनेक रीति से ज़बर हो रहा है, पिता पुत्र भाव में सहज जीव का गुज़ारा यानी उद्धार मुमकिन है। इस वास्ते मुनासिब मालूम होता है कि हर एक सच्चा परमार्थी अभ्यासी राधास्वामी दयाल के चरणों में माता और पिता भाव धारण करके तब अपनी प्रीति और प्रतीति बढ़ावे और संतों से जुक्ति लेकर नित्य उसका अभ्यास विरह और प्रेम अंग के साथ करे। तो आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उसका कारज बन जावेगा और सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल की दया और मेहर और रक्षा के परचे[2] जीते जी अंतर और बाहर देख कर दिन दिन उसकी प्रीति और प्रतीति बढ़ती जावेगी और अपने सच्चे और पूरे उद्धार की निस्बत कोई शक उसके दिल में बाक़ी न रहेगा।

१०—ऊपर के लिखे हुए हाल से मालूम होगा कि राधास्वामी मत में जो अभ्यास मन और सुरत के समेटने और चढ़ाने का मुक़र्रर[3] है, उसमें इष्ट और ध्यान सिर्फ़ एक सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल का धारण किया जाता है और उन्हीं के चरणों में प्रीति और प्रतीति दिन दिन बढ़ाई जाती है। और जोकि हर एक स्थान पर उनके चरण मौजूद हैं, सो उन्हीं का ध्यान करता हुआ और शब्द की धुन सुनता हुआ अभ्यासी रास्ता तै करता है।

११—अब ख़याल करो कि अभ्यासी या उलटने वाली सुरत हर एक स्थान पर अपने ही स्वरूप को सम्हालती हुई यानी धारण करती हुई चली जाती है और राधास्वामी

१—आकर्षण। २—तजरुबे। ३—निश्चित।

दयाल के चरणों की धार अथवा धुन की डोरी पकड़ कर रास्ता सुखाला तै करती है। और किसी ग़ैर की पूजा और ध्यान का सिवाय कुल मालिक के इस मत के अभ्यास में दख़ल नहीं है। जब कुल स्थान तै हो गये, तब सुरत अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल के सन्मुख पहुँच कर दर्शन का आनंद और बिलास करती है और उसको ताक़त हासिल हो जाती है कि जब चाहे जब चरणों में मिल जावे और जब चाहे जब अलहदा हो कर सन्मुख दर्शन का रस[1] लेवे।

१२–चरण से मतलब यह है कि सुरत यानी चैतन्य की धार, जो ऊँचे देश से उतर कर आई है और उसी ही धार का सिलसिला[2] धुरपद से लगा हुआ है, वही उस कुल मालिक का चरण है यानी उसकी धार दूर से दूर तक फैली और पसरी हुई है और चैतन्य शक्ति उसी के वसीले[3] से हर जगह पहुँचती है और दया और मेहर की धार भी उसी धार के साथ रवाँ[4] होती है।

१३–अब ख़याल करो कि जो संत सतगुरु की रसाई यानी पहुँच ऊँचे से ऊँचे स्थान तक शब्द की धार के साथ है, उनमें और उस धार में और फिर उस धार के भंडार में किसी तरह का फ़र्क़ और भेद नहीं रहा। हर एक स्थान का स्वरूप उनका स्वरूप हुआ और वही स्वरूप असल में सब सुरतों के स्वरूप हैं, जो वक़्त उतार के राधास्वामी दयाल के चरणों से हर एक सुरत धारण करती हुई चली

१—आनंद। २—संबंध। ३—जरिये। ४—जारी।

आई है। फिर ऐसे संत सतगुरु की पूजा और उनके चरणों में भाव और प्यार करना ऐसे है जैसे अपने स्वरूपों में प्यार और भाव और कुल मालिक की पूजा और उसके चरणों में प्यार और भाव करना।

१४—जिसकी दृष्टि स्थूल और मोटी है और अंतर भेद की उनको ख़बर नहीं है, वे ऐसा ख़याल करेंगे कि ऐसे संत सतगुरु की पूजा आदमी की पूजा है और ऐसा कहेंगे कि यह पूजा और प्यार और भाव मालिक की पूजा और प्यार और भाव के मुक़ाबिले में किसी तरह दुरुस्त और सही नहीं हो सकता। पर इस बात के कहने से उन लोगों की निहायत दर्जे की बेख़बरी[1] और बिना सोच और विचार के ओछी[2] समझ ज़ाहिर होती है, जैसा कि नीचे लिखे हुए बयान से मालूम होगा।

१५—इस लोक की रचना में सबमें उत्तम और श्रेष्ठ मनुष्य शरीर है, यानी कुल जानदारों का हाकिम और अफ़सर है और सब चीज़ पर थोड़ा या बहुत उसका हुक्म जारी है और सब जानदारों और चीज़ों से वह, जैसा जैसा मुनासिब समझता है, काम लेता है। और कुल इल्म और अक़्ल और हुनर[3] और फ़न[4] और कारीगरी और चालाकी और बंदोबस्त की तजवीज़ें उसी मनुष्य स्वरूप से ज़ाहिर हुए।

१६—जो ईश्वर और परमेश्वर या मालिक या कोई उसकी अंश या कला इस लोक में वास्ते सिखाने या जारी

१—लापरवाही। २—तुच्छ। ३—कला कौशल। ४—दस्तकारी।

करने नई और फ़ायदेमंद चाल या इल्म या अक़्ल के प्रगट हुए, उसने भी वही उत्तम और श्रेष्ठ मनुष्य स्वरूप धारण करके कार्रवाई करी। इसी तरह जो कोई भारी विद्यावान् या नीति[1] के बनाने और चलाने वाले या हकीम या वैद्य या डाक्टर या और कोई हुनर और कारीगरी वाले ज़ाहिर हुए, वह भी मनुष्य स्वरूप में प्रगट हुए और उसी स्वरूप से सब चालें चलाईं और लोगों को विद्या और बुद्धि और हुनर और कारीगरी की बातें सिखलाईं।

१७—इसी तरह संत सतगुरु ने अपने साथ और मालिक के चरणों में प्यार और भाव करने की विधि[2] समझाई और मालिक का पता और भेद भी उन्होंने यानी संत सतगुरु ने मनुष्य स्वरूप धर कर प्रगट किया। और यह संत सतगुरु स्वतः[3] संत थे, यानी आप ही आप उस ऊँचे स्थान से आये और बिना किसी से सीखे हुए या सुने हुए असली भेद सच्चे मालिक का उन्होंने प्रगट किया। इसी तरह स्वतः जोगेश्वरों ने ब्रह्म पारब्रह्म पद का भेद और जुगत उसकी प्राप्ति की प्रगट करी और उनके बचन और बानी को सब कोई बड़ा और ईश्वर का हुक्म मानते हैं।

१८—बल्कि इसी तरह नई नई बात विद्या और बुद्धि की भी आदि में और वक़्त वक़्त पर किसी न किसी मनुष्य ने बिना किसी से सीखे हुए ज़ाहिर करी और सब लोग इस बात के क़ायल हैं कि वे मनुष्य उन नई बातों और चालों[4] के पैदा करने वाले हुए और उनको आज तक

१—क़ायदों। २—तरकीब। ३—अपने आप, बिना किसी के बनाए हुये। ४—रिवाजों।

सब कोई बड़ा मान कर उनकी ताज़ीम[१] और अदब[२] करते हैं और उनकी बानी और बचन को सनद मानते हैं और उसके मुआफ़िक़ औरों के बचन और बानी की तौल और जाँच करते हैं।

१६—जिस क़दर कि आसमानी किताबें हैं, जैसे कि चारों वेद और सरावगियों[३] का आदि पुराण और मुसलमानों का क़ुरान और ईसाइयों की अंजील, सब मनुष्य स्वरूप ऋषीश्वर या मुनीश्वर या आचार्य या पैग़ंबरों से प्रगट हुई हैं और जोकि वह परमेश्वर के कलाम यानी वाक्य माने जाते हैं, तो ज़ाहिर है कि परमेश्वर ने अपने बचन मनुष्य द्वारे कहे और प्रगट किये। और उन ऋषीश्वरों और पैग़म्बरों को, जोकि मनुष्य स्वरूप थे, परमेश्वर के ख़ास मेली[४] या मुसाहब[५] या उसके भेद की ख़बर देने वाले मानते हैं और उनकी बानी और बचन को ख़ास मालिक का कलाम समझते हैं और उन्हीं के वसीले से अपना उद्धार और मालिक के दरबार में पहुँचने का यक़ीन करते हैं और उनका दर्जा मालिक के दर्जे से दूसरा मान कर उनकी ताज़ीम और अदब और उनके चरणों में भाव और प्यार थोड़ा बहुत मालिक ही के मुआफ़िक़ करते हैं।

२०—यह दस्तूर[६] जो ऊपर लिखा गया, कुल मज़हबों में जारी है, यानी जो लोग कि मालिक का औतार स्वरूप मानते हैं या उसके भेद का हासिल होना ऋषीश्वर या आचार्य या पैग़म्बरों की मारफ़त मानते हैं यह दोनों

१—आदर। २—सत्कार। ३—जैनियों। ४—मेल रखने वाले। ५—दरबारी। ६—रिवाज।

फ़िरक़े[1] मनुष्य स्वरूप की पूजा या उसी स्वरूप में भाव और प्यार कर रहे हैं। इन दोनों गिरोह[2] से ख़ारिज[3] कोई नहीं है। सब लोग चाहे किसी मत में होवें, इन्हीं दोनों फ़िरक़ों में से हैं—सिवाय नास्तिकों के कि वे मालिक के क़ायल नहीं हैं, पर वे भी किसी न किसी मनुष्य स्वरूप आचार्य के, जिसने उनकी किताबें बनाईं और नास्तिक[4] मत जारी किया, क़ायल हैं और उसको अपने से बड़ा और अपना पेशवा मान कर उसके बचन के मुआफ़िक़ कार्रवाई करते हैं।

२१—जो लोग कि औतार स्वरूप या देवताओं की मूरतें या तसवीरें बना कर पूजते हैं या उनकी ताज़ीम करते हैं, वह सब सूरतें मनुष्य स्वरूप की हैं।

२२—इसी तरह से जो कोई किसी महात्मा या बुज़ुर्ग के निशान या उनकी कोई बरती[5] हुई चीज़ या उनके कलाम और बचन या उनकी समाध या तुरबत[6] या मज़ार की पूजा भेंट या ताज़ीम करते हैं, या उनकी कोई चीज़ वास्ते अपनी रक्षा के इस्तेमाल में लाते हैं, वह भी किसी मनुष्य स्वरूप की परशादी या निशान या बचन है, जैसे गुरु और महात्माओं की खड़ाऊँ या जूता या पलंग या कोई कपड़ा या बरतन या त्रिशूल या सूली का निशान या छोटी तसवीर या मुसलमानों में कलमा या कोई आयत क़ुरान की और हिन्दुओं में कोई मंत्र या जंत्र सोने, चाँदी या ताँबे या भोजपत्र या काग़ज़ वग़ैरह

१—पंथ। २—समूहों। ३—बाहर। ४—ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करने वाले। ५—इस्तेमाल की। ६—क़बर।

पर लिख कर गले में डालते हैं या बाज़ुओं पर बाँधते हैं या अँगूठी में रखते हैं।

२३—ऊपर के लिखे हुए हाल से साफ़ ज़ाहिर है कि क्या परमार्थ क्या स्वार्थ में जितनी बातें या चीज़ें हैं, सब मनुष्य स्वरूप से प्रगट हुईं, और सब जगह मनुष्य स्वरूप का ही भाव और प्यार और पूजा और अदब और ताज़ीम जारी है और मनुष्य स्वरूप ही के बानी और बचन और क़ायदे बाँधे हुए पर अमलदरामद[1] और कार्रवाई हर मुआमले में हो रही है।

२४—और जिस वक़्त में कि महात्मा और बुज़ुर्ग, जिनकी ऐसी महिमा है, मौजूद होंगे, उस वक़्त में उनके संगी और मानने वाले उनके साथ ऐसा ही बल्कि इससे ज़्यादा बरताव करते रहे होंगे जैसा कि अब उनकी नक़ल यानी मूर्त्ति और निशानों से कर रहे हैं।

२५—फिर जो राधास्वामी मत में परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी दयाल की (जो संत रूप धर कर प्रगट हुए और जिन्होंने दया करके निज भेद सच्चे मालिक यानी अपने निज रूप का और सहज जुगत उसकी प्राप्ति की समझाई) जिस क़दर भक्ति और भाव और प्यार और अदब और ताज़ीम की गई या की जाती है या करी जावे, वह उनके दर्जे और दया के मुक़ाबिले में थोड़ी से थोड़ी और कम से कम है।

२६—जो लोग कि ऐसी भक्ति और भाव और प्यार

१—व्यवहार।

को देख कर ख़्याल करते हैं या तान मारते हैं कि इस मत में मनुष्य गुरू की पूजा है, वे किस क़दर ग़लती और ग़फ़लत[1] और नादानी के घेर में पड़े हुए हैं और कैसे बे सोचे और बे समझे और बे विचारे बातें बनाकर हँसी उड़ाते हैं।

२७—इस समय में कितनी ही संगत और सभायें इस क़िस्म की जारी हैं, जो गुरु स्वरूप और मालिक के मनुष्य स्वरूप को अपनी ओछी बुद्धि और समझ के मुआफ़िक़ नहीं मानते हैं और न उससे मदद लेने की कुछ ज़रूरत समझते हैं। फिर ऐसे लोगों को सच्चा परमार्थ, जिसकी प्राप्ति निज घट के मानसी[2] और रूहानी[3] अभ्यास के पूरे होने पर मुनहसिर[4] है, कैसे हासिल हो सकता है? विद्या पढ़ कर बुद्धि की मदद से पोथियों का पाठ कर लें और स्तुति और भजन वग़ैरह गा लेवें, मगर भेद के ग्रन्थों से भेद और जुगती का दरियाफ़्त करना और उसके मुआफ़िक़ अपने अंतर में अभ्यास और कार्रवाई करके रस और आनंद लेना, बग़ैर मदद भेदी और अभ्यासी गुरू के, हरगिज़ हरगिज़ मुमकिन नहीं है। यही सबब है कि विद्यावान् और अनपढ़ और कर्मी[5] जीवों की हालत कभी नहीं बदलती, चाहे वे सालहासाल और जुगानजुग पोथी पढ़ने और पढ़ाने और भजन और स्तुति गाने और सुनने और मूरत पूजा और तीर्थ व्रत का अभ्यास करते रहें, क्योंकि उनकी सुरत यानी जीवात्मा का घाट उन कामों से नहीं बदलता है

१—मूर्खता। २—मन संबंधी। ३—आत्मा संबंधी। ४—आश्रित। ५—कर्मकांडी।

बल्कि दिन दिन संसार में लिपट कर धन और मान और बड़ाई की आसा और तृष्णा बढ़ती जाती है और सच्चे मालिक के चरणों का प्रेम या उसके मिलने की चाह एक ज़र्रा[1] भी उनके मन में पैदा नहीं होती।

२८—विद्या पढ़ कर जो कोई चाहे कि इल्म हिसाब और नजूम यानी ज्योतिष और इल्म कीमिया[2] और इल्म पैमाइश और बहुत से इल्मों की किताबें पढ़ कर सीख लेवे, तो बग़ैर मदद उस्ताद के वह किताबें हरगिज़ समझ में नहीं आवेंगी। इसी तरह कोई विद्यावान् परमार्थी भेद और अभ्यास की किताबें पढ़ कर जो समझना चाहे और उनके मुआफ़िक़ घट में अभ्यास करने का इरादा करे, वह बग़ैर भेदी और अभ्यासी गुरू के हरगिज़ हरगिज़ नहीं कर सकता है।

२९—इससे साफ़ ज़ाहिर है कि जो लोग भेदी और अभ्यासी गुरू का खोज नहीं करते और जो वे मिलें तो अपनी विद्या और बुद्धि के अहंकार में उनसे कुछ मदद लेना या दरियाफ़्त करना नहीं चाहते और न उनको अपने से बड़ा मान कर उनके सामने दीन अधीन होना चाहते हैं और जिनका परमार्थ सिर्फ़ इख़लाक़ी[3] और मालिक की सिफ़त यानी कर्म और धर्म और स्तुति की पोथियों के पढ़ने और पढ़ाने पर मुनहसिर है, या बाहरमुखी कर्म के शास्त्र या किताबें पढ़ कर उनके मुआफ़िक़ कार्रवाई करते या कराते हैं और जो पिछली टेक में बंधे हुए हैं यानी पुराने गुज़रे हुए महात्माओं को या औतारों या

१—लेश मात्र। २—रसायन शास्त्र। ३—सदाचार संबंधी।

बुज़ुर्गों या देवताओं को मानते हैं और अपने वक़्त के भेदी और अभ्यासी गुरू और महात्मा का खोज नहीं करते और न उनसे किसी क़िस्म की मदद लेने की ज़रूरत समझते हैं, इस क़िस्म के सब जीव कर्मी[1] और शरई[2] हैं और सच्चे परमार्थ से, जिससे जीव का सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल होना मुमकिन है, बिलकुल ख़ाली हैं। और जब तक ऐसी हालत उनकी रहेगी यानी अपने वक़्त के भेदी और अभ्यासी गुरु से मिलकर और जुगत दरियाफ़्त करके अभ्यास नहीं करेंगे, तब तक वे सच्चे परमार्थ से ख़ाली रहेंगे और उनका जन्म मरण और देह संबंधी दुख सुख भोगने का चक्कर कभी नहीं छूटेगा यानी अपने शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार ऊँच नीच देश और योनि में दुख सुख भोगते रहेंगे।

अर्थ शब्द नम्बर २३, बचन ४१,
पोथी सार बचन नज़्म

कड़ी

१—गूँगे ने गुड़ खाइया। वह कैसे कहे बनाय॥

अर्थ

जिसने कि अपने घट में शब्द का गहरा रस पाया वह उसको क्योंकर बयान कर सकता है? उसका हाल वही होगा जैसे कि गूँगे का, जो गुड़ खाकर उसके स्वाद के बयान करने से लाचार[3] है और यह कि जिस किसी को गहरा रस अंतर में आया वही उसके प्रगट करने में

१—कर्मकांडी। २—शरीयत पर चलने वाले। ३—मजबूर।

आम लोगों के सामने गूँगा हो गया।

कड़ी

१—बहिरे ने धुन पाइया। वह क्योंकर कहै सुनाय॥

अर्थ

जिसने कि दुनियाँ की तरफ़ से अपने कान बंद किये, उसी को अंतर में शब्द खुला। फिर वह उस शब्द और आनन्द के भेद को आम लोगों को कैसे जतलावे या सुनावे ?

कड़ी

३—अंधे मोती पो लिया। वह किसे दिखावन जाय॥

अर्थ

जिसने कि अपनी नज़र दुनियाँ की तरफ़ से खींच ली यानी आँखें बंद कर लीं, उसी ने अपनी सुरत की धार को दसवें द्वार में पहुँचाया यानी मोती पो लिया। फिर वह इस कैफ़ियत[1] को अवाम[2] को कैसे दिखा सकता है ?

कड़ी

४—लूले ने नभ थामिया। यह अचरज कहा न जाय॥

अर्थ

जो मन कि दुनियाँ में दौड़ने से रह गया यानी जिसने चंचलता छोड़ दी, उसी ने चढ़ कर नभ यानी आकाश को थाम[3] लिया और यही अचरज की बात है।

कड़ी

५—पिंगला[4] पर्बत चढ़ गया। कोइ साधू जाने ताय।

१—हालत। २—साधारण मनुष्यों। ३—धारण कर। ४—पंगु, लँगड़ा।

अर्थ

जो मन कि निश्चल हो गया, वही पिंगला है और वही सतगुरु की दया से सुमेरु पर्वत यानी त्रिकुटी पर चढ़ गया। इस हाल को कोई अभ्यासी यानी साधू समझता है।

कड़ी

६—रोगी सद जीवत रहे। बिन रोगहि मर मर जाय॥

अर्थ

जो कोई मालिक के चरणों के इश्क़ यानी प्रेम का बीमार हुआ और जिस किसी ने अपने मन को बीमार जान कर सतगुरु से उसका इलाज कराना शुरू किया, वही एक दिन अमर पद में पहुँच कर अमर हो जावेगा और जिस किसी को प्रेम की बीमारी नहीं लगी या जिसने अपने मन को बीमारी की ख़बर न ली यानी अपने को निर्मल और चंगा[1] समझा, वह बारम्बार जन्मेगा और मरेगा।

कड़ी

७—सोगी नित हर्षत रहे। बिन सोग चौरासी जाय॥

अर्थ

जो अपने प्रीतम सच्चे मालिक के वियोग[2] के बिरह में उदास और ग़मगीन[3] रहता है, वह दिन दिन अंतर में चरन रस पाकर मगन होता जावेगा और जिस किसी के हृदय में मालिक के चरणों का बिरह और प्रेम नहीं है, वही मनुष्य चौरासी यानियों में भरमता रहेगा।

कड़ी

८—चिंता में जो नित रहे। सो मिले अचिंते आय॥

१—तंदुरुस्त। २—जुदाई। ३—दुखी।

अर्थ

जो कोई अपने मालिक के मिलने और अपने जीव का सच्चा उद्धार और कल्याण करने की चिंता में रहता है, वही एक दिन अचिंत पुरुष यानी सच्चे मालिक से मिल कर निश्चिन्त हो जावेगा।

कड़ी

९—बैरागी भरमत फिरै। रागी मुक्ति समाय॥

अर्थ

जिस किसी ने संसार से वैराग्य किया यानी घर बार छोड़ कर भेष धारण कर लिया और मालिक के चरणों का प्रेम और प्यार उसके मन में नहीं आया, तो वह हमेशा चारों खानों में भरमता रहेगा और जिस किसी के मन में मालिक के चरणों का राग[1] और प्रेम समाया, वही एक दिन मुक्ति पद में पहुँच जावेगा।

कड़ी

१०—सतगुरु यह परचा[2] दिया। कोइ बिरले खोज कराय॥

अर्थ

सतगुरु ने इस तरह से सच्चे प्रेमियों को उनके घट में परचे दिये, सो इस बात को सुन कर कोई बिरले जीव उसके खोज और तलाश में लगेंगे।

कड़ी

११—अंतरमुख जो शब्द में। लेंगे बूझ बुझाय॥

अर्थ

और जो अपने अंतर में शब्द का अभ्यास करेंगे,

१—प्रेम। २—तजरुबा।

वही इस कैफ़ियत को समझेंगे और अपने घट में निरख और परख कर बूझेंगे।

कड़ी

१२—राधास्वामी कह दिया। तुम लेना शब्द कमाय॥

अर्थ

इस वास्ते सतगुरु राधास्वामी दयाल सब जीवों को पुकार कर कहते हैं कि हे भाइयो! शब्द की कमाई करो और अपने घट में रस और आनन्द लो और दया और मेहर के परचे देखो।

बचन—६

राधास्वामी मत करनी का है, सिर्फ़ विद्या और बुद्धि के समझ और विचार का नहीं है

१—राधास्वामी मत करनी का है, निरी[1] समझ बूझ और बातों का मत नहीं है। जिस किसी को कि सच्चा फ़िक्र अपने जीव के कल्याण का है और जन्म मरण का दुख और देह धर कर जो दुख सुख सहना पड़ता है उसका ख़ौफ़ दिल में आया है और अपने सच्चे मालिक माता पिता की महिमा को सुन कर दर्शनों का सच्चा दर्द[2] मन में पैदा हुआ है, उसी से थोड़ा बहुत अभ्यास उस जुक्ति यानी सुरत शब्द मार्ग का, जो वास्ते प्राप्ति सच्चे उद्धार के राधास्वामी दयाल ने उपदेश की हैं, बन पड़ेगा और

१—सिर्फ़। २—तड़प।

उसका फ़ायदा अंतर में थोड़ा बहुत मालूम होता जावेगा, जिससे शौक़ कमाई करने का और प्रीति और प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरणों में बढ़ती जावेगी।

२—जो ऐसे जीव राधास्वामी मत में शामिल होवें, उनको पहिले इन पाँच बातों का दुरुस्ती से समझ कर यक़ीन करना चाहिये।

३—पहली यह बात कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समरथ और ऐन[1] आनन्द और प्रेम स्वरूप हैं और उनका धाम ऊँचे से ऊँचा है, जहाँ से कि उनकी अंश यानी धार अथवा किरनियों के वसीले[2] से कार्रवाई कुल रचना की हो रही है।

इसका सरासरी या ज़ाहिरा सबूत यह है कि इस देश की कुल रचना और उसका पालन और ज़िन्दगी यानी ठहराव सूरज की रोशनी और गर्मी के आसरे है, जोकि बनिस्बत इस लोक के चैतन्य के, विशेष चैतन्य है। इसी तरह यह सूरज और उसकी रचना और उसका ठहराव दूसरे सूरज के आसरे है, जो इससे निहायत बड़ा और विशेष चैतन्य है और जिसके गिर्द[3] यह सूरज, मय सब अपने तारों यानी कुटुम्ब और परिवार के, घूम रहा है।

इस सूरज का नाम परमात्मा है। ऐसे ही परमात्मा रूपी सूरज मय अपने सूरजों के (जो उसका कुटुम्ब और परिवार है) ब्रह्म रूपी सूरज के गिर्द, जो त्रिलोकी नाथ है,

१—पूर्ण रूप से। २—जरिये। ३—चारों तरफ़।

घूम रहा है और यह ब्रह्म रूपी सूरज सत्तपुरुष स्वरूप निज सूरज की अंश है और उसी के आसरे उसकी कार्रवाई जारी है और सत्तपुरुष कुल मालिक राधास्वामी दयाल के, जो सब के निज भंडार और सोत पोत[1] हैं, आधीन है।

यह हमारा सूरज और उसकी कार्रवाई इस आँख से नज़र आती है और परमात्मा रूपी सूरज की मौजूदगी आकाशी रचना के इल्मवालों के बचन से, जिन्होंने बड़ी से बड़ी और उम्दा दूरबीन लगा कर जाँच करी है, साबित है। वह सूरज उनको दूरबीन से भी दिखलाई नहीं दिया, पर सूरज का उसकी तरफ़ चलना यानी उसके गिर्द घूमना अच्छी तरह से मालूम हुआ। और उसके ऊपर ब्रह्मरूपी सूरज का इशारा जोगीश्वरों ने किया है और उसके परे[2] के दो स्थान यानी सत्तपुरुष और राधास्वामी का भेद संत और परम संतों ने खोल कर अपनी बानी और बचन में लिखा है। और वह दोनों धाम निर्मल चैतन्य देश की हद में हैं और ब्रह्म रूपी सूरज ब्रह्मांड में है, जहाँ शुद्ध माया है, और आत्मा रूपी सूरज जो हमारा सूरज है और यह हमारा लोक मलीन माया के देश में हैं। जब कि तीन सूरज यानी आत्मा और परमात्मा और ब्रह्म स्वरूप का मौजूद होना किसी क़दर इस आँख से दीखता है और कुछ नजूमियों[3] और जोगीश्वरों के बचन से मालूम हुआ, तो बाक़ी दो स्थानों का भेद और उनका मौजूद होना संतों के बचन के मुआफ़िक़ मानना चाहिये। ख़ुलासा यह

१—भंडार। २—आगे। ३—ज्योतिषियों।

कि यह रचना बराबर एक से एक बड़े की ताक़त और सम्हाल से हो रही है और ठहरी हुई है, तो जो इन सब में ऊँचे से ऊँचा और सबका आख़ीर है, वही सबका निज भंडार और कुल मालिक और सर्व समर्थ है और उसी का नाम राधास्वामी दयाल है।

४—इस वास्ते कुल जीवों को जो राधास्वामी मत में वास्ते अपने जीव के उद्धार के शामिल होवें, इस धुर पद राधास्वामी दयाल का निश्चय करके और उसी धाम में पहुँचने का इरादा सच्चा और मज़बूत करके, जो जुगत सुरत शब्द मार्ग की बताई जाती है, उसका अभ्यास प्रेम और अनुराग के साथ शुरू करना चाहिये। और जोकि और मत वाले इस धुर धाम तक नहीं पहुँचे और उनमें से कोई परमात्मा और कोई ब्रह्म तक पहुँच कर रास्ते में ठहर गये, इस वास्ते राधास्वामी मत के अभ्यासियों को, इन मतवालों[1] की बातें सुनकर भूलना और भरमना या अपने अभ्यास में ढीले और सुस्त हो जाना नहीं चाहिये।

५—जो कि सर्व[2] ज्ञान और समझ बूझ और सब तरह का रस और आनंद और सरूर सुरत की धार के आसरे है, जो इन्द्रियों के वसीले से कुल कार्रवाई पिंड में और उसके बाहर करती है, इस वास्ते जो सुरत का निज भंडार है, वह कुल ज्ञान और आनंद और प्रेम का भंडार है। और मालूम होवे कि कुल रचना प्रेम के आसरे ठहरी हुई है और प्रेम के ही वसीले से कार्रवाई कुल

१—पागलों। २—सब।

रचना में हो रही है, यानी जहाँ और जिस काम में जिसकी थोड़ी बहुत मुहब्बत है, वह उसी जगह और उसी काम में तवज्जह और कोशिश करता है। और प्रेम से मतलब खैंच और मिलाव शक्ति से है, जिसको फ़ारसी में क़ुव्वते जाज़बा[1] कहते हैं।

६—दूसरी यह बात कि सुरत या रूह या जीवात्मा राधास्वामी दयाल की अंश यानी धार है और उसका निज घर उनके चरणों में है।

७—इस बात का सबूत ज़ाहिर है कि इस लोक में बल्कि कुल रचना में दो वस्तुएँ यानी चैतन्य और जड़ मौजूद हैं और चैतन्य ही की मदद से रचना होती है और उसी के संग उसका ठहराव है और जब वह किसी पिंड को छोड़ देता है, तब उस पिंड के नाम और रूप का अभाव हो जाता है। तो कुल रचना में सत्य और समर्थ वही चैतन्य यानी सुरत की धार है। जिस जगह यानी जिस पिंड में कि यह दाख़िल होती है या धार रूप होकर बीज से प्रगट होती है, वहीं कार्रवाई देह के बनाव और बढ़ाव और सम्हाल की जारी हो जाती है और पाँचों तत्त्व और तीनों गुण जो कि कुल रचना के मसाले के असली जुज़ यानी बड़े पदार्थ हैं, वहाँ हाज़िर और मौजूद होकर और आपस में रल मिल कर सुरत की धार की ताबेदारी[2] में दुरुस्ती से उस कार्रवाई में मदद देते हैं। और जब सुरत की धार पिंड से खिंच कर अलहदा हो जाती है, तब छिन

१—क़ुव्वते जाज़बा—आकर्षण शक्ति। २—अधीनता।

पल में देह की सूरत बदलती जाती है और थोड़े अरसे में उसका अभाव[1] हो जाता है।

८—इससे साफ़ ज़ाहिर है कि यह सब रचना सुरत की धार के आसरे ठहरी हुई है और इसी की शक्ति से प्रगट हुई और इसके वियोग से उसका अभाव हो जाता है, तो इस अंश की ताक़त थोड़ी बहुत वैसी ही हुई जैसी कि कुल मालिक की ताक़त है, यानी जो चैतन्य कि इस लोक में और तमाम रचना में मौजूद है और सुरत यानी धार रूप होकर जुदा जुदा पिंड की सम्हाल कर रहा है और जिसके सबब से यहाँ और सब जगह रचना सत्य मालूम होती है, वह उस महा चैतन्य कुल मालिक की अंश है और जो जड़ पदार्थ नज़र आता है, वह माया की अंश है।

९—तीसरी बात यह कि इस सुरत यानी जीव को अपने सच्चे माता पिता और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की सच्ची सरन लेकर कुल कार्रवाई करना चाहिये, क्योंकि कुल जीव यानी सुरतें राधास्वामी दयाल की अंश हैं और अब उन्हीं के चरणों की धार से ताक़त लेकर हर एक पिंड में कार्रवाई कर रही हैं। फिर सब तरह से वह राधास्वामी दयाल की दया यानी चरणों की धार के आधीन हैं। इस वास्ते मुनासिब और लाज़िम[2] है कि परमार्थी जीव अपना अहंकार करनी का छोड़ कर उनकी मौज और दया के आसरे काम करें तो उसमें उनकी दया की भी परख आवेगी और इसका बंधन उन कामों में नहीं

१—नाश। २—ज़रूरी।

होगा या बहुत कम होगा और परमार्थी कार्रवाई में बहुत मदद मिलेगी और तरक्क़ी भी जल्द होगी।

१०—इसका सबूत भी थोड़ा बहुत इस बयान से ज़ाहिर होगा कि हर एक आदमी की देह और इन्द्रियों और मन की कार्रवाई सुरत की धार के ऊपर मुनहसिर यानी उसके आधीन है, यानी जब तक कि धार पिंड में न आवेगी और अंग अंग में न फैलेगी, तब तक पूरी पूरी कार्रवाई देह की जारी न होगी। और यह धार ऊपर की धार से, जो दसवें द्वार से आती है, मदद लेती है और दसवें द्वार को दयाल देश से मदद मिलती है। इस तरह पर कुल रचना सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की दया के आसरे ठहरी हुई है और कार्रवाई कर रही है। फिर उनके चरणों की सरन लेना कोई नई बात नहीं है, क्योंकि असल में कुल रचना उनकी सरन में है।

११—और मालूम होवे कि कार्रवाई से यहाँ मतलब रचना की सम्हाल[1] से है। और बाक़ी जीवों की कार्रवाई अपने अपने अगले पिछले और हाल के कर्म और बासना के अनुसार होती है और जैसा जैसा उसका फल है, वह भोगते हैं। पर जो जीव कि सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की सरन में आये और मौज और दया के आसरे और भरोसे अभ्यास करने लगे, उनके पिछले कर्म आहिस्ता आहिस्ता कटते जावेंगे और प्रारब्ध[2] कर्म का भोग दया से बहुत हलका हो जावेगा और आइंदा को जो कर्म ज़रूरी

१—क़ायम रखने। २—पिछले कर्म जिनका फल भोग प्रारंभ हो गया है।

और वाजिबी[१] राधास्वामी दयाल की मौज के आसरे करेंगे, उनमें उनका बंधन नहीं होगा। इसी तरह से वे दिन दिन निःकर्म[२] होकर एक दिन धुरपद में पहुँच जावेंगे और उनका पूरा पूरा उद्धार हो जावेगा।

१२–चौथी बात यह कि राधास्वामी मत में जो अभ्यास ध्वन्यात्मक नाम के सुमिरन और स्वरूप के ध्यान और शब्द के श्रवण का जारी है, उससे बेहतर[३] और सहज और धुरपद में पहुँचाने वाली जुगत और कोई क़तई नहीं है। जो कोई अपना सच्चा उद्धार चाहे, तो इसी अभ्यास को बिरह और प्रेम अंग लेकर शुरू करे, तो एक दिन उसका काम बन जावेगा।

१३–मालूम होवे कि जो सुरत यानी रूह और जान की धार है, वही शब्द और नाम की धार है। जो कोई शब्द या नाम की धुन को सुनता हुआ चलेगा, वही सुरत या शब्द की धार को पकड़ के ऊपर चढ़ सकता है। और जोकि आदि में कुल मालिक के चरणों से शब्द की धार प्रगट हुई, इस वास्ते जो कोई शब्द की डोरी पकड़ कर चलेगा, वही कुल रचना के पार होकर निज धाम में प्राप्त होगा और कुल मालिक का दर्शन पावेगा। सिवाय शब्द की धार के और कोई रास्ता या जुगत या कोई धार ऐसी नहीं है जिसको पकड़ कर जीव धुरपद में पहुँच सके, क्योंकि और जो रास्ते और धारें हैं, वह माया के मंडल से निकसी[४] हैं और उसी में लै[५] हो जाती हैं।

१—मुनासिब। २—कर्म के बंधन से रहित। ३—अच्छा। ४—निकली। ५—लीन।

१४—इस वास्ते हर एक सच्चे परमार्थी को चाहिये कि भेद शब्द का और हाल स्थानों का, जो कि दरमियान[1] धुर पद और जीव की बैठक के मुक़ाम में मुक़र्रर हुए हैं, दरियाफ़्त करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वरूप का ध्यान करता हुआ और शब्द सुनता हुआ चले और इसी तरह सब मंज़िलें तै करता हुआ कुल मालिक राधास्वामी के चरणों में प्राप्त होवे। इस रीति से सच्चा उद्धार हासिल हो सकता है। और[2] जितनी जुगतियाँ या तरीक़े और रास्ते हैं, वे सब माया की हद में ख़त्म हो जाते हैं; इस वास्ते उनकी कमाई से पूरा उद्धार यानी सच्चा छुटकारा जन्म मरण से नहीं हो सकता है।

१५—पाँचवीं बात यह है कि यह लोक और संसार हमारी सुरत का देश नहीं है, बल्कि मन और माया का देश है। इस सबब से सुरत यहाँ पर कई ख़ोल या देहियों में बैठ कर कार्रवाई करती है और कुछ अरसा[3] मुअइयना[4] से, जिसको उम्र कहते हैं, ज़्यादा नहीं ठहर सकती। और इसका पिंड में आना और उसको छोड़कर चले जाना साफ़ नज़र आता है।

१६—निज देश सुरत का वही स्थान है जो कुल मालिक का धाम है। इस वास्ते सच्चे परमार्थियो को मुनासिब है कि इस देश और इस देह में मुआफ़िक़ परदेशियों के बरताव रक्खें, यानी जैसे कि कोई आदमी परदेश में रह कर वहाँ के लोगों से मुहब्बत और व्यवहार

१—बीच। २—दूसरी। ३—समय। ४—निश्चित।

पैदा करता है और अपने आराम के लिये सब तरह का सामान भी जमा करता है, पर अपने वतन[1] की याद और सुध नहीं भूलता है और जो असल पदार्थ हैं, उनको अपने देश में भेजता रहता है और जब मौक़ा देश में जाने का मिलता है, तब बहुत ख़ुशी के साथ अपने वतन के जाने को तैयार होता है और उन परदेशियों की मुहब्बत और वहाँ के सामान के छोड़ने का ज़रा भी दुख या अफ़सोस मन में नहीं लाता है।

१७—इसी तरह से प्रेमी और भक्त जन इस दुनियाँ के मोह और सामान में नहीं अटकते और ज़रूरत मात्र मुहब्बत और व्यवहार दुनियादारों के संग में रखते हैं और मुख्य प्रीति अपनी अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल के चरणों में, और जिस क़दर बन सके कमाई वहाँ जल्द पहुँचने के लिये, करते रहते हैं और अख़ीर वक़्त पर राधास्वामी दयाल की दया से सुखाले[2] अपने घर को रवाना होते हैं।

१८—अब जानना चाहिये कि सच्ची सरन राधास्वामी दयाल के चरणों की किसी को बग़ैर प्राप्ति प्रीति और प्रतीति के हासिल नहीं हो सकती और यह प्रीति और प्रतीति कोई दिन के अभ्यास से हासिल होगी, यानी जब कि परमार्थी जीव अभ्यास करके अपने घट में संत सतगुरु के बचन की निरख और परख कर लेगा, तब उसको सच्चा विश्वास और यक़ीन राधास्वामी दयाल के घट घट में

१—निज देश। २—सुखपूर्वक

मौजूद होने और उनकी सरन में आये हुए जीवों पर मेहर और रक्षा करने का आवेगा और तब ही से कार्रवाई उद्धार की प्रगट जारी होना समझना चाहिये।

१६—कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी बड़े दयाल हैं। जो जीव कि सच्चे मन से सरन में आया, उसकी सम्हाल हर तरह से अपनी मेहर से आप फ़रमाते हैं और जब तक कि उसको दयाल देश में नहीं पहुँचावेंगे, तब तक उसको नहीं छोड़ेंगे। इस वास्ते जो उनकी चरन सरन और सतसंग में आये हैं उनको अपने मन में यक़ीन रखना चाहिये कि राधास्वामी दयाल उनके जीव का कारज एक दिन ज़रूर बनावेंगे और जब तक वह निज देश में न पहुँचें, तब तक उन के अंग संग रह कर उनकी हर तरह से सम्हाल और रक्षा और परमार्थ की तरक़्क़ी फ़रमाते रहेंगे।

बचन—७

संग का बयान

१—आदमी के मन की चाल ढाल, स्वभाव, समझ और ख़्याल की गढ़त[1] और बनाव संग के ऊपर मुनहसिर है, यानी जिसको जैसा संग शुरू में ज़बर मिला, उसी मुआफ़िक़ उसकी रहनी और समझ, स्वभाव और ख़्याल और खान पान और पहरने और ओढ़ने की आदत और उदारता[2] और नम्रता[3] या सूमता[4] और अहंकारी अंग होगा।

१—बनावट। २—शील। ३—कोमलता। ४—कंजूसी।

२—कुल जीवों के मन और इंद्रियों का मुख और इनका झुकाव संसार के पदार्थ और भोग और मान बड़ाई की तरफ़ हो रहा है और उन्हीं में वे रस पाते हैं और उन्हीं की प्राप्ति के निमित्त[१] उम्र भर जतन और मेहनत करते हैं। और जब किसी की ऐसी ख़्वाहिश या जतन और तदबीर के पूरे होने में या पदार्थों के भोगने में कोई ख़लल डाले तो आपस में फ़ौरन् बिगड़ जाते हैं और इस क़दर अदावत[२] पैदा हो जाती है कि फिर उसका दूर होना या मन से भूलना बग़ैर किसी न किसी क़िस्म के एवज़ या बदला लेने के मुश्किल बल्कि नामुमकिन हो जाता है।

३—जोकि सुरत यानी रूह का स्थान इस देह में मन और इंद्रियों के परे है और जिस क़दर उसकी ताक़त है वह मन और इंद्रियों के वसीले से यहाँ ज़ाहिर होती है, इस वास्ते उसका भी झुकाव यानी मुख उलटा हो गया है यानी मन और इंद्रियों के संग बाहर के भोग और पदार्थों में उसकी आसा और मनसा लगी रहती है और हमेशा बाहरमुख करनी में मशग़ूल[३] रहती है।

४—सुरत की धार का मस्तक में ऊँचे देश से पिंड में उतरना और अंग अंग में ब-वसीले[४] रगों के फैलना और अख़ीर वक़्त पर उसी तरफ़ यानी मस्तक में ऊँचे देश को खिंच कर उलटना हर एक को अपनी आँख से नज़र आता है। तो जिस क़दर जिस सुरत का झुकाव नीचे की तरफ़ पिंड में और बाहरमुख ज़बर है या जिस क़दर उसके मन का बंधन अनेक पदार्थों और जीवों में हो गया है,

१—लिये। २—दुश्मनी। ३—लीन। ४—ज़रिये।

उसी क़दर उसको अख़ीर वक़्त पर ऊपर की तरफ़ खिंचने और उलटने में दिक़्क़त और तकलीफ़ और मुश्किल होगी और इसी का नाम कष्ट और क्लेश है जो अकसर जीव मौत के वक़्त सहते हैं।

५—विशेष करके सुरत का बंधन अपने तन में और फिर मन के संग और फिर इंद्रियों के वसीले से पदार्थों में हो गया है। और पदार्थ के कहने में कुल सामान खाने, पीने, पहिरने, ओढ़ने, रहने और सहने और बरतने का आ गया। और जोकि जुगानजुग[1] से यह सुरत मन और तन का संग करके भोगों में बरतती चली आई है, इस सबब से तन मन और पदार्थों में ऐसी रच पच[2] गई है कि सिवाय इनके दूसरा ख़्याल नहीं उठता और इनका संग छोड़ने में निहायत डरती है और बड़ी भारी तकलीफ़ मानती है।

६—अब जब तक कि सुरत को संत सतगुरु या साध गुरू का संग (जोकि उस निज घर से, जहाँ से कि सब सुरतें आई हैं, वाक़िफ़[3] हैं) न मिलेगा और वह इसको अच्छी तरह से इसके निज घर का भेद और रास्ता और चलने की जुगत न समझावेंगे और अपनी दया से इसके हृदय में कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में सच्ची प्रीति और प्रतीति और दर्शनों की चाह पैदा करके चलने का अभ्यास न करावेंगे, तब तक इसकी हालत और समझ बूझ और ख़्याल और रहनी नहीं बदलेगी।

७—सिवाय संत सतगुरु या साध गुरू के प्रेमी और

१—अनेक युगों। २—रच पच—रल मिल। ३—जानकार।

भक्त जन का संग (जिनको सतसंगी और अभ्यासी भी कहते हैं) बहुत ज़रूर है कि उनके संग में बैठ कर जीव को हाल हर एक की प्रीति और शौक़ घर के चलने के अभ्यास का मालूम होगा और यह कैफ़ियत देख कर और संत सतगुरु या साध गुरू के बचन बानी सुन कर, इसके दिल में उनकी मेहर और दया से आप ही आप शौक़ करने कमाई का और सहज में फिरने मन का संसार और उसके पदार्थों की तरफ़ से, और जोड़ने मन और सुरत का शब्द और स्वरूप में ऊँचे की तरफ़ अपने निज घट में पैदा होकर दिन दिन (जिस क़दर अंतर में रस और आनन्द मिलता जावेगा) बढ़ता जावेगा, और बाहरमुख कामों में दिन दिन तवज्जह हलकी और कम होती जावेगी।

८—यह तदबीर[1] संग के बदलने की है। और जो कोई सच्चा होकर संतों के संग में लगेगा, उसकी हालत ज़रूर आहिस्ता आहिस्ता बदलती जावेगी यानी उसके मन और इंद्रियों का रुख़[2] इधर यानी संसार की तरफ़ से हट कर घट में चरणों की तरफ़ फिरता जावेगा और जिस क़दर मेहनत और तवज्जह के साथ यह काम किया जावेगा, उसी क़दर उसका फ़ायदा दिन दिन अंतर में मालूम होता जावेगा।

९—यही सबब है कि संतों और महात्माओं ने जीवों को समझाया है कि पहिले तन मन और धन मालिक के चरणों में भेंट करो। हरचन्द कि यह तीनों चीज़ें दात और बख़्शिश उसी कुल मालिक की हैं, पर जीवों ने उनमें

१—जुगत। २—रुझान।

ऐसा अपनपौ[1] यानी अपना क़ब्ज़ा और दख़ल पैदा किया है कि उनके छोड़ने में निहायत ही तकलीफ़ और दुख मानते हैं। पर परमार्थी जीव को सतसंग करके इस क़दर विचार करना ज़रूर और मुनासिब है कि जब तक उसकी प्रीति और लाग[2] तन मन और धन में ज़बर रही आवेगी, तब तक मालिक के चरणों की प्रीति का घट में प्रगट होना मुश्किल है। इस वास्ते जिस क़दर परमार्थी की लाग इन तीनों में से उनको नाशमान और दुखदाई समझ कर आहिस्ता आहिस्ता कम होती जावेगी, उसी क़दर कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति जागती जावेगी और उसी मुआफ़िक़ अंतर में सहारा यानी रस और आनन्द भी मिलता जावेगा।

१०—जब कि सुरत का भंडार यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल का देश अंतर में है और उसका रास्ता भी नेत्रों के स्थान से अंतर में चलता है, तो फिर जिस क़दर बाहरमुख करतूत[3] है वह, सिवाय ज़रूरी और वाजिबी के, जीव को भटकाने और भरमाने वाली है। अलबत्ता संत और साध का संग, या उनकी बानी और बचन और अभ्यासी प्रेमी और भक्तों का संग, जिसका ताल्लुक़ अंतर के भेद और रास्ते की चाल से लगा हुआ है, अंतर की कमाई और करनी का मददगार है। हरचन्द[4] यह बाहरमुख काम है, पर अंतर की कार्रवाई से बिलकुल मिला हुआ और उसका बढ़ाने वाला है। इस वास्ते यह संग जब कभी

१—अपनापन। २—पकड़। ३—कार्रवाई। ४—गोकि।

भाग[१] से मिल जावे, तो उसको निहायत ग़नीमत[२] समझना चाहिये और जब जब मौक़ा मिले, उसमें शौक़ के साथ चल कर शामिल होना चाहिये।

११—सच्चे परमार्थियों को मुनासिब और लाज़िम है कि अपने मन और सुरत को परमार्थी काम में अपने घट में लगाने के वास्ते, जहाँ तक मुमकिन होवे, संसारी और बाहरमुख जीवों का संग कम करें और बाहरमुख करतूत, जो फ़ज़ूल और नावाजिब है, कम करते जावें और चित से भी ऐसे ख़्यालों को हटाते जावें, तो उनका रास्ता परमार्थ की कमाई का अपने अंतर में सुखाला और निर्विघ्न[३] चलेगा।

१२—सिवाय संतों और उनकी बानी और बचन के संग के, और जिस क़दर करतूत परमार्थी शक्ल में लोग बाहरमुख करते हैं, उसमें जीव के उद्धार का कुछ फ़ायदा नहीं है। अलबत्ता शुभ कर्म का फ़ायदा, यानी थोड़े दिनों का सुख इस लोक में या मरने के बाद किसी ऊँचे लोक में, मिल जावेगा। और जिस किसी ने प्रेमपूर्वक और सच्चे मन से मालिक के प्रसन्न करने के निमित्त[४] कोई काम किया होगा, तो उसको उसके एवज़[५] में संत सतगुरु का दर्शन मिलेगा और उनसे सच्चे मालिक से मिलने की अंतरमुख अभ्यास की जुगत मिलेगी और रफ़्ता रफ़्ता एक दिन उसका काम बन जावेगा।

१—ख़ुशक़िस्मती। २—न्यामत। ३—बिना रुकावट के। ४—लिये। ५—बदले।

अर्थ शब्द नम्बर १३, बचन ४१,
पोथी सार बचन नज़्म

कड़ी

१—सोधत सुरत शब्द धुन अंतर। घटत तिमिर नभ बासी ॥

अर्थ

अभ्यासी सुरत शब्द धुन छाँट कर पकड़ती हुई नभ में पहुँची और नीचे के अंधकार से न्यारी हो गई।

कड़ी

२—चमकत चाप धनुष गति न्यारी।
कंज जोति छिटकत उजियासी ॥

अर्थ

इस तौर से तीर की भाल के मुआफ़िक़ चमकती हुई तीसरे तिल से, जोकि धनुष स्थान है, पार होकर ज्योति का प्रकाश देखने लगी। (धनुष स्थान इस सबब से कहा कि दोनों आँखों से धारें कमान के मुआफ़िक़ मिलती हैं।

कड़ी

३—गगन गंग धारा उठ धावत। होत जहाँ निर्मल गत स्वाँसी ॥

अर्थ

अब वहाँ से (अर्थात् सहसदलकँवल से) सुरत की धार, जोकि गंगा की धार है, गगन की तरफ़ को दौड़ी जहाँ पहुँच कर प्राण निर्मल होते हैं।

कड़ी

४—जमुना तीर श्याम खुल खेलत। गोप गूजरी करत बिलासी ॥

अर्थ

और रास्ते में यमुना के किनारे (अर्थात बाईं तरफ़)

मन खुल कर सैर करता जाता है और सुरत भी उसके बिलास को देखती जाती है (गोपी रूप गूजरी अर्थात् सुरत जो इंद्रियों से न्यारी हो गई है)।

कड़ी

५—जसुदानंद कंस रिपु सुन्दर। धमक सुनत तज आसी॥

अर्थ

और वही मन जोकि कृष्ण है ऊपर की आवाज़ सुन कर जगत की आस छोड़ कर,

कड़ी

५—धूमत अधिक धधक धुन धावत। पावत काल तरासी॥

अर्थ

निहायत धूम धाम के साथ धुन की धधकार पकड़ कर ऊपर को दौड़ता है और काल मुरझाता जाता है।

कड़ी

७—बिमल नगर जहाँ घोर अखाड़ा।
खोजत रही नाम गति पासी॥

अर्थ

चढ़ते चढ़ते सुरत बिमल नगर अर्थात् सुन्न में, जहाँ हंसों के अखाड़े जमा हैं, पहुँची और नाम की गति वहाँ खोज कर अच्छी तरह से पहिचानी।

कड़ी

८—मीन मानसर भँवर कंज पर। भृङ्गी होत समझ गुन तासी॥

अर्थ

फिर सुरत मछली की तरह मानसरोवर में और भँवर की तरह गुफा में सैर करती हुई सत्तलोक में पहुँच

कर भूङ्गी अर्थात् सतगुरु स्वरूप की गति को प्राप्त हुई।

कड़ी

६—राधास्वामी उठत धाम धुन। बैठ मगन अबिनासी।

अर्थ

और वहाँ से राधास्वामी धाम में राधास्वामी धुन सुनती हुई पहुँच कर मगन हो गई और अविनाशी रूप होकर वहाँ विश्राम किया।

बचन—८

सब जीवों को, जो कुल मालिक राधास्वामी दयाल के बाल बच्चे हैं, अपने निज घर और सच्चे माता पिता को सुध लेकर चलने और उनके चरणों में पहुँचने का जतन करना चाहिये

१—इस दुनियाँ में हर एक शख़्स के मन में अपने घराने और बाप दादे की बड़ाई का बड़ा ख़्याल और मान रहता है। फिर जब कि यह बात मालूम हुई कि हम सब (पुरुष और स्त्री) कुल मालिक राधास्वामी दयाल के बाल बच्चे यानी पुत्र और पुत्री हैं, तब किस क़दर ख़ुशी और शान्ति हमारे मन में अपने ऊँचे कुल और सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल की बड़ाई की पैदा होनी चाहिये कि जिसके सामने और ख़ुशी और मान सब ओछे नज़र आवेंगे।

२—जब इस बात का कि हम सब कुल मालिक

राधास्वामी दयाल के बाल बच्चे हैं थोड़ा बहुत यक़ीन दिल में आवेगा, तब ज़रूर हमारे मन में कुल जीवों की तरफ़ थोड़ा बहुत प्यार बहिन भाई के मुआफ़िक़ पैदा होगा। और चाहे ज़ाहिर में उसका बरतावा हर एक से हर वक़्त और हर जगह इस समझ के मुआफ़िक़ न हो सके, पर मन में ख़्याल इसी क़िस्म के प्यार का थोड़ा बहुत ज़रूर रहेगा और दिल से वह शख़्स हर एक का हितकारी[1] बना रहेगा और अपने मतलब के वास्ते या बग़ैर ज़रूरत ख़ास के (जिसमें बहुत से जीवों का आराम और फ़ायदा नज़र आवे) किसी को मन और बचन और कर्म करके नुक़सान या तकलीफ़ पहुँचाने का इरादा न करेगा।

३—सिवाय इसके, जब ऐसा शख़्स (कि जिसने अपने तईं[2] और सबको राधास्वामी दयाल का बाल बच्चा समझा है) संत और महात्माओं की बानी और बचन पढ़ेगा या सुनेगा या संत सतगुरु या साध गुरू के सन्मुख पहुँच कर उनके दर्शन करेगा, तो ज़रूर उसके दिल में यह इरादा पैदा होगा कि, जहाँ तक बने और जिस तरह हो सके, अपनी चाल ढाल और रहनी और समझ बूझ ऐसी दुरुस्त करे कि जिसमें सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु प्रसन्न होकर इस पर दया करें और अपने चरणों में लगावें और इसको ऐसी ताक़त बख़्शें कि दिन दिन इसके संसारी अंग और हालत बदल कर परमार्थी रंग गहरा और पक्का चढ़ता जावे।

१—भलाई करने वाला। २—अपने आपको।

४—ऐसे शख़्स पर कुल मालिक और संत सतगुरु ज़रूर दया फ़रमावेंगे यानी उसके मन में परमार्थ और उसकी कमाई करने का शौक़ पैदा करके उसका मेल सतसंग से लगा देंगे, जहाँ कि वह सच्चे परमार्थ यानी प्रेमाभक्ति की की रीति और बरतावा समझ कर और सच्चे और कुल मालिक की महिमा और भेद सुन कर, सुरत शब्द मार्ग की कमाई में (जोकि संतों की निज जुगत, वास्ते पहुँचाने जीवों के निज घर में, है) लग जावेगा और दिन दिन बिकारो[1] अंग और स्वभावों को छोड़ता हुआ निर्मल होकर एक दिन अपने सच्चे माता पिता के चरणों में पहुँच जावेगा।

५—जैसे यह शख़्स संत सतगुरु की दया लेकर अभ्यास करता जावेगा, उसी क़दर उसको अंतर में मेहर और दया के परचे मिलते जावेंगे, जिससे इसके मन में यक़ीन कुल मालिक की बड़ाई और समर्थता और उसके घट में और हर जगह मौजूद होने का बढ़ता जावेगा। और उसके साथ प्रीति भी चरणों में दिन दिन बढ़ती जावेगी और नित्त नई उमंग और प्रेम घट में जागता जावेगा कि जिसके सबब से कुल मालिक और संत सतगुरु के चरणों में प्यार और भाव और कुल जीवों की तरफ़ दया भाव बढ़ता जावेगा और शुभ[2] अंग और स्वभाव आप ही आप उसके मन में पैदा होते जावेंगे और प्रेमी और भक्त जन और साध जन महा[3] प्यारे लगेंगे और उनकी और सतगुरु की सेवा और ख़िदमत

१—बुरे। २—अच्छे। ३—बहुत।

करने को मन में नई नई उमंग पैदा होगी।

६—मालूम होवे कि दुनियाँ में भी जब किसी की शादी होती है, तब पुरुष और स्त्री को आपस में किस क़दर प्यार और अपनी ससुरालवालों में कैसी मुहब्बत और उनको राज़ी रखने की किस क़दर चाह मन में फ़ौरन् पैदा हो जाती है। फिर जो परमार्थ में किसी को इस बात का यक़ीन हुआ कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समर्थ और सब जीवों के सच्चे माता पिता हैं और सब जीव उनके निज बच्चे हैं, तो जो उसके मन में राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरणों में (जो उनके निज भेदी[1] और उनसे मिलाने वाले हैं) प्रीति और भाव जागा और कुल जीवों की तरफ़ दया भाव पैदा हुआ, तो यह कुछ अचरज की बात नहीं है, बल्कि ऐसी हालत का पैदा होना फ़ौरन् वक़्त आने यक़ीन के ज़रूर चाहिये, क्योंकि यह निशान और सबूत यक़ीन का है। और जो ऐसी हालत न होवे तो जानना चाहिये कि उसके यक़ीन में किसी क़दर कसर[2] है।

७—जब कोई लड़का वर्ष दो वर्ष का है और उस वक़्त उसका बाप वास्ते नौकरी या सौदागरी के विदेश में चला गया और बहुत अरसे तक घर पर न आया, तो जब वह लड़का होशियार हुआ और अपनी माँ से हाल अपने बाप का सुना, तो उसी वक़्त उसको मुहब्बत बाप की तरफ़ पैदा हुई और उससे मिलने का शौक़ उसके दिल में

१—भेद जानने वाले। २—कमी।

जागा। इसी तरह जो जीव कि काल और माया के पैदा किये हुये पदार्थों में इस दुनियाँ में लिपट रहे हैं और अपने निज माता पिता और निज घर से बिलकुल बेख़बर हैं, फिर जब संत सतगुरु (कि जो भेदी उस घर के हैं और सच्चे माता पिता के मुआफ़िक़ जीवों का हित[1] दिल में रख कर उनके उद्धार के निमित्त[2] इस दुनियाँ में आते हैं) भाग से मिले और उन्होंने भेद और महिमा कुल मालिक राधास्वामी दयाल की सुनाई, उसी वक़्त उन जीवों के मन में प्यार और भाव और शौक़ दर्शन राधास्वामी दयाल का जाग उठता है और उसी दिन से वह उस जतन में लग जाते हैं कि जिसकी कमाई करके एक दिन अपने निज घर यानी राधास्वामी धाम में पहुँच जावें।

ऐसी प्रीति और प्रतीति का जागना कोई अचरज की बात नहीं है, पर संत सतगुरु के वचन में प्रतीति होनी चाहिये। और नहीं तो हालत मन की फ़ौरन् नहीं बदलेगी। अलबत्ता कोई दिन सतसंग करके और वचन बारम्बार सुन कर और अभ्यास करके और कुछ परचे अंतर में पाकर प्रेम जागता जावेगा और आहिस्ता आहिस्ता एक दिन काम पूरा बन जावेगा।

८—अब समझना चाहिये कि जिन जीवों के मन में इस दुनियाँ का हाल देख कर ऐसा ख़याल पैदा हुआ कि यह देश ठहराऊ और हमारा नहीं है और यहाँ के सुख तुच्छ और नाशमान हैं और जो कोई कुल रचना का

१—भलाई। २—लिये।

कर्त्ता है, वह कहाँ है और कैसे मिल सकता है और कोई देश ऐसा भी ज़रूर होना चाहिये कि जो अमर हो और जहाँ का सुख और आनंद भी सब सुखों का भंडार और अमर हो और इन सब बातों के दरियाफ़्त का शौक़ और खोज हर वक्त दिल में लगा रहता है, सो जब इन जीवों को दर्शन संत सतगुरु या साध गुरू का मिलेगा और वे भेद कुल मालिक और निज घर का और जुगत चलने की समझावेंगे, तब वे फ़ौरन् प्रतीति उनके बचन की करके अभ्यास में लग जावेंगे और उनके मन में प्रीति सच्चे मालिक और निज धाम की जाग उठेगी और वे संत सतगुरु (जोकि भेद देने वाले और पहुँचाने वाले उस घर के हैं) और प्रेमी जन के साथ निहायत[1] दीनता और मुहब्बत करेंगे और इस दुनियाँ से किसी क़दर बरदाश्ता-ख़ातिर यानी उदास होकर अपने निज घर की तरफ़ चलने की, जिस क़दर बन सकेगा, कोशिश करेंगे। ऐसे ही जीवों का नाम सच्चा परमार्थी है और उन पर दिन दिन कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया बढ़ती जावेगी।

६—इस वास्ते कुल जीवों को, जो फ़िक्र और बिचार और ग़ौर के साथ काम करते हैं और आँख खोल कर दुनियाँ के कारोबार की जाँच करते हैं, मुनासिब है कि इसी मुआफ़िक़ कार्रवाई करें यानी संत सतगुरु या साध गुरू का खोज करके उनसे सब भेद दरियाफ़्त करें और

१—अत्यंत।

कुल मालिक राधास्वामी दयाल की प्रीति और प्रतीति हृदय में बसाकर घर चलने का जतन और अभ्यास शुरू करें, तो एक दिन राधास्वामी दयाल की दया से निज घर में पहुँच कर अमर और पूर्ण आनंद को प्राप्त होंगे।

१०—बड़े अफ़सोस की बात होगी जो कोई संत सतगुरु के बचन की प्रतीति न लाकर संसार में ही माया के पदार्थों में लिपट कर भरमता रहेगा और अपने सबसे बड़े घराने और सच्चे माता पिता कुल मालिक का ख़्याल न करके, मन और इन्द्रियों के हुक्म में बरत कर, जन्म मरण और देहियों के दुख सुख भोगता रहेगा। सिर्फ़ नरदेही में जतन घर की तरफ़ चलने का बन सकता है और इस वास्ते ऐसे मौक़े को मुफ़्त खो देना और अपने जीव के कल्याण के निमित्त कोई जतन न करना निशान अभागता[1] का है, क्योंकि समझने और निर्णय करने वाली बुद्धि और अभ्यास करने की ताक़त पाकर जिस किसी ने कि उससे फ़ायदा न उठाया, तो वह आत्मघाती[2] हुआ यानी अपने जीव का आप ही नुक़सान किया।

११—बचन नम्बर ७ में थोड़ा बहुत सबूत इन पाँच बातों का दिया गया है कि (१) राधास्वामी दयाल सर्व समर्थ और कुल मालिक हैं और (२) सुरत या जीव उनकी अंश यानी बालक हैं और (३) सिवाय सुरत शब्द मार्ग के और कोई रास्ता सहज और धुर[3] पहुँचाने वाला नहीं है और (४) जो जीव उनकी सरन लेकर अभ्यास में

१—बदक़िस्मती। २—अपना नाश करने वाला। ३— सब से ऊँचे पद में।

लगेंगे, वही आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उनके चरणों में पहुँच कर परम आनंद को प्राप्त होंगे और (५) यह दुनियाँ बेगाना[१] यानी माया का देश है और जो जीव यहाँ रहेंगे, वह जन्म मरण और देही के दुखों से बच नहीं सकते। अब जीवों को चाहिये कि इस बचन की थोड़ी बहुत प्रतीति करके अभ्यास में लगें, तो वे एक दिन निज घर में पहुँच कर हमेशा को सुखी हो जावेंगे, नहीं तो वे माया के देश में अपने कर्मों के मुआफ़िक़ नीच ऊँच योनि और स्थानों में भरमते रहेंगे।

हर एक को अपने असली नफ़े और नुक़सान का विचार करके इस ज़िंदगी में काम करना चाहिये, नहीं तो बहुत पछताना और अफ़सोस करना पड़ेगा। और जब वक़्त हाथ से जाता रहा, फिर वह पछताना फ़ायदेमंद न होगा।

बचन—९

परमार्थी को सतसंग में और सतगुरु के सन्मुख मुआफ़िक़ परमार्थ की रीति और क़ायदों के बरताव करना चाहिये

१—हर एक आदमी जब जो काम करता है या जैसी सोहबत में जाता है, तो उसी काम और सोहबत का रूप धारण करके, जो क़ायदे उस काम या सोहबत के मुक़र्रर हैं, उन्हीं के मुआफ़िक़ बरताव करता है। जैसे विद्यार्थी जब

१—दूसरे का।

स्कूल या पाठशाला में जाता है, तब वहाँ लिखने पढ़ने ही का काम करता है और दूसरा काम वहाँ पर नहीं करता। और इसी तरह से कचहरी वाले जब कचहरी में जाते हैं, तब वहाँ की पोशाक पहन कर जो कार्रवाई कचहरी की है, सिर्फ़ वही काम करते हैं।

२—इसी तरह पर जो कोई परमार्थ का चाहने वाला है, उसको मुनासिब है कि जब गुरू या साध के सन्मुख या उनके सतसंग में जावे, तो वाद विवाद[1] छोड़ कर चित्त से होशियारी के साथ बचन सुने और उनका मनन[2] करे और भाव[3] के साथ दर्शन करे और अंतर और बाहर परमार्थ के क़ायदे यानी भक्ति की रीति के मुआफ़िक़ बरताव करे, यानी बाहर से इन्द्रियों को किसी क़दर रोके और एहतियात[4] रक्खे कि अंतर में सिवाय परमार्थी ख़यालों के संसारी तरंगे न उठावे और गुरू और साध का थोड़ा बहुत उसी क़दर भय और भाव करे जैसे कि अपने बाप दादे और बुज़ुर्गों का या जैसे अपने हाकिम का, क्योंकि वे परमार्थ के सच्चे बुज़ुर्ग और सच्चे हाकिम हैं।

३—जो जीव इस क़ायदे के साथ सच्चे गुरु के सन्मुख जावेगा, वह ज़रूर थोड़ा बहुत परमार्थ का लाभ यानी फ़ायदा लेकर उठेगा। और जो इसी तौर पर सतसंग में उसकी हाज़िरी कुछ अरसे तक बराबर जारी रही, तो उसके मन की हालत ज़रूर थोड़ी बहुत बदलेगी और सच्चे मालिक के चरणों का प्रेम उसके हृदय में पैदा होकर दिन दिन बढ़ता जावेगा।

१—बहस मुबाहसा। २—विचार। ३—प्रेम। ४—होशियारी।

४—सच्चे परमार्थी को कभी अगली पिछली टेक और अटक[१] में भरमना नहीं चाहिये और सतगुरु के सन्मुख अपनी समझ बूझ या अपने ख़्याल परमार्थ की निस्बत[२] ज़ोर देकर पेश करने नहीं चाहिये, बल्कि अपने तईं अनजान समझ कर, जो बचन कि सतगुरु निर्णय करके समझावें, उनको हित चित से धारण[३] करना चाहिये।

५—जो कोई हाकिम वक्त या डाक्टर या हकीम के पास जाता है, तो वह अपनी नौकरी या मुक़द्दमे की बाबत या अपनी बीमारी का हाल कहता है और जो हुक्म कि हाकिम देवे और जो दवा और परहेज़ कि डाक्टर तजवीज़ करे, उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करता है, वहाँ हाकिम या डाक्टर की ज़ात पाँत या उनकी बाहर या अंतर की रहनी पर नज़र नहीं करता। इसी तरह जो कोई सच्चा परमार्थी है, उसको लाज़िम[४] है कि साध गुरू के बचन और उनके अभ्यास की परख करे और ज़ात पाँत और लच्छण[५] वग़ैरह के ख़्याल में न पड़े, क्योंकि इसकी क्या ताक़त है कि यह, जो आप माया में ग़ोते खा रहा है, ऐसे लोगों की, जो कि मन और माया से किसी क़दर या बिलकुल न्यारे हैं, परख या जाँच कर सके। पर जो कोई दिन उनका संग करेगा तो अलबत्ता थोड़ी बहुत निरख और परख आवेगी, यानी उनकी पहिचान इस बात की थोड़ी कर सकेगा कि वे किस क़दर संसार से जुदे हैं।

६—सच्चे परमार्थी को लाज़िम है कि सतसंग में जाकर अपना काम करे और उसी का फ़िक्र रक्खे और

१—उलझन। २—बारे में। ३—ग्रहण। ४—ज़रूरी। ५—गुण दोष।

दूसरे परमार्थियों की तरफ़ न देखे और न उनके मुआमले में दख़ल देवे, लेकिन जो अपने से भक्ति में विशेष यानी परमार्थ की कार्रवाई में बेहतर नज़र आवे, तो उसकी चाल आप भी इख़्तियार[1] करे और जो मौक़ा होवे और बन सके तो उससे मदद लेवे।

७—और यह भी मुनासिब है कि जिस क़दर अपना शौक़ और उमंग होवे, उसको कम करके दिखलावे और ज़्यादा दिखावा उसका न करे और अपनी ताक़त से ज़्यादा काम वग़ैर अच्छी तरह सोचे और समझे हुए न करे, नहीं तो थोड़ा बहुत रास्ते में झटका लगेगा। उसको चाहिये कि जो काम करे, समझ और सोच कर धीरज के साथ करे और जितनी अपनी ताक़त होवे उससे कुछ कम काम में लावे और घबराहट के साथ जल्दी न करे, तो उसका रास्ता सुख़ाला चलेगा। ख़ुलासा यह है कि हिरसा हिरसी[2] और देखा देखी भारी काम परमार्थ के एकाएक न कर उठावे लेकिन आहिस्ता आहिस्ता चाल चलने से उन्हीं कामों को यह दुरुस्ती के साथ कर सकेगा। अपनी भक्ति और प्रेम को नित्त बढ़ाता जावे, उसके साथ इसकी ताक़त भी बढ़ती जावेगी।

८—सच्चे परमार्थी को यह भी मुनासिब है कि किसी दूसरे सतसंगी से, जो सतसंग में शामिल होवे, किसी बात पर तकरार[3] और हुज्जत[4] या लड़ाई या झगड़ा या बैर और विरोध और ईर्षा न करे, नहीं तो उसके प्रेम और भक्ति में मुफ़्त ख़लल[5] पड़ेगा और तरक़्क़ी में हर्ज होगा।

१—ग्रहण। २—देखा देखी। ३—झगड़ा। ४—लड़ाई। ५—विघ्न।

जो किसी का चालचलन इसको पसंद न होवे या उसकी रहनी में नुक़्स और कसर नज़र आवे, तो मुनासिब है कि उसको प्रीति भाव के साथ एकान्त में समझौती देवे और जो वह न माने, तो सतगुरु या साध से, जो सतसंग के अधिष्ठाता[1] हैं, इत्तिला कर देवे। उनको इख़्तियार है चाहे जसे उस शख़्स के साथ बरताव करें। इस शख़्स को चाहिये कि फिर उस सतसंगी के मुआमले में दख़ल न देवे और जो इसका मन उससे मिलने और बात करने को न चाहे, तो उससे मिलना और बोलना छोड़ देवे। फिर विरोध न करे और न इस बात की हठ[2] करे कि वह सतसंग से ख़ारिज कर दिया जावे, क्योंकि जो वह सतसंग में पड़ा रहा तो शायद आहिस्ता आहिस्ता गढ़[3] जावेगा और बिकारी अंग उसके साफ़ हो जावेंगे। और जो सतसंग से ख़ारिज हुआ तो और कहीं उसकी गढ़त होनी मुमकिन नहीं है।

६—सच्चे परमार्थी को लाज़िम है कि जो कोई चाल सतगुरु या सतसंग की उसकी समझ में न आवे और ज़ाहिरा उसको नापसंद या नामुनासिब मालूम होवे, तो उसकी निंदा यानी बुराई किसी सतसंगी या संसारी जीवो के सामने न करे और न अपने मन में उसको बुरा समझे और ऐसा यक़ीन करे कि उस कार्रवाई में ज़रूर कुछ न कुछ मसलहत[4] होगी कि जिससे फ़ायदा ख़ास या आम[5] या दोनों ख़ास और आम परमार्थी लोगों का मंज़ूर है।

जो उसका मन इस बात को न माने और भरम उठावे, तो बेहतर होगा कि किसी गहरे प्रेमी सतसंगी से

१—आचार्य। २—जिद। ३—सुधर। ४—मौज। ५—साधारण।

उसका हाल एकान्त में दरियाफ़्त करे या जो मौक़ा मिले तो ख़ुद सतगुरु से बिनती करके पूछ लेवे। तब उसका संदेह रफ़ा[1] हो जावेगा।

१०—मालूम होवे कि जहाँ कहीं संतों का सतसंग जारी होता है, वहाँ सच्चे परमार्थ का निर्णय करके उसकी प्राप्ति की जुगत समझाई जाती है और वह जुगत ठीक ठीक उन्हीं लोगों से कमाई जावेगी कि जिनके हृदय में अपने जीव के सच्चे उद्धार और सच्चे मालिक के दर्शनों की ज़बर चाह है। और जिनके मन में संसार की चाहें ज़बर हैं और परमार्थ का ख़्याल थोड़ा है, उनसे वह जुगती शुरू में दुरुस्ती के साथ नहीं कमाई जावेगी। लेकिन जो सतसंग और अभ्यास बराबर करते रहेंगे, तो कोई दिन में संसार की चाहें हलकी होकर परमार्थ की चाह उनके मन में भी ज़बर हो जावेगी और फिर अभ्यास में उनको भी रस और आनंद मिलना शुरू हो जावेगा।

लेकिन निपट[2] संसारी जीवों से संतों के सतसंग में ठहरा नहीं जावेगा और न वहाँ के बचनों के सुनने और समझने की ताक़त और बरदाश्त होगी। इस वास्ते कोई कोई चालें सतसंग में ऐसी जारी की जाती हैं कि जिनको देख कर और सुन कर संसारी जीव सतसंग में आकर ख़लल न डालें और सच्चे परमार्थियों पर अपने संग और संसारी बातों की छाया डाल कर उनके अभ्यास में विघ्नकारक[3] न होवें।

ऐसी चाल के जारी होने में परमार्थियों के प्रेम की

१—दूर। २—निरे, बिलकुल। ३—ख़लल डालने वाले।

तरक्क़ी होती है और निपट संसारी लोग नज़दीक नहीं आ सकते, दूर ही दूर से अपनी अनसमझता से निंदा करते हैं और झूठों को सतसंग से हटाते हैं।

११—सच्चे सतसंगियों में आपस में प्यार और मुहब्बत ज़रूर होवेगी, क्योंकि जब उन सबका एक ही मतलूब[1] और माशूक़[2] है और सिर्फ़ उसके मिलने की चाह हर एक के मन में ज़बर है और हर एक अपने अपने मुआफ़िक़ उस एक ही काम के पूरा करने के लिये जिस क़दर बन सके मेहनत और कोशिश कर रहा है, तो इन सबका आपस में मेल और इत्तिफ़ाक़ ज़रूर होगा और एक दूसरे को मदद देने के वास्ते हमेशा तैयार रहेगा। और जिस जिस में ऐसा मेल नहीं है, तो समझना चाहिये कि उन लोगों की कार्रवाई और मतलब में कुछ न कुछ कसर है, पर जो वह सतसंग में पड़े रहेंगे और थोड़ा बहुत अभ्यास करे जावेंगे तो आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उनकी भी सफ़ाई हो जावेगी।

बचन—१०

संतों के बचन हरचंद अधिकारी प्रति हैं, पर कुल जीवों को अपनी अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ उनका मानना और उनके मुआफ़िक़ अपनी रहनी और बरतावा दुरुस्त करना ज़रूर चाहिये

१—संतों ने जिस क़दर बानी और बचन कहे हैं,

१—लक्ष्य, इष्ट। २—प्रियतम।

वह सब उत्तम अधिकारी यानी लायक़ परमार्थी जीवों के वास्ते कहे हैं और उन्हीं की समझ में वे ज्यों के त्यों आवेंगे और उन्हीं जीवों से उनकी कार्रवाई यानी अभ्यास दुरुस्ती के साथ बन पड़ेगा।

और जो जीव कि मध्यम[1] दर्जे के अधिकारी हैं, वह भी उन बचनों को समझेंगे और मानेंगे, पर उनसे कार्रवाई आहिस्ता आहिस्ता बनती जावेगी और सतसंग और अभ्यास करते करते कोई दिन में वे भी उत्तम अधिकारी हो जावेंगे।

और निकृष्ट[2] अधिकारी यानी जो तीसरे दर्जे के जीव हैं, वे कोई दिन सतसंग करके बचन के समझने के लायक़ होवेंगे और फिर आहिस्ता आहिस्ता अभ्यास शुरू करेंगे। पर कुछ अरसा चाहिये कि उनसे अभ्यास दुरुस्ती से बन पड़े।

और जो चौथे दर्जे के जीव हैं, जिनको पामर[3] और नीच कहते हैं, वे निपट संसारी और कर्मी और अहंकारी हैं। वे संतों के सतसंग में नहीं आवेंगे और जो किसी सबब से आ गये तो ठहर नहीं सकेंगे और न अभ्यास में शरीक[4] होंगे।

२—संतों की दया और समर्थता[5] भारी और अपार है। वे जिस क़िस्म के जीवों को चाहें, चरणों में लगाकर, अपनी प्रतीति की बख़्शिश कर सकते हैं, पर आम दस्तूर[6] और क़ायदा यही है जैसा कि ऊपर लिखा गया।

१—बीच के। २—सबसे घटिया। ३—नीच। ४—शामिल। ५—शक्ति। ६—रिवाज।

कोई जीव चाहे उत्तम अधिकारी होवें, चाहे मध्यम या निकृष्ट, बिना संतों की दया के कुछ कार्रवाई परमार्थ की दुरुस्ती के साथ नहीं कर सकते। इस वास्ते सब जीवों को चाहिये कि जैसे बने तैसे संत सतगुरु के सन्मुख आवें और जैसी तैसी सरन उनके चरणों की लेवें, तो अलबत्ता उनका परमार्थ का भाग जागना शुरू हो जावेगा और रफ़्ता रफ़्ता संत सतगुरु की दया के बल से कमाई करके एक दिन पूरा काम बन जावेगा। हर तरह से महिमा संत सतगुरु की है और बिना उनकी दया के किसी जीव का सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है।

३—बचन नंबर ८ और ९ की क़दर और समझ प्रेमी जीव जानेंगे और वे ही उन बचनों के मुआफ़िक़ थोड़ी बहुत कार्रवाई करके अपने घट में रस और आनन्द पावेंगे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा और उनके चरणकँवल की प्रीति और प्रतीति उन जीवों के हृदय में दिन दिन बढ़ती जावेगी। और बाक़ी जीव उन बचनों को पढ़ कर थोड़ी बहुत समझ बूझ हासिल करेंगे, पर उनके मुआफ़िक़ कार्रवाई उनसे पूरी तौर पर बिलफ़ेल[1] नहीं बन सकेगी। कुल जीवों का बरताव एक क़िस्म का नहीं हो सकता। हर एक क़िस्म के जीवों की समझ बूझ और करनी में फ़र्क़ रहता है और उसी मुआफ़िक़ उनके दर्जे जुदे जुदे समझे जाते हैं, जैसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट और नीच वग़ैरह।

१—कुछ समय तक।

४—सब जगह इसी तौर पर जीवों की कार्रवाई में दर्जे हैं और थोड़ा बहुत फ़र्क़ रहता है, चाहे परमार्थ का काम होवे या दुनियाँ का।

पर जो सब जीवों का, जो एक संगत या फ़िरक़े या गिरोह[1] में शामिल हैं, मतलब और चाह एक ही है, तो सब के सब रल मिल कर उस काम को करेंगे और उस कार्रवाई में एक दूसरे का मददगार रहेगा और आपस में उनकी इस सबब से प्रीति और प्रतीति भी मज़बूत और क़ायम होवेगी क्योंकि सब का मतलूब यानी प्रिय पदार्थ एक ही है।

५—जब कि परमार्थ में और ख़ास कर संतों के सतसंग में सब सतसंगियों का इष्ट एक ही है यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल को सब मानते हैं और उन्हीं के धाम में पहुँचने का सबका इरादा है और इसी मतलब से सब कोई सतसंग और अभ्यास करते हैं, तो आपस में इन सब जीवों की उसी तरह पर और उसी दर्जे की प्रीति होनी चाहिये जैसे कि दुनियाँ में बहिन भाई और ख़ास बिरादरी में होती है और एक को दूसरे की हर हाल और हर वक़्त में जिस क़दर बन सके, मदद और पक्ष[2] करना चाहिये।

६—जो जो सच्चे परमार्थी हैं, वे तो आपस में ज़रूर उसी मुआफ़िक़ बरतेंगे जैसा कि ऊपर लिखा गया है। पर जो संसारी हैं और किसी सबब करके परमार्थ में शामिल हो गये हैं या जो कि अहंकारी और अपस्वार्थी[3] हैं और जिनके

१—जमात। २—तरफ़दारी। ३—ख़ुदमतलबी।

परमार्थ की चाह बहुत थोड़ी है, उनसे इस क़ायदे के मुआफ़िक़ नहीं बरता जावेगा, यानी उनके मन में पूरा पूरा प्यार और भाव कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरणों में नहीं आवेगा और न सतसंगी भाइयों में जैसे चाहिये प्रीति करेंगे। उनका बरताव सर्व अंग में बहुत करके ऊपरी होगा, किसी की भी प्रीति उनके अंतर में जैसी चाहिये नहीं धसेगी।

७—अब आम तौर पर यह बचन समझौती का कहा जाता है कि हर एक स्त्री और पुरुष को, जो राधास्वामी मत में शामिल हैं और आइन्दा होवें, मुनासिब और लाज़िम है कि परम पुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में सच्ची और गहरी प्रीति और प्रतीति करें और सतसंग और अभ्यास करके उसको दिन दिन बढ़ाते रहें और सतसंगी भाइयों और सतसंगिनों में बहिन भाई की सी प्रीति करें और कुल संगत को अपनी ख़ास और निज बिरादरी समझें और प्यार भाव के साथ उनके साथ बरतावा रक्खें, क्योंकि इनका संग बराबर दयाल देश तक रहेगा और संसारी भाई और बिरादरी का संग सिर्फ़ इसी ज़िन्दगी यानी जन्म तक का है।

८—सतसंगियों को चाहिये कि आपस में एक दूसरे की कसरों[1] पर नज़र न करें और जो किसी में कोई कुचाल[2] मालूम पड़े, तो उसको प्यार के साथ एकान्त में समझा देवें। सतसंगियों या संसारियों में उसकी कसर या ऐब को

१—दोषों। २—बुरी आदत।

प्रगट करके उसकी ग़ीबत[1] में ज़ाहिर न करें, क्योंकि इसी का नाम निंदा है और सतसंगी को इस ऐब से बचना चाहिये।

६—जो किसी सतसंगी या सतसंगिन की भक्ती और प्रेम और अभ्यास की तारीफ़ सुने, तो उसकी ईर्षा करके मन में कुढ़ना या जलना और उसका मन में नुक़सान या बुराई चेतना[2] या ख़्याल करना नहीं चाहिये, बल्कि इस बात की चौंप[3] अपने मन में लावे कि जैसी भक्ति और प्रीति उस सतसंगी या सतसंगिन की है, वैसी ही आप भी पैदा करे ताकि इसकी भी तारीफ़ होवे।

१०—सतसंगी और सतसंगिन को जहाँ तक बन सके किसी में औगुन दृष्टि लाना नहीं चाहिये, क्योंकि उस शख़्स में चाहे वह औगुन होवे या नहीं, पर औगुन देखने वाले के मन में वह औगुन सही[4] पैदा हो जावेगा और उसको अभ्यास के समय गुनावन उठाकर सतावेगा और जो ज़्यादा ख़्याल उसका जम गया, तो जगह जगह उससे निंदा करावेगा। इस में प्रगट नुक़सान औगुन देखने वाले का होवेगा। इस वास्ते यह आदत जिस क़दर जल्दी बने छोड़ना चाहिये और जो कोई ऐसा औगुन किसी में मालूम पड़े कि जिसके सबब से कुल संगत की बदनामी होती होवे, तो उसको एकान्त में गुरू या साध या सतसंगी से, जो संगत का अफ़सर होवे, कह देना मुनासिब है, ताकि वह मुनासिब तौर पर बंदोबस्त उसका कर दे। या इतनी एहतियात रखनी चाहिये कि किसी का कोई ऐब, जहाँ तक

१—ग़ैरहाज़िरी। २—विचारना। ३—होशियारी। ४—ज़रूर।

मुमकिन और मुनासिब होवे, आम में प्रगट न किया जावे।

११—खुलासा यह है कि हर एक सतसंगी और सतसंगिन राधास्वामी मत को लाज़िम और मुनासिब है कि अपनी ताक़त के बमूजिब जो जो बचन कि उनके फ़ायदे के वास्ते कहे गये हैं उनके, दिल और जान के साथ, मानने और बरतने में कोशिश करें। और जिस क़दर कि उनसे न माना जावे, उसी क़दर अपने में कसर समझें और उसी कसर के दूर करने के वास्ते जतन और प्रार्थना करते रहें और अपने अंतर में शरमाते और पछताते रहें, तो आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उनकी कसर दूर हो जावेगी और मेहर से उनकी रहनी और बरतावा बचनों के मुआफ़िक़ दुरुस्त हो जावेगा।

बचन—११

राधास्वामी मत केवल दया का मत है और इस मत में जीव का उद्धार सहज होता है।

१—मालूम होवे कि जो राधास्वामी दयाल ने सुरत शब्द मार्ग का उपदेश फ़रमाया है और उसके अभ्यास को ऐसा सहज कर दिया है कि औरत और मर्द, लड़का, जवान और बूढ़ा आसानी से कर सकता है, पर इस काम में हमेशा दया की ज़रूरत है क्योंकि जीव निहायत निबल और अजान और भूलनहार है। इस वास्ते जो अभ्यास और भक्ति के काम कि इससे बनवाने मंज़ूर हैं, वह सब

कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया से बनेंगे। बग़ैर दया के जीव की ताक़त नहीं है कि यह अभ्यास निर्बिघ्न और बराबर[1] कर सके, लेकिन जीव को चाहिये कि उनकी दया के भरोसे अपना इरादा मज़बूत करके या हिम्मत बाँध कर कोशिश करे जावे।

२—इसी तरह जो जीवों को समझाया जाता है कि मन और इन्द्रियों को अपने बस में लाओ और संसार और भोगों की तरफ़ से हटा कर अंतर में शब्द और स्वरूप के आसरे लगाओ और आहिस्ता आहिस्ता ऊँचे देश की तरफ़ चढ़ाओ, पर जोकि जीव जन्मानजन्म और जुगानजुग और अनेक वर्षों से माया के घेर में पड़ा हुआ है और संसारियों के संग और भोगों के रसों में फँसा हुआ है और अपने निज घर यानी सत्तपुरुष राधास्वामी देश को याद बिलकुल भूल गया है और उसके मन और इन्द्रियों का झुकाव बाहर की तरफ़ कुटुम्ब परिवार और माया के पदार्थों में हो रहा है और हर वक़्त उन पदार्थों की प्राप्ति के लिये जतन करता है, या उसी के ख़्याल में लिपटा रहता है, इस सबब से जो कभी सच्चे परमार्थ के बचन सुनता है वह भूल जाता है और जो जुगत कि मन और इन्द्रियों के काबू[2] में लाने के वास्ते बताई जाती है, वह बसबब दुनियाँ के ख़्यालों के भरे होने के इसके मन में कम ठहरती है और दुरुस्ती से नहीं बन पड़ती। इस वास्ते इस काम को भी थोड़ी बहुत दुरुस्ती से करने के लिये दया

१—लगातार। २—वश।

दरकार[1] है और वह दया कुल मालिक राधास्वामी दयाल, जब जब और जैसा जैसा मुनासिब समझते हैं, करते रहते हैं। लेकिन जीव को चाहिये कि दुनियाँ और उसके भोगों से किसी क़दर वैराग्य रक्खें और फ़ज़ूल ख़्वाहिशें न उठावें।

३—संतों ने कहा है कि जब तक जीव की भूल और भरम किसी क़दर दूर न होवें तब तक मुनासिब है कि सतसंग हर रोज़ एक बार या दो बार करता रहे। जो भाग से संत सतगुरु या साध का सतसंग मिल जावे तो बड़ी बात है, नहीं तो उनकी बानी और बचन का थोड़ा पाठ हर रोज़ एक या दो बार होशियारी के साथ समझ समझ कर करना चाहिये। उससे भी बहुत फ़ायदा होगा और भूल और भरम आहिस्ता आहिस्ता कम होते जावेंगे। और जब जब मौक़ा मिले तो साल भर में एक या दो बार या दो या तीन वर्ष में एक बार वास्ते कम से कम एक या दो हफ़्ता या ज़्यादा के ज़रूर सतसंग में शामिल होवे और उस वक़्त जो कुछ कि अपने मन में संदेह और भरम होवें, उनको साफ़ करावे और जो कोई और विघ्न अभ्यास में हर्ज करते होवें, उनको भी दूर करावे।

यह सतसंग भी बिना दया के नहीं मिल सकता है। और राधास्वामी दयाल सच्चे परमार्थियों पर आप दया करके, जब जब मुनासिब होता है, उनकी चाह पूरी करते हैं, यानी जब तब मौज से ऐसा ब्यौंत[2] बनाते हैं कि जिसमें वे सतसंग में शामिल होकर उससे फ़ायदा उठावें। और जो

१—ज़रूरी। २—हिसाब, मौक़ा।

ऐसा ब्यौंत न बने तो सच्चे सतसंगी से उनका मेल कराकर परमार्थ के गहरे और रसीले बचन उनको सुनवाते हैं कि जिसमें उनके कारज का बनाव जारी हो जावे। लेकिन जीव को चाहिये कि सतसंग में शामिल होने के लिये सच्चे मन से चाह उठाता रहे और जो बंदोबस्त इसके इख़्तियार में होवे करता रहे।

४—सब जीव जैसा कि चाहिये अभ्यास या करनी नहीं कर सकते। इस वास्ते राधास्वामी दयाल ने ऐसी मौज फ़रमाई है कि जो जीव सच्चे होकर उनके चरणों की सरन लेवेंगे और अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ शौक़ के साथ करनी भी करे जावेंगे, यानी अपने कुल काम परमार्थी और स्वार्थी उनकी मौज के आसरे करेंगे, तो वे उनकी हर तरह से सम्हाल और रक्षा फ़रमा कर जिस क़दर अभ्यास और करनी वास्ते उनके उद्धार के ज़रूर होगी, उनसे आप करा लेंगे और अख़ीर वक़्त पर उनको आप अपने चरणों की अमृत धार में लपेट कर जिस स्थान पर कि मुनासिब समझेंगे ऊँचे और सुखाले[1] देश में बासा देवेंगे। और जो कुछ करनी वास्ते पहुँचने धुर स्थान के बाक़ी होगी, उसको जीव को दुबारा जन्म देकर और फिर सतसंग में शामिल करके पूरी करावेंगे और इस तरह उसका कारज पूरा करेंगे।

५—खुलासा यह कि हर तरह कुल मालिक राधास्वामी दयाल जीवों पर अपनी दया फ़रमा कर हर हालत में

१—आनन्द पूर्ण।

उनका गुज़ारा करते हैं और परमार्थ में ख़ास कर जो कोई उनकी सरन दृढ़ करके सच्चे मन से लेवेगा, उसके जीव का काम बनावेंगे यानी उसका पूरा उद्धार करेंगे ।

६—सच्ची सरन के धारण करने के वास्ते ज़रूर है कि गहरी प्रीति और प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरणों में होवे और जब सतसंग करके मन में विश्वास आया और थोड़ा बहुत प्रेम जागा, फिर जिस क़दर कि अभ्यास इस जीव से आसानी के साथ बन पड़े, वही उसके उद्धार के वास्ते काफ़ी होगा, यानी राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से जिस क़दर करनी ज़रूरी और मुनासिब है, आप करा लेवेंगे और जीव को दयाल देश में बासा देवेंगे ।

७—राधास्वामी दयाल का हुक्म है कि जो कोई अपनी करनी पूरे तौर पर करके निज देश में पहुँचना चाहे, उसको चाहिये कि गहरा अभ्यास करे और मन और इंद्रियों को रोक कर क़ाबू[1] में लावे और सुरत को चढ़ा कर मुक़ाम मुक़ाम पर पहुँचावे । तब एक दिन धुर धाम में पहुँचेगा और ऐसी करनी वाले के संग दया बराबर रहेगी और वे दयाल अपना ख़ास सहारा देकर कारज बनावेंगे ।

८—और जिन जीवों से कि इस क़दर मेहनत अभ्यास की और कार्रवाई मन और इंद्रियों को रोकने और क़ाबू में लाने की नहीं बन पड़ती है पर सरन सच्चे मन से राधास्वामी दयाल के चरणों को धारण कर रहे हैं, उनको चाहिये कि प्रीति और प्रतीति चरणों में बढ़ाते रहें और

१—वश ।

जिस क़दर और जैसा बने अभ्यास भी करे जावें तब राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से उनके जीव का कारज आप बनावेंगे, जैसा कि इन कड़ियों में दया से आप फ़रमाया है—

धीरज धरो करो सतसंगत, मेहर दया से लेउँ सुधारा।
वह तो रूप दिखाकर छोड़ूँ, तुम जल्दी क्यों करो पुकारा।
तुम्हरी चिंता मैं मन धारी, तुम अचिंत रह धरो पियारा।
संशय छोड़ करो दृढ़ प्रीती, और परतीत सँवारा।
यह करनी मैं आप कराऊँ, और पहुँचाऊँ धुर दरबारा।

और कबीर साहब ने भी अपनी बानी में ऐसा ही कहा है—

दोहा

मत तू हंसा[१] डिगमिगे, गहो[२] मेरी परतीत।
काल मार मर्दन[३] करूँ, ले चलूँ भौजल जीत॥

६—इस वास्ते जो जीव कि राधास्वामी दयाल की सरन में आये हैं, उनको चाहिये कि उनकी दया की प्रतीति और भरोसा दृढ़ करके जिस क़दर कि उनसे बने करनी करे जावें। बाक़ी काम जो कुछ होगा, राधास्वामी दयाल आप सँवारेंगे।

१०—और मालूम होवे कि सरन लेने से यह मतलब नहीं है कि कुछ भी करनी न करें यानी न सतसंग और अभ्यास करें और न प्रीति और प्रतीति की तरक़्क़ी में कोशिश करें।

१—प्रेमी सुरत। २—धारण करो। ३—नाश।

जो जीव ऐसी समझ धारण करेंगे, उनको समझना चाहिये कि वे आलसी और बेपरवाह हैं और दया के लेने की क़ाबिलियत नहीं रखते और इस वास्ते जब तक वे हिम्मत बाँध कर अपनी कोशिश न करेंगे, तब तक उनके कारज का बनना भी शुरू नहीं होगा।

११—जो कोई दरियाफ़्त करे कि बिना कराने पूरी करनी और काटने कर्मों के राधास्वामी दयाल दया और मेहर से कैसे जीव का उद्धार करते हैं, तो जवाब उसका यह है कि—

(१) वे अपनी दया से संचित[1] और प्रारब्ध[2] कर्मों को उनका भोग जल्द जल्द करा के और फल उनका मन भर की जगह सेर भर में भुगता कर बहुत से इसी जन्म में कटवा देते हैं। और उन कर्मों का असर मन का सेर भर और सूली का काँटा इस तौर पर हो जाता है कि जीवों को उनके नाम के आधार और चरन सरन के भरोसे से तकलीफ़ बहुत कम व्यापती है, यानी ऐसी हालत में मन और सुरत उनके मौज से इस क़दर अंतर में खिंचे और तने रहते हैं कि दुख सुख का असर उनको बनिस्बत संसारी जीवों के कम व्यापता है।

(२) और क्रियमाण[3] कर्म का बंधन सरन वाले जीवों को बहुत कम या बिलकुल नहीं होता है क्योंकि जो काम कोई आसा धर के वे करते हैं, उसमें मौज को निहारते रहते हैं। और चाहे उनका मन मौज के साथ मुआफ़िक़त

१—प्राचीन जन्मों के कर्म, जिनका फलभोग आरंभ नहीं हुआ। २—कर्म जिनका फलभोग आरंभ हो गया है। ३—जो कर्म कि किये जा रहे हैं।

करे या न करे, वे अपनी मेहर से उन कर्मों के नतीजे यानी मतलब को इस तौर पर मोड़ देंगे कि जिसमें जीवों का परमार्थी फ़ायदा निकले और दुनियाँ का भी काम जिस क़दर ज़रूरी और मुनासिब है, औसत दर्जे पर बनता चला जावे और उनके मन का बंधन उसमें ज़्यादा न होने पावे और सतसंग करा के जीवों के मन में से दुनियाँ की फ़ज़ूल चाहें और आसा और मन्सा घटाते चले जाते हैं।

इस रीति[1] से क्रियमाण कर्म उनको बाँध नहीं सकते।

(३) और जो मेहर से उन जीवों से भक्ति और प्रेम की करतूत, जैसे सतसंग और सुमिरन और ध्यान और भजन और बानी का पाठ और संत और साध और प्रेमी जन की तन मन धन से सेवा कराते जाते हैं, इससे उनके मन और सुरत दिन दिन माया और उसके पदार्थों से उपराम[2] होते जाते हैं यानी इंद्रियों के घाट से हट कर दिन दिन ऊँचे की तरफ़ चढ़ते हैं। और अंतर और बाहर दया और मेहर के परचे[3] पाकर प्रीति और प्रतीति बढ़ती जाती है और राधास्वामी दयाल के दर्शन और उनके धाम में पहुँचने की उमंग जागती जाती है।

इस करनी के फल का कुछ हिसाब नहीं हो सकता, यानी दिन दिन उन जीवों का प्रेम बढ़ता जाता है और काल और कर्म और माया के घेर से उबार होता जाता है और संसारी चाह और करतूत दिन दिन घटती जाती है और उसके भोग और पदार्थों से चित्त हटता जाता है।

१—ढंग। २—उदासीन। ३—तजरबे।

१२—इस तौर से जीव के सच्चे उद्धार और उबार में किसी तरह का शक और संदेह बाक़ी नहीं रहता। और जो जीव कि सच्चे परमार्थी हैं और राधास्वामी दयाल की सरन में आये हैं, वह ऊपर की लिखी हुई बातों की जाँच कर सकते हैं और अपनी हालत दिन दिन बदलती हुई कुछ अरसे के अभ्यास के बाद देख कर और राधास्वामी दयाल की मेहर और दया की परख करके निश्चय[1] इस बात का कर सकते हैं कि ज़रूर सुरत शब्द मार्ग का, जिस क़दर बन सके, अभ्यास करके और राधास्वामी दयाल के चरणों की सरन दृढ़ करके उनके जीव का सच्चा कल्याण और उद्धार मुमकिन है।

१३—राधास्वामी मत में कोई काम जब्र[2] और कठिनता के साथ नहीं कराया जाता। जिस क़दर कार्रवाई कि जारी है सब सहज तौर पर कराई जाती है। किसी चीज़ का ज़बरदस्ती त्याग नहीं कराया जाता और न किसी बात को ज़बरदस्ती मनवाया जाता है और न कोई काम ताक़त से ज़्यादा कराया जाता है। जिस क़दर जिसकी उमंग है उसी क़दर वह कार्रवाई करता है। ख़ुलासा यह कि कुल कार्रवाई परमार्थ की इस मत में जीवों की श्रद्धा और उमंग और शौक़ और प्रेम पर मुनहसिर[3] है।

१४—सच तो यह है कि ऐसा ऊँचा और सच्चा और पूरा मत और ऐसा गहरा और धुर पहुँचाने वाला अभ्यास आज तक कहीं और किसी वक़्त में ऐसी आसानी के साथ,

१—विश्वास। २—ज़बरदस्ती। ३—निर्भर।

जैसी कि अब राधास्वामी दयाल ने कर दी है, प्रगट नहीं हुआ। इस मत में कुल जीव कुल क़ौमों और मुल्कों के शामिल हो सकते हैं और उसके अभ्यास की कमाई थोड़ी बहुत करके राधास्वामी दयाल की दया लेकर सहज में बग़ैर ज़्यादा मेहनत और तकलीफ़ के इसी जन्म यानी ज़िन्दगी में अपनी मुक्ति और उद्धार का सबूत पाकर थोड़ी बहुत शान्ति और आनन्द और निचिंताई[1] हासिल कर सकते हैं।

१५—यह मत और यह अभ्यास कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने आप संत रूप धारण करके इस दुनियाँ में प्रगट किया। और जो कि वे कुल रचना के सच्चे माता पिता हैं और सब जीवों का हित उनको बराबर मंज़ूर है, इस वास्ते यही मत और यही अभ्यास कुल जीवों के वास्ते जारी फ़रमाया यानी कुल मुल्कों के जीव इसमें शामिल होकर सहज में इसकी कार्रवाई और कमाई करके अपना उद्धार करा सकते हैं।

१५—जो कोई सच्चे खोजी और दर्दी परमार्थ के हैं, उनको यह बचन प्यारा लगेगा और वे सतसंग अंतर और बाहर करके, जो जो बातें कि ऊपर लिखी गई हैं, उनकी जाँच और राधास्वामी दयाल की मेहर और दया की परख करके मगन[2] होवेंगे। और जिनके मन में खोज और दर्द नहीं है, वे इस बचन की प्रतीति नहीं करेंगे और वे न तो सतसंग में शामिल होकर और बचन सुन कर ख़ुश होंगे और न अंतर में अभ्यास कर सकेंगे। फिर उनको

१—बेफ़िक्री। २—प्रसन्न।

जाँच और परख कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और दया की कि जो वे जीवों पर कर रहे हैं कैसे हो सकती है और फिर राधास्वामी मत और उसके अभ्यास की बड़ाई का यक़ीन कैसे हो सकता है?

१७—जिस किसी ने एक या दो या ज़्यादा बार सतसंग करके राधास्वामी मत को अच्छी तरह समझ लिया है और संशय और भरम उसके दूर हो गये हैं और निश्चय उसका और सरन राधास्वामी दयाल के चरणों में पक गई है और भक्ति मार्ग यानी परमार्थ के क़ायदे और रीति अच्छी तरह समझ लिये हैं और उसके मुआफ़िक़, जिस क़दर बनता है, बरताव भी करता है और अपने मन और इन्द्रियों की चाल की निरख परख करके बचनों के मुआफ़िक़ उनकी सम्हाल और सफ़ाई में कोशिश करता रहता है और अभ्यास जहाँ तक मुमकिन है राधास्वामी दयाल की दया लेकर दुरुस्ती से करता है और जो विघ्न उसमें ख़लल[1] डालते हैं, उनकी परख कर उनके दूर करने का जतन जैसा कि मुनासिब है करता है और अंतर और बाहर थोड़ी बहुत मेहर और दया राधास्वामी दयाल की अपने ऊपर परखता है, उसको ज़्यादा ज़रूरत सतसंग में आने की नहीं है, क्योंकि उसको बानी और बचन के पाठ और अंतर के अभ्यास और बचनों के मनन और विचार से वह फ़ायदा हासिल हो सकता है जो सतसंग में प्राप्त होगा लेकिन जब उसका दिल चाहे और मौक़ा मिले तब

१—रुकावट।

उसको इख़्तियार है कि सतसंग में शामिल होकर उसका आनन्द और बिलास हासिल करे।

१८—और जो लोग कि बहुत दूर देश में रहते हैं, उनको चाहिये कि एक बार तो जब और जैसे मौक़ा मिले, ज़रूर सतसंग में शामिल होवें और जो यह मुमकिन न होवे तो उन सतसंगियों का, जो एक या दो बार सतसंग में शामिल हो चुके हैं, सतसंग करके अपने संशय और भरम दूर करावें और प्रीति और प्रतीति चरणों में राधास्वामी दयाल के बढ़ावें और पोथी सार बचन वग़ैरह को समझ समझ कर अकसर पढ़ते रहें।

बचन— १२

चेत कर सतसंग और अभ्यास करके परमार्थी चिन्ता और खटक[1] हृदय में पैदा करना कि जिससे पूरा काम बन जावे।

१—जो कि राधास्वामी मत कुल मालिक से मिलने और उसके धाम में बासा पाने का मत है, इस वास्ते इसके रक्षक, और जो जीव कि सच्चे मन से इसमें शामिल होवें उनके सम्हालने वाले और धुर घर में पहुँचाने वाले, राधास्वामी दयाल आप हैं। बिना उनकी मेहर के कोई जीव इस मत में सच्चा होकर नहीं लग सकता और न दुरुस्ती से कार्रवाई उसके अभ्यास की जारी रह सकती है।

१—फ़िक्र।

२—जो जीव कि सतसंग में आवें और बचन चित्त देकर बिना पक्षपात[1] सुनें और अपनी विद्या बुद्धि और चतुराई को पेश न करें, तो थोड़े दिन के सतसंग करने में यह मत उनकी समझ में अच्छी तरह आ सकता है और संदेह और भरम दूर हो सकते हैं। तब जो जीव कि सच्चे खोजी और दर्दी हैं और दुनियाँ का हाल देख कर उनके मन में किसी क़दर वैराग्य आया है, वे राधास्वामी दयाल की बानी और बचन सुन कर ज़रूर मगन होंगे और अंतर में सतसंग का रस लेकर तृप्त[2] होते जावेंगे।

ऐसे जीवों को राधास्वामी दयाल अपने सतसंग में लगावेंगे और रास्ते का भेद और जुगत चलने की दरियाफ़्त करके वे जीव अभ्यास शुरू कर देंगे।

३—लेकिन जो जीव कि अधिकारी यानी सच्चे दर्दी नहीं हैं, वे जो इत्तिफ़ाक़ से सतसंग में आ भी जावेंगे, तो पक्षपात अपने ख़ानदानी मत की नहीं छोड़ेंगे और बचन उलटे सुलटे कह कर संतों के बानी और बचन को अच्छी तरह नहीं समझेंगे और एक, दो या तीन बार सतसंग में आकर बैठ रहेंगे और बाहर निकल कर अपनी ओछी बुद्धि और मत के मुआफ़िक़ संत मत की निंदा करेंगे। ऐसे जीव सतसंग में लगाने के लायक़ नहीं हैं। पर उनके मन में भी बीजा[3] पड़ जावेगा और किसी न किसी वक़्त जब उनके कर्मों का भार[4] किसी क़दर हलका हो जावेगा, तब वह बीजा अंकुर पैदा करेगा, यानी वे जीव फिर सतसंग

१—तरफ़दारी। २—संतुष्ट। ३—संस्कार। ४—बोझ।

में आवेंगे और होशियारी के साथ बचन सुन कर मानेंगे और थोड़ा बहुत अभ्यास भी उनसे बन पड़ेगा।

४—सच्चे परमार्थी जीव जो सतसंग और अभ्यास में लगाये गये हैं, उनकी प्रीति और प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरणों में और सुरत शब्द मार्ग की कमाई में दिन दिन बढ़ती जावेगी, यहाँ तक कि मन और इन्द्रियों के भोग उनको कम प्यारे लगेंगे और आलस और नींद और भूख आहिस्ता आहिस्ता कम होती जावेंगी और गुरु दर्शन और सतसंग और प्रेमी जन में प्यार बढ़ता जावेगा और राधास्वामी नाम और राधास्वामी दयाल के चरण उनके हृदय में किसी क़दर बस जावेंगे। ऐसे जीवों को राधास्वामी दयाल अपनाते हैं यानी उनकी रक्षा और सम्हाल हर दम मंज़ूर है और अंतर और बाहर उनको परचे मेहर और दया के मिलते जावेंगे।

५—फिर उन्हीं जीवों की सरन राधास्वामी दयाल के चरणों में दृढ़ और मज़बूत होती जावेगी और वे ही जीव अपने मन और इन्द्रियों के हाल और चाल की निरख और परख दुरुस्ती से कर सकेंगे और नामुनासिब और ग़ैरवाजिब[1] ख़्वाहिशें संसार की उनके मन में कम उठेंगी और जब जब उठेंगी तो फ़ौरन् उनको वे रोकेंगे और हटावेंगे और जब कभी भूल चूक कर या पुरानी आदत और स्वभाव के मुआफ़िक़ ऐसी चाहों में कभी बह जावेंगे, तो जल्द होशियार होकर अपनी हालत पर झुरेंगे,[2]

१—नामुनासिब। २—अफ़सोस करेंगे।

पछतावेंगे और शरमावेंगे और प्रार्थना करेंगे और उस दिन कुछ भजन और ध्यान ज़्यादा करेंगे ताकि जो नुक़सान और हर्ज मन और इन्द्रियों की कुचाल से हुआ है, उसकी सम्हाल हो जावे।

६–फिर आहिस्ता आहिस्ता उन जीवों की ऐसी हालत होती जावेगी कि उनको झीना[1] यानी बारीक ख़्याल परमार्थ यानी राधास्वामी दयाल के चरण कँवल का थोड़ा बहुत हर वक़्त रहेगा और अपनी हालत की परख और जाँच हर रोज़ करते रहेंगे और दिन दिन वचनों के मुआफ़िक़ अपने मन और इंद्रियों की दुरुस्ती और सफ़ाई और सम्हाल करते जावेंगे और मन और सुरत को समेट कर ध्यान और भजन के वसीले[2] से आहिस्ता आहिस्ता निज घर की तरफ़ चढ़ाते जावेंगे।

७–अब समझना चाहिये कि जब तक कोई सतसंगी इस तौर पर कि जैसा ऊपर लिखा है, चेत कर सतसंग करके अभ्यास में थोड़ी बहुत मेहनत दुरुस्ती के साथ नहीं करेगा और सतसंग में अच्छी तरह निर्णय करके राधास्वामी दयाल के सर्व समर्थ और कुल मालिक होने का और यह कि सुरत शब्द मार्ग के सिवाय और कोई अभ्यास ऐसा आसान और धुर पहुँचाने वाला नहीं है, पूरा निश्चय धारण नहीं करेगा और अपने मन और इन्द्रियों की निरख परख यानी चौकीदारी होशियारी के साथ नहीं करेगा, तब तक उसकी तरक़्क़ी परमार्थ की राधास्वामी मत के

१—सूक्ष्म। २—ज़रिये।

मुआफ़िक़ जैसा चाहिये नहीं होवेगी और न उनकी दया और मेहर की परख और जाँच आवेगी कि जिससे उनके चरणों में प्रीति और प्रतीति दिन दिन बढ़ती जावे और सरन दृढ़ होती जावे।

८—ऐसी हालत, जैसी कि दफ़ा ६ में लिखी है, जिस किसी को दया से हासिल होती जावे, तो जानना चाहिये कि वही जीव मेहरी[1] और बड़भागी है और वही एक दिन गुरुमुख बन जावेगा क्योंकि सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरण उसके हृदय में बस गये और वे दिन दिन संशय और भरम और संसारी चाहों का कूड़ा करकट उसके हृदय से निकाल कर एक दिन पूरी सफ़ाई कर देंगे और राधास्वामी दयाल की प्रीति की खटक ऐसी उसके हृदय में पैदा कर देंगे कि वह किसी वक़्त और किसी काम में नहीं बिसरेगी[2]। फिर ऐसे जीव अपने उद्धार की सूरत अपनी ज़िंदगी में आप देख कर मगन हो जावेंगे और जब तक उनका देह और संसार में बासा है, तब तक होशियारी से कार्रवाई करते रहेंगे कि जिसमें माया और मन ताक़त पाकर किसी तरह से उनके काम में विघ्न न डालें।

९—इस वास्ते सब सतसंगी और सतसंगिनों को मुनासिब है कि जिस क़दर जिससे बन सके राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर इसी तौर से, जैसा कि ऊपर ज़िक्र हुआ है, होशियारी के साथ सतसंग और अभ्यास करें और प्रीति और प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरणों

१—जिस पर मेहर है। २—भूलेगी।

में बढ़ाते और पकाते जावें कि जिसमें उनका काम जल्दी बन जावे और किसी तरह का संशय और भरम मन में बाक़ी न रहे और किसी क़दर सच्ची खटक उनके हृदय में बस जावे कि जिससे कुल कार्रवाई परमार्थ की दुरुस्ती से जारी रहे और दिन दिन तरक़्क़ी होती जावे और संसारी स्वभाव और आदतें परमार्थी चाल के साथ बदलती जावें।

बचन—१३

मज़बूत करना प्रतीति और प्रीति का राधास्वामी दयाल के चरण कँवल में

१—कुल कामों में चाहे परमार्थी होवें, चाहे दुनियाँ के, पहिले प्रतीति और यक़ीन दरकार[1] है। जब तक कि जीव को पूरी प्रतीति और यक़ीन किसी अच्छे काम का नहीं होता, तब तक वह उस काम को प्रीति और दुरुस्ती से नहीं करता और न नाक़िस[2] काम के करने से ख़ौफ़ खाता है।

२—प्रतीति में बहुत दर्जे हैं, लेकिन बिना गहरी और पूरी प्रतीति के, कि जो किसी वक़्त और किसी हालत में चाहे दुख होवे या सुख डिग न जावे और एकरस क़ायम रहे, पूरा काम नहीं बन सकता। और वैसे तो जिस क़दर जिसकी प्रतीति है, उसी क़दर उसको फ़ायदा और फल उसका ज़रूर मिलेगा।

१—ज़रूरी। २—बुरे।

३—पूरी प्रतीति का दृष्टान्त[1] यह है कि (१) जैसे किसी को कहा गया कि तेरे फ़लाने मकान में अंदर ज़मीन के इतनी गहराई पर ख़ज़ाना है, जो उसको इस बात की प्रतीति आगई तो वह ज़रूर उसका खोदना शुरू करेगा और जब तक कि ख़ज़ाना नहीं निकले, तब तक बराबर मेहनत के साथ खोदना जारी रक्खेगा और (२) जैसे किसी को कहा गया कि तेरे फ़लाने मकान में ज़हरीला सर्प है, तो वह जब तक कि उस सर्प को निकालने का बंदोबस्त न हो जावेगा, तब तक ख़ौफ़ के मारे उस मकान में नहीं जावेगा।

४—इसी तरह परमार्थ के मुआमले में जब तक कि गहरा सतसंग करके यानी तवज्जह और दुरुस्ती के साथ बचन सुन कर और उनका मन में अच्छी तरह विचार करके पूरी प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरणों में कि वे कुल मालिक और सर्व समर्थ हैं, न आवेगी, तब तक मन थोड़ा बहुत डावाँडोल[2] रहेगा, यानी जब तब इधर उधर भरम उठाता रहेगा। और जब तक ऐसी हालत रहेगी, तब तक जो अभ्यास कि संत सतगुरु ने बताया है, दुरुस्ती से नहीं बनेगा और उसका थोड़ा बहुत रस भी जैसा कि चाहिये नहीं आवेगा और फिर राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रतीति भी नहीं बढ़ेगी।

५—ऐसी प्रतीति के आने में कितने ही विघ्न अपना ज़ोर करते हैं और वह आगे लिखे जाते हैं और उनके दूर

१—मिसाल। २—डिगमिग।

करने का जतन भी लिखा जाता है।

यह विघ्न या तो प्रतीति को डिगमिग कर देते हैं या भुला देते हैं या उसमें संदेह पैदा कर देते हैं कि यह बात सच्ची है या नहीं और इसमें वह फल जोकि संतों ने कहा है मिलेगा या नहीं। और यह विघ्न यह हैं–(१) पहिले विशेष चाह मन और इंद्री के भोग विलास की ओर लगे रहना उसी ख़्याल और जतन में। (२) दूसरे टेक और पकड़ अपने घराने के इष्ट और मत में। (३) तीसरे पकड़ और अटकाव[1] उन बातों में जो विद्यावान् और चतुरे लोगों ने मालिक और उसके मतों की निस्बत अपनी किताबों में लिखी हैं। (४) चौथे पकड़ अपनी बुद्धि की समझौती में, जो और मतों का हाल पढ़ कर और सुन कर और थोड़ी बहुत विद्या हासिल करके पैदा की है। (५) पाँचवें बेख़ौफ़ी मौत और नरकों के दुखों से और बेपरवाही निस्बत अपने जीव के कल्याण के। (६) छठे अपनी अनजानता और ओछी समझ करके निंदकों के बचन सुन कर भरम जाना। (७) सातवें पुराने इष्ट और पिछले महात्मा और औतार और देवताओं में, जो कुल मालिक राधास्वामी दयाल के नीचे और उनके पैदा किये हुये हैं, भाव का होना और मन में थोड़ा बहुत संसारी नफ़ा या नुक़सान का ख़ौफ़ करके उस भाव का क़ायम रहना। (८) आठवें अभ्यास यानी भजन और ध्यान के वक़्त जैसा मन चाहता है रस के न मिलने से मन का रूखा और फीका या निरास हो जाना। (९) नवें अपनी या

१—उलझन।

अपने कुटुम्बियों की तकलीफ़ के वक्त राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रार्थना करने से और उस तकलीफ़ के जल्द दूर न होने या घटने से चित्त का दुखी और किसी क़दर सुस्त और निरास हो जाना।

६—पहिले विघ्न की निस्बत इस क़दर बयान करना काफ़ी है कि दुनियाँ के कारख़ाने को नज़र ग़ौर से देखना और उसके भोग और पदार्थों को तुच्छ और नाशमान समझ कर और अपनी मौत की याद चित्त में लाकर उनकी चाह और क़दर किसी क़दर मन से कम करना और दुनियादारों के व्यवहार और बरताव को जाँच कर उसका पूरा भरोसा न करके चित्त से उनकी क़दर को घटाना। यह बात कोई दिन में चेत कर सतसंग करके हासिल होगी। वाजिबी[1] और ज़रूरी चाह और क़दर दुनियाँ के सामान की (जिस क़दर कि अपने आसत दर्जे पर गुज़ारे के लायक़ दरकार होवे) करने में हर्ज नहीं है, लेकिन तृष्णा[2] और फ़ज़ूली परमार्थ में विघ्नकारक है।

दूसरा विघ्न ख़ूब समझ समझ कर सतसंग करने और राधास्वामी मत के उसूल और क़ायदे अच्छी तरह से समझने से दूर हो सकता है।

खोजी और दर्दी जीवों को ऐसा ख़्याल नहीं रखना चाहिये कि जो ऊँचे से ऊँचा और सच्चे मत का हाल सुने तो उसको अपने घराने के पुराने मत से मिला कर जैसे बने तैसे एक ही और बराबर माने। क्योंकि दुनियाँ में हर

१—मुनासिब। २—संसारी बासनाएँ।

एक चीज़ में दर्जे हैं और इसी तरह परमार्थ में भी बहुत दर्जे हैं और हर एक मत एक एक दर्जे से ताल्लुक़ रखता है। फिर सब मत बराबर कैसे हो सकते हैं? इस वास्ते जो मत कि सबसे ऊँचा और गहरा है, और उसके पेट में सब दर्जे आ गये हैं, तो वही मत सबसे बड़ा है। और यह बात सिर्फ़ राधास्वामी मत में पाई जाती है। इस वास्ते अपने जीव के कल्याण के लिये उसको सबसे बड़ा मानना ज़रूर है और अपने पुराने और ओछे मत की टेक को छोड़ना मुनासिब है।

८—तीसरे विघ्न की निस्बत इतना बयान करना काफ़ी होगा कि जितने विद्यावान् और चतुरे पुराने वक्तों में हो गये, या ज़माने हाल[1] में मौजूद हैं, वे सब नतीजे को देख कर उसके सबब को बुद्धि से दरियाफ़्त करके, जहाँ तक कि उनकी नज़र और समझ की पहुँच हुई, बयान करते हैं। और असल हाल और आदि सबब की उनको ख़बर नहीं है, क्योंकि वह उनकी बुद्धि और नज़र की हद से बहुत दूर है और बग़ैर अपने अंतर में अभ्यास करने के और अपने मन और सुरत की चढ़ाई करने के मालूम नहीं हो सकता। और इन लोगों में अंतर का अभ्यासी और घट के भेद से ख़बरदार[2] कोई नहीं हुआ और न है। और यह बात उनकी बानी और बचन से साफ़ ज़ाहिर है, यानी उसमें घट के हाल और अभ्यास का कहीं भी ज़िक्र नहीं आया है। फिर उनके बचनों को संतों के बचन के मुक़ाबले में,

१—वर्तमान समय। २—जानकार।

जिन्होंने कि सब हाल और भेद असली और आदि स्थान और कुल रचना को देख कर कहा है, कैसे सही और दुरुस्त मान सकते हैं ? उनको न तो मालिक कुल का दर्शन मिला और न उसकी क़ुदरत[1] की, जोकि ऊँचे देशों की रचना में प्रगट है, ख़बर पड़ी। फिर जो कोई उनके बचन को मानेगा, वह सच्चे मालिक से विमुख होकर हमेशा किसी न किसी क़िस्म की देही धारण करके दुख सुख भोगता रहेगा और जन्म मरण के चक्कर से कभी छुटकारा उसका नहीं होगा।

इस बात का सिर्फ़ इसी क़दर सबूत काफ़ी है कि कुल जीव, क्या विद्यावान् और क्या मूरख, इस दुनियाँ में माया और उसके पदार्थ और मायाधारियों[2] के आशिक़[3] हो गये, यानी उन्हीं में उनका भाव और प्यार और उन्हीं की चाह उनके दिल में रही और सच्चे मालिक का भय और भाव उनके मन में नहीं आया, बल्कि उसकी मौजूदगी में भी शक और संदेह उनके मनों में रहा। और संत और साध जन उस सच्चे मालिक के निहायत दर्जे के प्रेमी और आशिक़ हुये और अपनी बानी और बचन में उसी की महिमा और प्रीति का वर्णन किया। अब ख़याल करो कि जो विद्यावानों को उस सच्चे मालिक की कुछ भी ख़बर पड़ी होती या कुछ भी जलवा[4] उसके अपार और अथाह[5] नूर का नज़र आया होता, तो वह दलीलें और हुज्जतें[6] विद्या और बुद्धि से बना कर जीवों को क्यों भरमाते और

१—शक्ति। २—धन और संसारी ऐश्वर्य वालों। ४—झलक। ३—प्रेमी। ५—अपार। ६—झगड़े, विवाद।

उनके दिल में उस सच्चे मालिक का इश्क़ और प्रेम क्यों नहीं आया और उसी को सब जीवों को क्यों नहीं दृढ़ाया और उस मालिक की महिमा क्यों नहीं गाई ? इसी से साफ़ ज़ाहिर है कि न तो उन्होंने उस मालिक का दर्शन पाया और न उसकी अथाह क़ुदरत की ख़बर पाई और न पूरा यक़ीन उसकी मौजूदगी का उनके दिल में आया। फिर यह लोग सब के सब उस सच्चे मालिक से विमुख[1] रहे और इस वास्ते जो कोई उनकी किताब और बचनों को पढ़ेगा या सुनेगा और मानेगा, वह भी उनके मुआफ़िक़ विमुख रहेगा। और हाल यह है कि सच्चा कुल मालिक ज़रूर मौजूद है। देखो यह लोक और कुल उसकी रचना वास्ते अपनी पैदाइश और परवरिश[2] के इस सूरज की, जो चैतन्य है, आधीन है और यह सूरज मय अपने तारा मंडल के दूसरे सूरज का, जो इससे भी विशेष चैतन्य है, आधीन है। यहाँ तक तो इल्म नजूम[3] और दूरबीन की मदद से मालूम हुआ है। और संत फ़रमाते हैं कि उस सूरज के ऊपर तीन बड़े से बड़े सूरज मंडल और हैं। जो अख़ीर मंडल है, वही अपार और अनंत है और वही कुल मालिक का धाम है। इस हिसाब से सच्चे और कुल मालिक का मौजूद होना साबित हुआ। और जोकि कुल रचना में कारीगरी और समर्थता उसकी क़ुदरत की और इरादा और मतलब हर एक चीज़ के पैदा करने का ज़ाहिर है, इस वास्ते वह कुल मालिक कुल इल्म और ज्ञान और सर्व

१—उदासीन, प्रतिकूल। २—पालन पोषण, स्थिति। ३—ज्योतिष।

समर्थता[1] और समझ बूझ और ताक़त का भंडार है। अब ख़याल करो कि जो कोई उसकी मौजूदगी में शक लावे या उसको अचेत और अज्ञानी और बेताक़त और बेसमझ ठहरावे, तो किस क़दर वह भारी पापी और गुनहगार होगा और उसकी दया और मेहर से किस क़दर दूर पड़ेगा और अभागी[2] रहेगा ?

६—चौथा विघ्न मिस्ल विघ्न नम्बर २ के चेत कर सतसंग करने और संतों की बानी और बचनों को पक्षपात[3] छोड़ कर निर्मल बुद्धि से विचारने से दूर होवेगा। संतों के सतसंग में हर एक बात का अच्छी तरह से निर्णय[4] होता है और वे नहीं चाहते कि कोई शख़्स उनके बचन को बेसमझे हुए और बिना निर्णय करने के अंधों और मूर्खों की तरह मान लेवे। इस वास्ते खोजी और दर्दी को मुनासिब है कि जो बात कि उसने और मतों का हाल सुन कर या पढ़ कर या उनमें से किसी में शामिल होकर अपने निश्चय में क़ायम की है, उसका निर्णय अच्छी तौर पर संतों के सतसंग में करावे। तब उसको ख़बर पड़ेगी कि आया उसकी समझ दुरुस्त है या नहीं। और जब नादुरुस्त या ओछी मालूम पड़े, तब फ़ौरन् उसको छोड़ देवे और इस बात की पक्ष न करे कि अपनी समझी हुई बात को एकाएक क्यों और कैसे छोड़ देवे, बल्कि संत मत का उसके साथ कोशिश करके मिलान न करना चाहिये। यह निहायत[5] नादानी की बात है और

१—शक्ति। २—बदक़िस्मत। ३—टेक पक्ष। ४—विचार। ५—अत्यन्त।

इसमें बड़ा नुक़सान खोजी का होता है, क्योंकि जब संत देखेंगे कि यह शख़्स बेफ़ायदा हुज्जत[1] करता है और मतलब उसका अपनी समझ के क़ायम रखने का है, न कि सच्ची बात को तहक़ीक़ और दरियाफ़्त करके पकड़ने और ग्रहण करने का, तब वे तवज्जह नहीं करेंगे। और यह शख़्स असल और सच बात के समझने और पकड़ने से महरूम[2] रह जावेगा और अपने जीव के कल्याण करने में आप अपनी ओछी समझ और पकड़ में मूर्खों के मुआफ़िक़ हठ करने से विघ्नकारक होगा, क्योंकि जितने मत दुनियाँ में जारी हैं, वे सब संत मत के मुक़ाबले में ओछे हैं और विद्यावान् और बुद्धिमानों के मत तो बिल्कुल अक़्ली हैं और असल और सच्ची बात से बेख़बर[3]। फिर जिस किसी मत की यह शख़्स पकड़ धारण करेगा, वह ज़रूर ओछा होवेगा और उस पकड़ में हठ करने से इसके पूरे और सच्चे उद्धार में ख़लल आवेगा, यानी सच्चे मालिक के धाम में नहीं पहुँचेगा, रास्ते में कहीं न कहीं माया के घेर में ठहर जावेगा और चाहे देर के साथ फिर पैदा होवे पर जन्म मरण और उसके साथ दुख सुख के भोग की उपाधि[4] दूर नहीं होवेगी।

१०—पाँचवाँ विघ्न विषई यानी ऐयाश और संसारी लोगों के संग से पैदा होता है। वे लोग इन्द्रियों के भोग नहीं छोड़ना चाहते और इस सबब से कोई बात जो उनके इन्द्रियों के विषयों के रस लेने में ख़लल डाले, उसको मानना नहीं चाहते और अपनी काम, क्रोध और लोभ,

१—झगड़ा, तकरार। २—वंचित। ३—अनजान। ४—बखेड़ा।

मोह की सनी हुई बुद्धि से संतों और महात्माओं के बचनों को झूठ मूठ का ख़ौफ़ दिलाने वाले समझ कर उनका निरादर करके यक़ीन नहीं लाते हैं और कहते हैं कि आक़बत[1] की ख़बर ख़ुदा जाने, अब तो आराम से गुज़रती है, यानी आख़िरत के हाल को सिवाय मालिक के और कोई नहीं जानता, अब जो ऐश और आराम मिल रहा है, इसको क्यों छोड़ें ? ऐसे जीव इसी जन्म में दुख सुख के धक्के खाते हैं और रोग सोग भोगते हैं और फिर भी नहीं चेतते। आख़िरत में उनको बहुत भारी तकलीफ़ और कष्ट भोगने पड़ेंगे और तब अपनी ग़फ़लत और बेपरवाही पर हाथ मल कर अफ़सोस करेंगे, लेकिन उनका उस वक़्त का पछतावा कुछ फ़ायदा नहीं देगा।

११—ज़ाहिर है कि जितने दुनियाँ के भोग हैं वे सब नाशमान हैं और जो ज़्यादा उनका भोग किया जावे तो फ़ौरन् दुख पैदा करते हैं। और जो मन में चाह उन्हीं की ज़बर रही और उन्हीं की प्राप्ति के लिये उम्र भर जतन करते रहे, तो इसी ज़िन्दगी में जब बुढ़ापा आता है, वे लोग बसबब बेऐतदाली[2] के किसी न किसी रोग में मुब्तिला[3] होकर बहुत दुख भोगते हैं। और जब स्वभाव के मुआफ़िक़ उन भोगों की चाह उठाते हैं तब या तो वे भोग निर्धनता के सबब से मुयस्सर[4] नहीं आते, या बीमारी के सबब से उनको भोग नहीं सकते और तड़प तड़प कर जान

१—मरने के बाद की अवस्था, परलोक। २—लापरवाही। ३—ग्रसित। ४—प्राप्त।

देते हैं। फिर थोड़े दिन का ऐश और आराम भोग करके किस क़दर दुख और निरादर और मन और इन्द्रियों को ज़बरदस्ती रोकने की तकलीफ़ उठाते हैं। इस वास्ते अक़्लमंद आदमी को पहिले ही से समझ कर और दुनियाँ का हाल और विषई लोगों की हालत देख कर नसीहत[1] लेना और आप होशियारी से बरतना चाहिये।

१२—छटा विघ्न बहुत भारी नुक़सान करता है, यानी जीव निन्दकों के बचन सुन कर बे विचारे या तहक़ीक़[2] किये हुये या बग़ैर अपनी आँख से हाल और चाल देखने के सतसंग से हट जाते हैं और अपने कच्चे शौक़ को दबा लेते हैं। इस वास्ते खोजी और दर्दी को मुनासिब है कि जो बात सुने, उसको पहिले महात्माओं या परमार्थी लोगों के बचन और चाल से मिलावे, या जो उसको यह ताक़त नहीं है, तो आप सतसंग में जाकर वहाँ की चाल ढाल अपनी आँख से देखे और जिस बात में शक होवे उसको बेतकल्लुफ़ खोल कर बयान करके उसकी असलियत को दरियाफ़्त करे। और जो चाल उसको नापसंद होवे उसके जारी करने का सबब और उसका फ़ायदा निर्णय करके समझे। तब उसको ख़बर पड़ेगी कि निंदक[3] लोग भारी नादान हैं, कभी आप जाकर उन्होंने कोई चाल नहीं देखी और न कोई बात सुनी, सिर्फ़ ग़रज़मंदों[4] के कलाम[5] को मूर्खों के तौर पर मान लिया और सतसंग को बुरा भला कहने लगे। और ग़रज़मंद वे लोग हैं कि जो संतमत यानी

१—शिक्षा। २—जाँच। ३—बुराई करने वाले। ४—स्वमतलबियों। ५—बचन।

अंतर के अभ्यास के जारी होने में, चाहे वह वेद और शास्त्र और पुरान और क़ुरान के मुआफ़िक़ है, अपना नुक़सान समझते हैं, क्योंकि वे परमार्थ के रास्ते से बिलकुल बेख़बर हैं, सिर्फ़ रोज़गार के ख़ातिर दो चार क़िस्से कहानी की किताबें और इसी क़िस्म की बातें बाहरमुख पूजा और इष्ट की दुनियादारों के बहलाने और फुसलाने और अपना मतलब निकालने के लिये याद करते हैं और घरों में जाकर औरतों को ख़ौफ़ दिलाते हैं कि जो तुम्हारे मर्द उस सतसंग में जावेंगे तो तुमको और दुनियाँ को छोड़ देंगे और मर्दों को समझाते हैं कि जो औरतें सतसंग में जावेंगी तो ख़राब होवेंगी और इसमें बड़ी बदनामी होवेगी। और जब किसी को सुनते हैं कि वह ख़िलाफ़ उनकी समझौती के सतसंग में जाने लगा तो वे उसकी बिरादरी के लोगों से मिल कर उसकी हँसी उड़ाते हैं और तान और ठठोली[1] की बातें कह कर दस बीस आदमियों के जलसे में उसको शर्म दिलाते हैं ताकि वह ख़ौफ़ और शर्म खा कर जल्द सतसंग में जाना छोड़ देवे। जो कोई ऐसे ख़ुदमतलबी लोगों या मूर्ख संसारियों के बचन निंदा के सुन कर सतसंग में शामिल नहीं होवेगा, या थोड़े दिन शामिल होकर उनके डर से हट जावेगा, वह अपने जीव के सच्चे कल्याण में आप विघ्नकारक और हारिज[2] होवेगा।

१३—सातवें विघ्न का सबब यह है कि इस जीव के दिल में दुनियाँ और उसके सामान और संसारी लोगों का

१—हँसी। २—नुक़सान करने वाला।

भाव और क़दर ज़्यादा है और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में अच्छी तरह सतसंग करके जैसी चाहिये वैसी प्रीति और प्रतीति नहीं आई। मूर्ख और ख़ुदमतलबी लोगों के डराने से यह जीव जल्द अपने एतक़ाद[1] से फिसल जाता है और समझता है कि जो पुराने इष्टों को छोड़ दिया जावेगा तो वह कुछ न कुछ इसका संसारी नुक़सान कर देगें और ज़रा नहीं सोचता कि जो कुछ आराम या तकलीफ़ होती है, वह अपने पिछले कर्मों का फल है और जब कि कोई राधास्वामी दयाल की सरन में आया तो वह तकलीफ़ भी उनकी दया से बहुत कम हो जाती है।

किसी देवता या औतार की ताक़त नहीं है कि बेवास्ता[2] किसी जीव को तकलीफ़ दे सके। जो कुछ कि होता है वह जीव के पिछले कर्मों का भोग है और वह कर्म राधास्वामी मत का अभ्यास करने से दिन दिन हलके होते और घटते जाते हैं।

आदमी को चाहिये कि नज़र ग़ौर से देखे कि दुनियाँ में जीवों को कैसी कैसी तकलीफ़ें हो रही हैं और हर एक अपने ख़ानदानी मत और इष्ट को मान रहा है। फिर जो उन इष्टों में ताक़त तकलीफ़ देने की है तो तकलीफ़ दूर करने की भी होगी, फिर वे क्यों नहीं उन जीवों की सहायता[3] करते ?

इस वास्ते मूर्खों और ग़रज़मंद लोगों के धमकाने से कि फ़लानी तकलीफ़ राधास्वामी मत में शामिल होने से

१—विश्वास। २—बग़ैर कारण के। ३—मदद।

हुई कभी किसी को अपनी प्रतीति और प्रीति में डर कर ख़लल नहीं डालना चाहिये। यह कहन ऐसे लोगों की बिलकुल ग़लत और बनावट की है और जो अविचारी[1] हैं और सतसंग चेत कर नहीं करते, वे ऐसी धमकियों में आकर सतसंग से हट जाते हैं और अपना नुक़सान आप करते हैं। और अक़्लमंद और समझवार लोग, जो सतसंग समझ समझ कर करते हैं, सैकड़ों नमूने इस दुनियाँ में दे सकते हैं कि बग़ैर छोड़ने अपने इष्ट और मत के बहुत से आदमी दुख भोगते हैं, बल्कि तान मारने वाले और धमकाने वाले आप ही ऐसी तकलीफ़ों में मुब्तिला[2] होते हैं। फिर जो सबब उनके दुखों और तकलीफ़ का है वही उन जीवों की तकलाफ़ का, जो राधास्वामी मत में शामिल हुए हैं, समझ लेना चाहिये, बल्कि इन जीवों की किसी क़दर सहायता राधास्वामी दयाल अपनी दया से तकलीफ़ की हालत में भी फ़रमाते हैं। और वे जीव जो और मतों में हैं और ज़ाहिरा अपने इष्ट को मानते नज़राई[3] देते हैं और अंतर में पूरा यक़ीन नहीं रखते, उनकी सहायता कुछ भी नहीं होती और अपने इष्ट को छोड़ कर इधर उधर सहायता के वास्ते भटकते हैं और भरमते फिरते हैं।

१४—आठवाँ विघ्न अकसर उन लोगों को सताता है कि जो अभ्यास में रस कम पाते हैं या अपने मन की चाह के मुआफ़िक़ नहीं पाते हैं या जिनको शब्द साफ़ नहीं मालूम हुआ है।

१—मूर्ख। २—फँसे। ३—दिखलाई।

यह लोग जल्दी करते हैं और यह नहीं ख़्याल करते कि हर एक जीव का अधिकार मुआफ़िक़ उसके शौक़ और मन की निर्मलता और चित्त की निश्चलता के जुदा जुदा है। और जिस क़दर निर्मलता और निश्चलता की कसर है, उसी क़दर रस के मिलने में भी देर है। सो इसका यही इलाज[1] है कि नेम से अभ्यास करे जाय और मन और इन्द्री और चित्त को अभ्यास के वक़्त, जिस क़दर मुमकिन होवे, रोक कर स्वरूप या शब्द में लगावे और जब तब प्रार्थना भी करता रहे तो आहिस्ता आहिस्ता सफ़ाई होती जावेगी और रस मिलता जावेगा।

बाज़े सतसंगी अपनी चाह के मुआफ़िक़ कुछ क़ुदरत का खेल और तमाशा अंतर में देखना चाहते हैं और जो वह नज़र न आवे तो ख़्याल करते हैं कि हमको कुछ हासिल नहीं हुआ। और हाल[2] यह है कि जो कुछ सैर नज़र आवेगी, वह मायक[3] होगी और क़ायम नहीं रहेगी। सतसंगी को चाहिये कि अपनी तरक़्क़ी के वास्ते अपने मन और सुरत को एकाग्र करके स्वरूप के या शब्द के आसरे पहिले या दूसरे स्थान पर जमावे। वहाँ जिस क़दर ठहराव होगा, उसी क़दर रस ज़रूर आवेगा। इसी को अभ्यास का फल समझे और दिन दिन इसी में तरक़्क़ी करता जावे।

जो किसी पिछले या हाल के कर्मों के चक्कर से मन और सुरत एकाग्र और स्थिर न होवें तो घबरावे नहीं

१—उपाय। २—असलियत। ३—झूठी, मायासंबंधी।

और निरास न होवे और न यह समझे कि राधास्वामी दयाल उस पर दया नहीं करते हैं, बल्कि ऐसे वक्त में ज़्यादातर कोशिश और होशियारी से अभ्यास करे और जो भजन में मन न लगे तो ध्यान ही करे और जो उसमें भी मन न लगे तो धुन के साथ नाम का सुमिरन और पोथी का पाठ करे। आहिस्ता आहिस्ता चक्कर बदलेगा और अभ्यास में बदस्तूर रस आने लगेगा। ऐसे वक्त में प्रीति और प्रतीति की बानी और बचन को पढ़ कर ज़्यादा सम्हाल करे कि डिगमिग[1] न होवे, नहीं तो धुन के साथ सुमिरन और पोथी का पाठ भी अच्छी तरह नहीं बन सकेगा।

और मालूम होवे कि पोथी का पाठ अर्थ समझ कर, और जो उसमें स्थानों का ज़िक्र है उन पर मन और सुरत को फेर कर यानी स्वरूप के आसरे जमा कर, करे तो वह भी थोड़ा बहुत भजन और ध्यान की बराबर रस दे सकता है। इस वास्ते मुनासिब है कि पहिले दो शब्द चितावनी के पढ़ कर, फिर प्रेम और भेद के शब्दों का पाठ करे, तो मन किसी क़दर सिमट[1] कर लगेगा और तब रस भी आवेगा।

१५—नवें विघ्न के दूर करने या उसके असर को कम करने का जतन यह है कि सतसंगी अपने मन में विचार करे कि जो तकलीफ़ उसको या उसके कुटुम्बियों को होती है, वह पिछले कर्मों का भोग है और उसमें भी किसी

१—एकाग्र हो।

क़दर सहायता राधास्वामी दयाल की संग है। यह बात नहीं है कि वे उस तकलीफ़ को नहीं देखते हैं और दया नहीं करते हैं। सतसंगी को चाहिये कि धीरज के साथ बरदाश्त करे और जो बीमारी है तो दवा भी करे और जो मन न माने तो चरणों में प्रार्थना करे कि या तो थोड़ी बहुत ताक़त बरदाश्त की दी जावे या वह तकलीफ़ कम या दूर कर दी जावे, पर ऐसी आस धर कर प्रार्थना न करे कि फ़ौरन् उसका असर पैदा होवे। किसी क़दर मौज का भी आसरा रक्खे और जिस मसलहत[1] से कि तकलीफ़ भेजी गई है उसका भी विचार करे। और जो मसलहत समझ में न आवे तो बहुत घबराहट या निरासता[2] मन में न लावे, आहिस्ता आहिस्ता दया का ज़हूर[3] होवेगा और जैसी मौज होगी उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई होवेगी, यानी जो कभी मौज इसके मन की चाह के बरख़िलाफ़ है तो वैसा नतीजा ज़ाहिर होगा और जो मुआफ़िक़ है तो जल्दी या आहिस्ता आहिस्ता दुख दूर होता जावेगा। सतसंगी को दोनों सूरत में धीरज और बरदाश्त के साथ राधास्वामी दयाल की मौज के साथ मुआफ़िक़त करनी चाहिये और जहाँ तक मुमकिन होवे रूखा फीका होकर अपनी प्रीति और प्रतीति में ख़लल या कसर पैदा न होने देना चाहिये, नहीं तो दुख और तकलीफ़ दुचंद[4] व्यापेगी। और जो धीरज के साथ वह सतसंगी अपने चित्त को जब तब चरणों में जोड़ता रहेगा, तो किसी क़दर दया का

१—मौज। २—नाउम्मेदी। ३—प्रकाश। ४—दुगुनी।

असर यानी शांति अंतर में मालूम होगी और तब उस तकलीफ़ या दुख का असर कम व्यापेगा।

१६—जो सतसंगी कि होशियारी के साथ सतसंग और अभ्यास करता है और जिसने ऊपर के लिखे हुए विघ्नों को अच्छी तरह निर्णय करके समझ लिया है और उनके दूर करने का जतन भी करता रहता है, तो उसको वे विघ्न कम सतावेंगे और जो कभी पेश भी आवेंगे तो बहुत कम ठहरेंगे और उसकी प्रीति और प्रतीति में बहुत कम ख़लल डालेंगे। और फिर वह सतसंगी आहिस्ता आहिस्ता अपनी प्रतीति और प्रीति को पूरे दर्जे पर पहुँचा कर राधास्वामी दयाल की पूरी दया और मेहर पाकर गुरुमुखताई का दर्जा हासिल करेगा, यानी सब तरह इसी ज़िंदगी में अपना काम राधास्वामी दयाल की दया से पूरा बनवा लेगा।

बचन—१४

वर्णन प्रीति और प्रतीति का गुरु चरनन में

भाग पहिला

१—बचन नंबर १३ में हाल प्रीति और प्रतीति का कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में लिखा गया है और जो विघ्न कि मज़बूत करने प्रीति और प्रतीति में वहाँ हारिज[1] होते हैं, वही थोड़े बहुत गुरु सतगुरु की प्रीति और प्रतीति मज़बूत करने में पेश आते हैं। इस वास्ते जो

१—रुकावट डालने वाले।

जतन कि उनके दूर करने या घटाने के लिये वहाँ बताये गये हैं, वही थोड़े बहुत यहाँ भी काम देवेंगे।

२—जैसे वहाँ अनेक मत और अनेक इष्ट यानी मालिक क़रार दिये[१] गये हैं, ऐसे ही अनेक तरह के गुरू भी पैदा हुए हैं, यानी हर एक ने अपना इष्ट और अभ्यास जुदा जुदा मुक़र्रर किया और जुदी जुदी शिक्षा जारी करी। और जो थोड़े से अपनी अपनी हद में सच्चे भी हुए, उनकी नक़ल करने वाले झूठे गुरू बहुत से बन बैठे और जीवों को तरह तरह के धोखे देकर उनसे सेवा कराने लगे और उनका धन हरने[२] लगे और कहीं कहीं ज़बरदस्ती और ज़ोर के साथ अपनी पूजा कराने लगे।

३—इस सबब से बारम्बार और जगह जगह धोखे खाकर जीवों के दिल में अनेक तरह के शक और संदेह पैदा हो गये, यहाँ तक कि चाहे कोई सच्चा होवे या झूठा और पूरा होवे या अधूरा, एकाएक उसकी प्रतीति कोई नहीं कर सकता और दिल में ख़ौफ़ रहा आता है कि शायद पाखंडी[३] और दग़ाबाज़[४] न होवे।

४—सिवाय इसके अनेक मत और इष्टों के जारी होने से जो कोई सच्चे मत और पूरे और सच्चे इष्ट का भेद बतावे, उसकी लोग प्रतीति नहीं लाते, बल्कि शुरू में ऐसा ख़याल करते हैं कि अपनी नई दुकान चलाने के वास्ते नई बातें अपने मन से पैदा करके जारी करना चाहते हैं और ज़ाहिरी रस्म और बरताव को देखकर और उसकी

१—बताये। २—लूटने। ३—धूर्त। ४—धोखेबाज़।

असलियत को ज्यों का त्यों न समझ कर निंदा करने लगते हैं।

५—सबब इन बखेड़ों का, जो कि सच्चे और पूरे गुरु की प्रतीति और प्रीति हृदय में बसाने में पैदा हुए, यह है कि लोग अपने ख़ानदानी मत से नावाक़िफ़[1] हैं, यानी वेद और शास्त्र और क़ुरान वग़ैरह के असली मतलब से बेख़बर हैं और जो राह और रस्म और क़ायदा और व्यवहार सच्चे परमार्थ का है, उससे भी नावाक़िफ़ हैं। सिर्फ़ रस्मी और बाहरमुख परमार्थ निहायत नीचे दर्जे का, जो कि हर एक मत में रोज़गारी या विद्यावान् लोगों ने जारी किया है उसी से विधि[2] मिलाया चाहते हैं और अपनी अनजानता से शक और शुबहा पैदा करके बेफ़ायदा निंदा स्तुति करने लगते हैं।

६—सिवाय इसके, संसारी लोगों को जब तक कि उन्होंने कहीं सतसंग नहीं किया है और न अपने मन और बुद्धि से परमार्थ की तरफ़ कुछ ख़याल और तवज्जह और विचार किया है, पूरे और सच्चे गुरु की परख आनी बहुत मुश्किल है। वे दूसरों की कहन यानी राय पर चलना चाहते हैं और वे दूसरे भी थोड़े बहुत उसी क़िस्म के लोग हैं, चाहे वह परमार्थी लिबास पहिनते हैं या परमार्थी काम करते नज़र आते हैं, जैसे भेषधारी और पंडित और मौलवी वग़ैरह।

यह लोग आप या तो संसारी हैं या संसारियों का

१—अनजान। २—मेल।

संग देने वाले हैं। इनको पूरे गुरु से आप भेंटा यानी मुलाक़ात नहीं हुई और न उनसे मिल कर कुछ भेद मालिक का सुना और समझा। फिर वे किसी को क्या समझा सकते हैं या पूरे गुरु के बचन सुन कर उनकी गति[1] को क्या परख सकते हैं? और जोकि वे आप रस्मी या बाहरमुख परमार्थ के काम कर रहे हैं या विद्या पढ़ कर बातें बनाते हैं और असल हाल अंतरी से नावाक़िफ़ हैं, इस वास्ते उनकी समझ और कहन सच्चे मत और सच्चे गुरु की निस्बत[2] ऐसी ही होगी, जैसी कि संसारियों और विद्या और बुद्धिवानों की होती है। और जगत के जीव इन्हीं की समझ और कहन के मुआफ़िक़ कार्रवाई करते हैं, यानी ऐसे लोगों की बातें सुन कर और सच्चे गुरु की परख और पहिचान न करके उनकी और उनके मत की निंदा करने लगते हैं और उसमें शामिल होने से डरते हैं।

७—जो कोई सच्चा परमार्थी है और उसके मन में दर्द और खोज सच्चे मालिक से मिलने और उसके रास्ते और भेद को जानने का है, वह जल्द सच्चे गुरु के सन्मुख आकर और बचन सुन कर थोड़ी सी पहिचान कर सकता है। पर शर्त यह है कि किसी दूसरे के मत की चाल ढाल में या अपनी विद्या और बुद्धि की समझौती में अटक कर उसकी पक्ष धारण न करे और निर्मल बुद्धि और समझ से सच्चे खोजियों के मुआफ़िक़ बचन सुन कर अपने में आप उनको परखता जावे और कुल रचना की हालत से, जो

१—पहुँच। २—बारे में।

कि इन आँखों से प्रगट दिखाई देती है, मिला कर उन बचनों की प्रतीति करे।

८—ग़ौर करने की बात है कि जो कोई दुनियाँ के हाल को कि नाशमान और सब पदार्थ उसके नाशमान और तुच्छ[१] रस और सुख देने वाले हैं और अपनी देह और इन्द्रियों को जड़ समझ कर इस तरफ़ से चित्त को हटा कर ख़याल करे कि जैसे कुल रचना में उत्तम से निकृष्ट[२] तक बहुत से दर्जे हैं, इसी तरह इस लोक और उसकी रचना से बढ़ कर भी ज़रूर और रचना ऊँचे दर्जे में होना चाहिये और जो कि इस रचना से बेहतर और बड़े दर्जे की रचना होगी, वह विशेष सुखदाई और ज़्यादा देर तक ठहरने वाली भी ज़रूर होगी। इसी तरह ऊँचे से ऊँचे दर्जे की रचना सबसे बढ़ कर और हमेशा क़ायम रहने वाली और महा सुख की देने वाली होगी, क्योंकि जिस क़दर सुख और आनन्द हैं, वह सब रूह यानी सुरत की धार के वसीले[३] से मिलते हैं और इसी तरह जिस क़दर कि ज्ञान और इल्म और समझ बूझ और ताक़त और और क़ुव्वतें[४] हैं, वह भी सब सुरत की धार के सबब से ज़ाहिर होती हैं। और देह का मसाला जो है, वह जड़ है और सुरत की धार के सबब से चैतन्य नज़र आता है। और ऊँचे दर्जों में यह मसाला निहायत लतीफ़ दर लतीफ़[५] होता गया है। और जिस क़दर लतीफ़ यानी सूक्ष्म मसाला है, उसी क़दर उससे जो रूप यानी सूरत या देह

१—घटिया। २—ख़राब। ३—ज़रिये। ४—शक्तियाँ। ५—सूक्ष्म से सूक्ष्म।

बनी हैं, वह भी लतीफ़ और ज़्यादा देर ठहरने वाली हैं। फिर जिस दर्जे में कि यह मसाला बहुत से बहुत सूक्ष्म और लतीफ़ है या बिलकुल मौजूद नहीं है, सिर्फ़ सुरत यानी चैतन्य ही का मंडल यानी भंडार वहाँ है, तो वह भंडार ज़रूर महा रस और महा आनन्द और महा ज्ञान का महा मंडल[1] और ख़ज़ाना होगा और वहाँ की रचना भी ज़रूर अविनाशी[2] होगी, क्योंकि चैतन्य का नाश नहीं है। और मसाले का भी असल में नाश नहीं है, सिर्फ़ सूरत बदल जाती है। फिर वह मसाला अपनी हद में क़ायम रहेगा और चैतन्य अपनी निर्मल हद में हमेशा क़ायम रहेगा, यानी जहाँ कि मसाला बिलकुल नहीं है, सिर्फ़ चैतन्य ही चैतन्य है। और जहाँ कि मसाले की हद है, वहाँ भी चैतन्य मौजूद रहेगा मगर उसके साथ मिला हुआ, क्योंकि बिदून[3] चैतन्य के किसी जगह रचना नहीं हो सकती और न ठहर सकती है और चैतन्य से कोई जगह ख़ाली नहीं है। जब यह बात समझ में आ गई तो सिर्फ़ इस हाल का दरियाफ़्त करना भेदी गुरु से अब बाक़ी रह गया कि किस तरह उस ऊँचे देश में अपनी सुरत पहुँच सकती है यानी कौन तरकीब के साथ और किस रास्ते से गुज़र कर सकती है।

९—अब समझना चाहिये कि राधास्वामी अथवा संत मत में सिर्फ़ यही हाल बयान किया है यानी संत मत चैतन्य के निज भंडार का जो कि कुल का मालिक है

१—स्थान। २—कभी नाश न होने वाली। ३—बग़ैर।

पता देता है और उस रास्ते का कि जहाँ होकर सुरत (जो कि उस कुल मालिक सूरज रूप की किरण है या सिंध रूप की बूँद है) नीचे की तरफ़ इस पिंड में उतरी है और जिस तरकीब से कि यह अब फिर उसी रास्ते से उलट कर चढ़ जावे, भेद बताता है और सच्चे खोजी और ग़ौर और विचार करने वाले को यही बात दरियाफ़्त करनी बाक़ी रहती है। फिर जब ऐसा खोजी सच्चे गुरू के सन्मुख आकर यह हाल उनके मुख से सुनेगा, तो फ़ौरन् उसको इस क़दर समझ और पहिचान हो जावेगी कि मेरा कारज इन्हीं के हाथ से बन सकता है।

१०—अब फिर ग़ौर करना चाहिये कि जो कोई ऐसा खोजी है वह अपने हाल को देख कर यह भी परख करेगा कि देह रूप मेरा नहीं है, क्योंकि जब नींद आ जाती है तब देह और दुनियाँ की ख़बर नहीं रहती और मन और इन्द्रियाँ बाहरमुख कार्रवाई नहीं कर सकती हैं और देह और दुनियाँ के दुख सुख की भी खबर नहीं पड़ती है और न किसी में मन का बंधन उस वक़्त रहता है। तो इससे साफ़ ज़ाहिर हुआ कि असली मुक्ति (जो कि देह के बंधनों और दुख सुख और जन्म मरण से छुटने का नाम है) इसी रास्ते यानी आँखों के अंदर होकर ऊँचे की तरफ़ चढ़ने और चलने से यानी पुतली को उलटाने और अंतर में ऊपर की तरफ़ चलाने से हासिल होगी। और साफ़ आँख से दिखलाई देता है कि जब आदमी को ग़श[1]

१— बेहोशी।

आता है या किसी क़िस्म की बीमारी में बेहोशी होती है या जब मौत का वक़्त क़रीब आता है, तो उस वक़्त आँख की पुतली का अंदर और ऊपर की तरफ़ किसी क़दर खिंचना शुरू होता है। तो मरने के वक़्त शरीर छोड़ कर जाने का रास्ता इसी तरफ़ से हुआ।

अब मालूम होवे कि राधास्वामी मत में यही अभ्यास जारी है कि आहिस्ता २ ध्यान और भजन यानी अंतर अभ्यास करके पुतली को उलटाना और घट में सुरत और दृष्टि को मुक़ामवार[१] चढ़ाना और सब स्थानों को तै करके ऊँचे से ऊँचे और सब के अख़ीर के स्थान में, जो कुल मालिक का धाम और निर्मल चैतन्य का भंडार है और जहाँ माया के मसाले का नाम और निशान भी नहीं है, पहुँचा कर विश्राम देना[२]। वही स्थान परम और अमर आनंद का है और वहीं पहुँच कर सुरत पहुँचने वाली अमर और अजर हो जाती है और परम सुख को प्राप्त होती है।

फिर ऐसे खोजी को जब यह बात मालूम हुई, तब वह निहायत मगन[३] होगा कि जो बात उसने अपने ग़ौर और विचार और समझ से निकाली, वही सच्ची और क़ुदरती बात साबित हुई यानी संतों ने, जो निज घर के भेदी हैं, वही रास्ता जो क़ुदरत ने वास्ते उतार और चढ़ाव सुरत के बनाया है, तजवीज़ किया और उसका भेद तफ़सील[४] के साथ बतलाते हैं।

अब ऐसे खोजी को किसी की गवाही और तसदीक़[५]

१—एक मुक़ाम से दूसरे मुक़ाम पर। २—विश्राम देना—ठहराना। ३—मग्न, प्रसन्न। ४—पूरे विवरण। ५—शहादत।

की बिलकुल ज़रूरत नहीं रही, क्योंकि जो हाल और कैफ़ियत है वह उस पर रोज़मर्रह जागृत[1] और नींद की हालत में गुज़र रही है और इस वास्ते सिवाय इसके दूसरा रास्ता घर जाने का निश्चय करके नहीं हो सकता है।

अब जो तरकीब कि संतों ने घर की तरफ़ चलने की बताई है, वह यह है कि जिस धार पर कि सुरत उतरी है उसी धार पर सवार होकर उलट जावे और वही धार जान की धार और नूर की धार और शब्द की धार है। और शब्द के बराबर कोई रास्ता दिखाने वाला और जहाँ से कि आवाज़ आती है, वहाँ पहुँचानेवाला नहीं है। इस वास्ते शब्द को पकड़ के घर की तरफ़ चलना चाहिए। और शब्द से मतलब निरी[2] आवाज़ से नहीं है, बल्कि चैतन्य की धार से है। और वही चैतन्य की आदि धार कुल रचना की कर्त्ता है और इसी सबब से सब मतों में शब्द की महिमा और शब्द का कर्त्ता कहा है और यह बात सब मतों से मुताबिक़ भी हो गई। पर उस शब्द का भेद किसी मत में नहीं पाया जाता है, सो उसको तफ़सील के साथ संत बताते हैं और राधास्वामी दयाल ने निहायत खोल कर उसका बयान किया है और सहज तरकीब चलने की जारी फ़रमाई है। अब सच्चे खोजी को ऐसे गुरु पर, जो यह सब भेद बतावें, ज़रूर पूरा एतक़ाद[3] इस क़दर आना चाहिये कि इनकी मदद से और जो जुक्ति कि वे बतावें उसके अभ्यास से ज़रूर उसका काम पूरा

१—जागने की हालत। २—सिर्फ़। ३—विश्वास।

बन जावेगा यानी सच्चे मालिक के दरबार में पहुँच कर सच्ची मुक्ति प्राप्त होगी और सच्चा और पूरा उद्धार उसका हो जावेगा यानी परम आनंद को प्राप्त होगा।

११—और जो उस खोजी को ऐसा यक़ीन नहीं आया तो जानो कि वह दर्दी खोजी नहीं है, सिर्फ़ बाचक[1] खोजी है कि बातें सुनने और समझने का शौक़ रखता है, पर मन और इन्द्रियों को रोक कर अभ्यास करने की ताक़त नहीं रखता। ऐसे खोजी को हिरसी[2] कहते हैं और हिरसी का उद्धार नहीं हो सकता, क्योंकि सच्चा मालिक सच्चे को पसंद करता है, हिरसी और कपटी को उसके दरबार में दख़ल नहीं मिल सकता है। सबब यह है कि हिरसी और कपटी का झुकाव हमेशा मन और इन्द्रियों और उनके भोगों की तरफ़ रहता है और इस वास्ते उन के मन और सुरत की धार बाहरमुख जारी होकर बिखरी रहती है और दुरुस्ती से अभ्यास करने के वास्ते उस धार का रुख़ ऊपर की तरफ़ अंतर में फिरना चाहिये। यह दोनों बात आपस में उलटी यानी बरख़िलाफ़ हैं। इस वास्ते हिरसी कपटी जो बाहरमुखी पदार्थों और भोगों में लिपट रहा है, अपने मन और सुरत को घट में अंतर और ऊपर की तरफ़ नहीं उलटा सकता है और इस सबब से वह कभी सच्चा परमार्थी और अभ्यासी भी नहीं हो सकता है और न मुक्ति और उद्धार के लायक़ समझा जा सकता है और न उसको सच्चे गुरु की पहिचान आवेगी

१—बातें बनाने वाला। २—देखा देखी इच्छा करने वाला।

और न उनके साथ वह प्रीति करेगा, बल्कि ऐसा ख़ौफ़ खाकर कि उनके संग से उसके दुनियाँ के मज़ों का भोग जाता न रहे, उनके सतसंग से हट जावेगा और कोई न कोई टेक या अपनी ओछी बुद्धि की बात बना कर संत मत के सत्य होने में शक पैदा करके संत सतगुरु की दया से महरूम[1] और अभागी रह जावेगा।

१२—अब मालूम होना चाहिये कि दुनियाँ में दुनियादार बहुत हैं और परमार्थ के खोजी बहुत कम और जो खोजी भी हैं, उनमें दर्दी प्रेमी बहुत कम से कम हैं। और संतमत के लायक़ सिर्फ़ वही जीव हैं जो सच्चे खोजी दर्दी हैं, और बाक़ी जितने हैं वे सब व्यवहारी और संसारी हैं और संसार के भोग और पदार्थों को छोड़ना नहीं चाहते, लेकिन इसका फल और नतीजा उनको सख़्त तकलीफ़ या मौत के वक़्त मालूम होवेगा, अभी तो ग़फ़लत और भूल में पड़े हुए सच्चे परमार्थ से बेपरवाही करते हैं।

१३—जो सच्चे खोजी दर्दी हैं, वे थोड़ी बहुत सच्चे गुरु की पहिचान करके जैसा कि ऊपर लिखा गया अभ्यास में लग जावेंगे। फिर जिस क़दर कि उनका अभ्यास घट में बढ़ता जावेगा, उसी क़दर उनको कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया और सतगुरु की गति की ख़बर पड़ती जावेगी यानी उनके ऊँचे से ऊँचे दर्जे का हाल मालूम होता जावेगा। तब उसी क़दर वह उनके चरणों में दीन और अधीन होता जावेगा और उमंग कर तन मन

१—वंचित।

और धन से सेवा करेगा और प्रीति और प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरणों में बढ़ती जावेगी और उस के साथ अंतर अभ्यास में भी तरक़्क़ी होती जावेगी।

१४—ख़ुलासा[1] यह है कि जब तक किसी के मन में सच्चा खोज और दर्द परमार्थ का नहीं होवेगा और संसार से, उसका हाल देख कर, किसी क़दर वैराग्य चित्त में नहीं आवेगा, तब तक वह संत सतगुरु के सतसंग के लायक़ नहीं हो सकता और न उसको सच्चे गुरु में भाव और प्यार आवेगा और न राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति आवेगी और न राधास्वामी मत की महिमा और बड़ाई उसकी समझ में आवेगी। और चाहे कोई दूसरे प्रेमी लोगों को देख कर सतसंग में शामिल भी हो जावे, पर उससे संगत में ठहरा नहीं जावेगा यानी मत में शामिल नाम के वास्ते रहेगा, पर अभ्यास (चाहे उपदेश भी ले लेवे) उससे दुरुस्ती से नहीं बनेगा और इस सबब से प्रतीति भी उसको नहीं आवेगी और न सच्ची प्रीति उसके हृदय में जागेगी।

भाग दूसरा

१५—संत मत में सतगुरु उनको कहते हैं जो कि धुर स्थान तक पहुँचे, और साधगुरु वह हैं जो परब्रह्म पद तक पहुँचे और इस वास्ते सतगुरु को सत्तपुरुष समान और साधु गुरु को परब्रह्म समान मानते हैं। पर इस तरह की समझ हर कोई धारण नहीं कर सकता है, जब

१—सारांश

तक कि वह कोई दिन सतसंग और अभ्यास सुरत शब्द मार्ग का न करे और अपने अंतर में परचा न पावे।

१३—इस वास्ते शुरू में जिस किसी की समझ में संत मत अच्छी तरह से आ जावे, उसको इस क़दर समझ धारना[1] कि गुरु बड़े और बुज़ुर्ग और सब तरह से सच्चे परमार्थ की कार्रवाई में मदद देने वाले हैं, काफ़ी होगा। पर कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रतीति और प्रीति अपनी समझ बूझ के लायक़ ज़रूर लाना चाहिये कि जिससे अभ्यास और सतसंग सच्ची लगन[2] के साथ बनते जावें।

१७—जब इस रीति से जो कोई सचौटी और शौक़ के साथ सतसंग और अभ्यास शुरू करेगा, तो उसको आहिस्ता आहिस्ता ज़रूर अपने अंतर में अभ्यास का रस थोड़ा बहुत आता जावेगा और गुरू का कोई दिन संग करके उनकी रहनी भी समझ में आवेगी और उनके बचनों की भी परख और पहिचान होती जावेगी और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया के परचे भी अंतर में मिलते जावेंगे।

१८—इसी हालत के साथ ऐसे परमार्थी की प्रतीति और प्रीति चरणों में राधास्वामी दयाल और गुरु के भी दिन दिन बढ़ती जावेगी और गुप्त भेद संत मत और उसके अभ्यास का आहिस्ता आहिस्ता खुलता जावेगा और अंतर में आनंद और शान्ति आती जावेगी।

१—रखना। २—प्रेम।

१६—संत मत में मुख्यता प्रेम की है। जो हृदय में सच्चा प्रेम और शौक़ होगा तो परमार्थी कार्रवाई यानी अभ्यास और सतसंग आसानी से बनता जावेगा। और जिस क़दर राधास्वामी दयाल और गुरु के चरणों में प्यार आता जावेगा, उसी क़दर अभ्यास में तरक़्क़ी होती जावेगी।

२०-जितने काम स्वार्थ या परमार्थ के हैं, वे सब बिना सच्ची चाह और शौक़ के नहीं बन सकते और न बिना प्यार और प्रीति के कोई किसी से मिल सकता है और न आपस में मुहब्बत के साथ संग कर सकते हैं। खुलासा यह कि प्रीति यानी कशिश यानी खिंचाव शक्ति कुल रचना की कार्रवाई की जान है। बग़ैर प्रीति या कशिश[1] परमाणु के किसी चीज़ का रूप नहीं बन सकता और न ठहर सकता है और न किसी क़िस्म की कार्रवाई रचना की जारी हो सकती है और न क़ायम रह सकती है।

२१—गहरी प्रीति राधास्वामी दयाल के चरणों में आना चाहिये, तब मेला होवे। लेकिन जोकि उनके स्वरूप का जैसा कुछ कि है दर्शन नहीं हुआ, इस सबब से गहरी प्रीति उनके चरणों में नहीं आ सकती। पर गुरु के चरणों में किसी क़दर मुहब्बत पैदा हो सकती है, यानी जिस क़दर कि अभ्यासी ने सतसंग और अभ्यास करके उनकी और उनके शब्द की महिमा समझी और अंतर में परखी है, उसी क़दर उसको उनमें और राधास्वामी दयाल और उनके शब्द में प्रीति और प्रतीति पकती और बढ़ती जावेगी और यही प्रीति अंतर अभ्यास में मदद देती

१—आकर्षण।

जावेगी और आहिस्ता आहिस्ता एक दिन अभ्यासी का भाव और प्यार और विश्वास राधास्वामी दयाल और गुरु स्वरूप के चरणों में पूरा पूरा जैसा कि चाहिये, आ जावेगा और तब काम भी पूरा हो जावेगा।

२२—गुरू में सत्तपुरुष सम भाव लाने में बड़े विघ्न मन में पैदा होते हैं। पहिले तो यह उनको मनुष्य स्वरूप देखता है। दूसरे उनकी देह हद-दार[1] दिखलाई देती है। फिर सत्तपुरुष समान उनको सर्वत्र और सर्वज्ञ कैसे माने? तीसरे जब यह चाहे और जिस तरह इसकी ख़्वाहिश होवे उसके मुआफ़िक़ कोई कार्रवाई क़ुदरती क़ायदे के मुआफ़िक़ या बरख़िलाफ़ उनसे नहीं करा सकता है। अपनी मौज और दया से वे चाहे जो कुछ करें और चाहे जैसे परचे इसको अंतर और बाहर इसकी माँग और चाह से ज़्यादा-तर दिखलावें, पर जो परीक्षा के तौर पर कोई उनकी गति और ताक़त को परखा चाहे, तो वे, चाहे पूरे गुरू होवें, कभी अपने आप को ऐसे जीवों पर ज़ाहिर नहीं करते हैं, क्योंकि करामात दिखा कर जीवों को परमार्थ में लगाना मंज़ूर नहीं है और न उसमें जीवों का फ़ायदा है, बल्कि करामात देखने वालों की प्रीति और प्रतीति का बिलकुल एतबार[2] नहीं हो सकता है। और ऐसे लोग संसारी होते हैं, और अपनी संसार की टेक कभी नहीं छोड़ेंगे। चौथे जो कोई पूरे गुरु की परख और पहिचान उन लक्षणों के मुआफ़िक़ करना चाहे जो पुरानी किताबों में लिखे हैं, तो वह धोखा

१—सीमित। २—भरोसा।

खावेगा, क्योंकि उसकी क्या ताक़त कि अपनी काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की सनी हुई बुद्धि से उनकी रहनी की परख करे। सिवाय इसके, वास्ते सम्हाल और गढ़त जीवों के वे जब जब मुनासिब समझते हैं, क्रोध और लोभ और अहंकार के स्वरूप में भी ज़रूरत के मुआफ़िक़ बरताव करेंगे, लेकिन उनका ऐसा बरताव सब देखने मात्र होगा, अंतर में नहीं बिधेगा[1]। पर संसारी जीवों की क्या ताक़त है कि वे ऊपरी और अंतरी बरताव में फ़र्क़ कर सकें? इस वास्ते ऐसे जीव हमेशा डिगमिग रहेंगे और कभी उनकी प्रतीति गुरु चरणों में नहीं पकेगी। पाँचवें ऐसे जीव गुरू के बचनों को अपनी विद्या और बुद्धि की समझ के साथ मिलावेंगे या विद्यावानों के क़ौलों[2] से उनकी जाँच करेंगे। सो यह बात भी नामुमकिन होगी, क्योंकि विद्या और बुद्धि वाले अटकल[3] से बातें बनाते हैं और इस लोक की ज़ाहिरी क़ुदरत की कार्रवाई के मुआफ़िक़ आसमानी[4] बातों की तौल और जाँच करते हैं, गुप्त क़ुदरत और उसके भेद को न तो हृदय की आँखों से देखा और न किसी ऐसे देखे हुए से सुना न समझा। फिर उनके बचनों से संतों के बचनों को मिलाना या मुक़ाबला करना किस क़दर नादानी[5] और कमफ़हमी[6] की बात है? और ऐसा मेल कभी नहीं होगा और इस वास्ते इस क़िस्म के जीवों के मन में कभी पूरे गुरु की प्रतीति नहीं आवेगी, बल्कि अपनी विद्या और बुद्धि के अहंकार में

१—धसेगा। २—बातों। ३—अन्दाज़। ४—ऊँचे लोकों की। ५—मूर्खता। ६—कम समझ।

ऐसा ख़्याल करेंगे कि इनका मत मूर्खों के वास्ते है। और जो विद्यावानों को उसमें शामिल होते देखेंगे तो उनको भी नादान[1] समझेंगे, या यह कि उनकी अक़्ल में ख़लल आ गया है या उन पर जादू और मंत्र का असर पैदा किया गया है। छठे यह कि जिन जीवों के मन में मान और अहंकार भरा हुआ है और सच्ची चाह परमार्थ की नहीं है, वह पूरे गुरु की निस्बत इस क़िस्म के ख़्याल करेंगे कि अपनी मान और बड़ाई और पुजाने और आमदनी पैदा करने के लिये नया मत जारी किया है और उनकी गति की परख ज़रा नहीं आवेगी। इतना भी ग़ौर नहीं करेंगे कि जो उनको मान और बड़ाई की चाह होती और अपने मत को कसरत से फैलाने का इरादा होता, तो वे कोई कोई चाल इस क़िस्म की क्यों जारी करते कि जिससे संसारी जीव उनके सतसंग से डर कर दूर भागें और उनके नज़दीक और सन्मुख भी न आवें ? जो ऐसा चाह होती तो वह पाखंडियों के मुआफ़िक़ ऐसी चाल चलते कि दुनियादार ख़ुश होकर उनके मत और पूजा में शामिल होते। पर वे सच्चे हैं और सच्चे मालिक के सच्चे मत का उपदेश करते हैं। चाहे दुनियादार राज़ी होवें या नाराज़, वे हमेशा सच्ची बात कहेंगे और सच्चे मत की सच्ची चाल चलावेंगे और वे जीवों से उनके हित[2] और कल्याण के वास्ते प्रीति करने में अपना ज़ाती[3] मतलब कोई नहीं रखते। सातवें संसारी जीव हमेशा अपनी

१—मूर्ख। २—भलाई। ३—निज का।

ख़ातिरदारी और मान और आदर चाहते हैं और अहंकार करके सतसंग और सेवा में वहाँ के क़ायदों के मुआफ़िक़ शामिल होना नहीं चाहते। और जो ऐसा करते हैं उन पर तान मारते हैं और पूरे गुरु की निस्बत इल्ज़ाम[१] लगाते हैं कि वे अपने सेवकों को ऐसी कार्रवाई से क्यों नहीं रोकते? लेकिन वे किस तरह असल परमार्थ के क़ायदे और कार्रवाई को बदल सकते हैं और सेवकों का अकाज[२] किस तरह रवा[३] रख सकते हैं? इस सबब से संसारी जीव जो सतसंग में शामिल भी हो गये हैं, अपने मन में पूरे गुरु और उनके प्रेमी सतसंगियों के निंदक बने रहते हैं और संसारियों में जाकर तरह तरह की निंदा अपनी नादानी और अहंकारी अंग के मुआफ़िक़ करते हैं। इन जीवों को भी प्रीति और प्रतीति गुरु चरण में नहीं आवेगी और इस वास्ते राधास्वामी दयाल और उनके शब्द में भी इनका भाव और प्यार डावाँडोल रहेगा।

२३—जो कोई सच्चा खोजी और दर्दी है, वह कभी ऐसे ख़्याल और बरताव, जिनका ज़िक्र ऊपर की दफ़ा में लिखा गया, निस्बत सतगुरु और उनके सतसंग के कभी नहीं करेगा और अपना मतलब सच्चे परमार्थ के हासिल करने का पेश नज़र[४] रख कर, जो जो कार्रवाई कि संतों ने अंतरी और बाहरी वास्ते गढ़त मन और इन्द्री और स्वभाव के जारी फ़रमाई हैं, उनको बहुत ख़ुशी के साथ मानेगा और उमंग के साथ उनके

१—दोष। २—हानि। ३—जारी। ४—पेश नज़र-सन्मुख।

मुआफ़िक़ काम करेगा और संसारियों का, जो असली परमार्थ से बेख़बर हैं, भय और शर्म अपने मन में नहीं लावेगा और अपने मन और इन्द्रियों को थोड़ा बहुत ज़ोर देकर रोकेगा और सच्चे तार पर परमार्थ की कारवाई में लगावेगा। और फिर वही सतगुरु और राधास्वामी दयाल की दया का भागी होकर अपने अंतर और बाहर उनकी मेहर और रक्षा के परचे हर रोज़ देख कर उनके चरणों में गहरी से गहरी प्रीति और प्रतीति करके अपना जन्म सुफल करेगा यानी जीते जी अपने उद्धार की कैफ़ियत देख कर शान्ति और आनन्द को प्राप्त होगा।

बचन—१५

राधास्वामी मत संदेश

जो लोग कि सच्चे खोजी सत्त पद के हैं और अपने जीव के पूरे और सच्चे उद्धार के वास्ते दर्द के साथ सच्ची ख़्वाहिश रखते हैं यानी सच्चे परमार्थी हैं और दुनियाँ की तरफ़ से उनके दिल में किसी क़दर उदासीनता है, उनके वास्ते सत्त मत का भेद इस बचन में कहा जाता है।

राधास्वामी मत क्या है

१—राधस्वामी मत को संत मत कहते हैं और यही मत सत्त मत है यानी सत्त पद को लखाता है और उसका भेद समझाता है।

राधास्वामी नाम की सिफ़त

२—राधास्वामी नाम कुल और सच्चे मालिक का

नाम है जो ईश्वर, परमेश्वर और ब्रह्म, परब्रह्म और आत्मा, परमात्मा और ख़ुदा और निर्वाण[1] पद सबका निज कर्त्ता है।

३—यह नाम किसी का धरा हुआ नहीं है। इसको कुल मालिक ने मेहर और दया से आप प्रगट किया यानी यह नाम ऊँचे देश में बग़ैर मदद ज़बान या बाजे के आप बोल रहा है। और उस धुन को बड़भागी अभ्यासी अपने घट में सुनते हैं।

४—जो कोई इस नाम को उसके नामी और धाम और वहाँ पहुँचने के रास्ते का भेद लेकर प्रेम के साथ गावेगा या उसका सुमिरन या ध्यान करेगा या चित्त लगा कर उसकी धुन को अंतर में सुनेगा, वही कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया और सतगुरु की कृपा से भवसागर के पार जावेगा और परम आनंद को प्राप्त हो कर काल के क्लेश और जन्म मरण के दुःखों से बच जावेगा।

अर्थ राधास्वामी नाम के

५—राधा नाम आदि सुरत यानी आदि धुन का है जो आदि शब्द से प्रगट हुई और स्वामी नाम कुल मालिक यानी आदि शब्द का है।

६—शब्द यानी आवाज़ प्रथम ज़हूर यानी प्रकाश कुल का है और यही सब रचना का कर्त्ता है।

१—मुक्ति।

७—या इस तरह समझो कि राधा यानी धुन उस चैतन्य धार का नाम है, जो अनामी पुरुष स्वामी से आदि में प्रगट हुई और उसी को आदि सुरत कहते हैं और स्वामी नाम उस पुरुष यानी कुल मालिक का है जो अकह और अपार और अनंत और अगाध और अनाम है और जिसके चरणों से धारा यानी धुन आदि में प्रगट हुई।

८—आदि[1] धारा यानी धुन अथवा आदि सुरत कुल रचना की कर्त्ता है और इस वास्ते वही कुल रचना की माता है और स्वामी यानी आदि शब्द कुल रचना का पिता है।

९—जब यह धुन या धारा उलट कर स्वामी या शब्द की तरफ़ मुतवज्जह होवे, तब इस धारा का नाम राधा और आशिक़ यानी प्रेमी और भक्त है और शब्द यानी स्वामी प्रीतम और माशूक़[2] है।

१०—जब तक कि यह धारा या धुन जारी है, तब तक वह और शब्द दो समझे जाते हैं और जब कि वह धारा उलट कर शब्द यानी स्वामी में समा जावे, तब एक हो गये यानी दो का फ़र्क़ जाता रहा।

खुलासा हाल रचना का

११—जो धारा कि आदि में प्रगट हुई, वह उतर कर किसी क़दर फ़ासले[3] पर ठहरी और वहाँ उसने मंडल[4] बाँध कर रचना करी। इस स्थान का नाम अगम लोक है और जो धारा कि वहाँ आकर ठहरी, उसका नाम अगम पुरुष

१—सृष्टि के शुरू में प्रगट होने वाली। २—इष्ट। ३—दूरी। ४—घेर।

है, यानी राधास्वामी दयाल का तख़्त का स्थान है।

१२—जब अगम लोक की रचना हो गई, तब वहाँ से भी धारा प्रगट होकर नीचे उतरी और किसी क़दर फ़ासले पर ठहर कर और वहाँ मंडल बाँध कर उसने रचना करी। इसका नाम अलख लोक है और उस धारा का नाम अलख पुरुष है।

१३—अलख पुरुष से भी धारा प्रगट होकर और पहिले दस्तूर[1] के मुआफ़िक़ नीचे उतर कर जहाँ ठहरी और उसने मंडल बाँध कर रचना करी, उसका नाम सत्तपुरुष और सत्तलोक है।

१४—यहाँ तक निर्मल चैतन्य यानी रूहानी रचना हुई। और राधास्वामी दयाल आप इन स्थानों में व्यापक और मौजूद हैं। यहाँ काल क्लेश और दुःख और दर्द और जन्म मरण नहीं है। यह सब स्थान दयाल देश या संत देश या निर्मल चैतन्य का देश कहलाते हैं। यहाँ का प्रकाश सेत[2] रंग है।

१५—बहुत अरसे तक इसी क़दर रचना होकर रह गई। और यहाँ की बासी सुरतें हंस कहलाती हैं। और अनंत दीप रूहानी इन लोकों के गिर्द में[3] पैदा किये गये, उनमें हंस रहते हैं और अमी का अहार और पुरुष के दर्शन का बिलास करते हैं।

१६—ऊपर जो धारा का ज़िक्र लिखा गया है, वह धारा निहायत सूक्ष्म है कि किसी तरह नज़र नहीं आ

१—ढंग। २—श्वेत, सफ़ेद। ३—आस पास।

सकती और न कुछ उसका आकार[1] मालूम हो सकता है। जैसे चुम्बक पत्थर को जब लोहे के छोटे २ टुकड़ों के सामने लाओ तो वह लोहे के टुकड़ों को अपनी धार के वसीले[2] से खींचता है, पर वह धारा उससे निकलती हुई बिलकुल मालूम नहीं होती है। यह दृष्टान्त भी सर्व अंग करके दुरुस्त नहीं है, लेकिन सिर्फ़ धारा की सूक्ष्मता समझाने के लिये दिया गया है।

१७—सत्तलोक के मंडल के नीचे जो चैतन्य था, वह श्याम रंग के गुबार से ढका हुआ था और जिस क़दर कि सत्तलोक से दूरी होती गई, वह गुबार भी बढ़ता गया, जैसे किसी चीज़ पर तह[3] पै तह चढ़ी हुई होती है।

१८—सत्तलोक के नीचे से श्याम धारा भूरे रंग की प्रगट हुई और यह धारा भी चैतन्य थी जैसे कि ऊपर के लोकों की धारा चैतन्य है। इस धारा ने सत्तपुरुष से बिनती करके आज्ञा माँगी कि सत्तलोक के मुआफ़िक़ रचना करे। तब उसको हुक्म हुआ कि नीचे के देश में जाकर रचना करे। इस धारा का नाम निरंजन यानी काल पुरुष है और नीचे उतर कर यानी ब्रह्मांड में इसी का नाम परब्रह्म और ब्रह्म हुआ।

१९—यह श्याम धारा नीचे उतरी, पर वह मंडल बाँध कर जैसे ऊपर की धाराओं ने रचना करी ऐसी रचना न कर सकी। तब उसने सत्तपुरुष से फिर बिनती करके मदद माँगी। तब सत्तलोक से दूसरी धारा ज़र्द[4]

१—स्वरूप। २—ज़रिये। ३—खोल। ४—पीले।

रंग की प्रगट करके नीचे उतारी गई। यह धारा सुरतों का भंडार लिए हुए आई और फिर इसने और पहिली श्याम धारा ने मिलकर नीचे के देश में रचना करी। इस धारा का नाम जोति[1] और आद्या[2] है और नीचे के देश यानी ब्रह्मांड में इसी का नाम माया हुआ।

२०—पहिले इन दोनों धारों ने ब्रह्मांड की रचना करी यानी ब्रह्म सृष्टि करी। इस देश में गुबार किसी क़दर साफ़ और सूक्ष्म था, इस सबब से यहाँ की रचना भी सूक्ष्म हुई।

२१—सत्तलोक के नीचे एक स्थान यानी लोक रचा गया कि जिसको दयाल देश का द्वारा समझना चाहिये और उसके नीचे एक भारी मैदान है, जिसको महासुन्न कहते हैं और वह दयाल देश और ब्रह्मांड यानी ब्रह्म और माया देश के बीच में हद के तौर पर है।

२२—फिर इसके नीचे तीन स्थान निरंजन और जोति ने रचे, जो ब्रह्मांड की हद में शामिल हैं। नीचे के स्थान को सहसदलकँवल कहते हैं और जहाँ निरंजन और जोति का स्वरूप प्रगट है और यही स्थान सब मतों का, जो दुनियाँ में जारी हैं, सिद्धान्त[3] पद है यानी इसके ऊपर का हाल किसी मत की किताबों में नहीं लिखा है। सिर्फ़ जोगेश्वर ज्ञानी ब्रह्मांड की चोटी तक यानी सहसदलकँवल के ऊपर दो मुक़ाम तक गये, पर वहाँ का भेद उन्होंने गुप्त रक्खा, कहीं २ इशारे में वर्णन किया। लेकिन ब्रह्मांड के

१—ज्योति। २—आदि शक्ति। ३—लक्ष्य।

परे[1] कोई नहीं गया सिवाय संत सतगुरु के जो कि सत्तलोक से आये और कुल रचना के भेद से आपही वाक़िफ़[2] थे।

२३—सहसदलकँवल से तीन धारें सत, रज, तम, जिनको गुण और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी कहते हैं, पैदा हुईं और इन धारों ने नीचे के देश की रचना करी जिसको पिंड कहते हैं और जिसमें छः चक्र शामिल हैं।

२४—इस रचना में देवता और मनुष्य और पशु और बाक़ी कुल रचना चारों खान[3] की शामिल है। यहाँ ग़ुबार भारी था यानी स्थूल माया थी। इस सबब से यहाँ की रचना भी स्थूल हुई।

२५—और चार खानों के नाम यह हैं। (१) जेरज जो झिल्ली में लिपटे हुए पैदा होवें। (२) अंडज जो अंडे से पैदा होवें। (३) स्वेदज जो पानी और पसीने से पैदा होवें। (४) उष्मज[4] जो ज़मीन से पैदा होवें जैसे दरख़्त वनस्पति वग़ैरह और भी जो खान से पैदा होवें।

२६—इस दर्जे में सूक्ष्म और स्थूल शरीर के साथ पाँच दूत (१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह और (५) अहंकार, और चार अंतःकरण (१) मन (२) चित (३) बुद्धि (४) अहंकार, और दस इंद्री यानी पाँच ज्ञान इन्द्री (१) आँख (२) कान (३) नाक (४) ज़बान रस लेनेवाली और (५) त्वचा यानी खाल, और पाँच कर्म इन्द्री (१) हाथ (२) पाँव (३) ज़बान बोलने वाली (४) पेशाब की और (५) पाख़ाने की

१—आगे। २—जानकार। ३—पृथ्वी पर पैदायश की चार क़िस्में। ४—उद्भिज।

इन्द्री, बतौर औज़ारों के वास्ते कार्रवाई उन शरीरों के, सूक्ष्म और स्थूल रचना के लोकों में शामिल हुए।

२७—और इन लोकों में यानी सूक्ष्म और स्थूल लोक में माया ने अनेक तरह के भोग इन सब इन्द्रियों के पैदा किये और उन भोगों से मन और इन्द्री अपना भोग बिलास कर रहे हैं।

२८—सुरत की धार, जो ऊँचे देश से आई, वह पहिले मन को चैतन्य करती है और मन के स्थान से जो धार सुरत और मन की मिलौनी से उठती है, वह इन्द्रियों को चैतन्य करती है और इन इन्द्रियों के द्वारे[1] वही धार भोगों और पदार्थों में शामिल हो कर उनका रस उन्हीं इन्द्रियों के वसीले से मन को देती है। यह कार्रवाई स्थूल देह में बैठकर सुरत और मन, इन्द्रियों के वसीले से, इस देश में कर रहे हैं।

वर्णन जौहर सुरत और मन और उनके स्थान का पिंड में

२९—अब समझना चाहिये कि सुरत की धार दयाल देश से आई और वह सत्तपुरुष राधास्वामी की अंश है। अंश के अर्थ टुकड़े के नहीं हैं। अंश कहने से सिर्फ़ यह मतलब है कि सुरत वही जौहर[2] है जो कुल मालिक का जौहर है। और वह कुल मालिक सब जगह मौजूद है, पर एक देश में प्रगट और बेपरदे[3] और बाक़ी देश में गुप्त यानी परदों या तह से ढका हुआ। और यह परदे या

१—धारिये। २—असल पदार्थ। ३—बिना खोलों के, बेग़िलाफ़।

तह, जिस क़दर कि प्रगट[1] देश से दूरी होती गई, बढ़ते गये। जैसे कि प्याज़ के ऊपर या केले के दरख़्त पर तह पै तह चढ़ी होती है और हर एक अंदरी तह या परदा बाहर की तह या परदे से मुलायम और साफ़ और सूक्ष्म होता है, इसी तरह यह तह या परदे गुबार यानी माया के उस चैतन्य पर चढ़े हुए हैं और पहिला परदा या तह निहायत[2] लतीफ़[3] और सूक्ष्म और दूसरा उससे कम लतीफ़ और तीसरा उससे कम लतीफ़ है। ऐसे ही स्थूल माया के देश में स्थूल यानी मोटी तह या परदे हैं और सुरत उनके अंदर गुप्त है।

३०—और प्रगट और गुप्त का हाल थोड़ा बहुत इस दृष्टान्त से समझ में आवेगा। जैसे कि इस लोक में पानी एक देश यानी समुद्र में प्रगट है और बाक़ी देशों में यानी ज़मीन पर गुप्त है यानी तह या परदों से ढका हुआ है, कहीं वह तह या परदा पाँच चार हाथ मोटा, कहीं दस बीस हाथ, कहीं चालीस पचास हाथ और कहीं इससे भी ज़्यादा, मगर पानी हर जगह मौजूद है और बग़ैर परदे या तह के हटाये उसका दर्शन या उससे कुछ कार्रवाई मुमकिन नहीं है।

३१—दूसरी धार निरंजन से (जिसका स्थान ब्रह्मांड में है और वह नीचे के देश में भी व्यापक है) निकली और इसका नाम मन हुआ। और मन उसको कहते हैं कि जिसमें फुरना[4] होवे यानी तरंग और ख़याल उठे। यह नीचे के देश में दर्जे-बदर्जे स्थूल होता गया और यही इंद्रियों का प्रेरक[5] है।

१—जहाँ कि मालिक प्रगट है। २—बहुत। ३—सूक्ष्म। ४—स्फुरण। ५—चलाने वाला।

३२—तीसरी धार माया से निकली। इस माया का स्थान भी ब्रह्मांड में है और वही सब नीचे के देश में मौजूद है। और यह भी दर्जे-बदर्जे मुआफ़िक़ परदों के स्थूल यानी कसीफ़[1] होती गई। इसके मसाले से तन और इन्द्री वग़ैरह बनीं और यह सुरत की शक्ति से चैतन्य[2] हैं, जिस शक्ति की धार मन के वसीले से पिंड में फैलती है।

३३—सुरत की असली बैठक पिंड में दरमियान[3] दोनों आँखों के जो अंदर की तरफ़ तिल है, उसमें है। और इसी स्थान से तमाम पिंड में फैली है और जाग्रत के वक़्त दोनों आँखों में नशिस्त[4] है। जब सुरत की धार अंदर और ऊपर की तरफ़ खिंच जाती है, उस वक़्त देह और इंन्द्रियाँ बेकार हो जाती हैं याना तमाम कार्रवाई उनकी बंद हो जाती है।

३४—मन की बैठक ख़ास कर सीने के नीचे कौड़ी के मुक़ाम पर है और वहीं से धार इंद्रियों में आती है और तमाम देह में भी फैलती है, लेकिन जब तक सुरत की धार ऊपर से मन के स्थान पर न आवे, तब तक यह कुछ कार्रवाई नहीं कर सकता है।

३५—माया की धार से, जो कि जगह २ स्थूल रूप हो गई, पिंड के अंग २ बने हैं और वही कुल देह में व्यापक है।

बयान हालत खिंचाव सुरत का

३६—जब आदमी की पुतली आँख की खिंच जाती है, वह फ़ौरन् बेहोश हो जाता है और देह बेकार हो

१—मोटी। २—क्रियाशील। ३—बीच में। ४—बैठक।

जाती है और मन और इंद्रियाँ भी बेकार हो जाती हैं।

३७—इसी तरह जब ज़्यादा खिंचाव उस धार का हो जाता है, तब आदमी मर जाता है। और जो थोड़ा सा खिंचाव हुआ, तब बेहोश हो जाता है या नींद आ जाती है और इस तरफ़[1] से ग़ाफ़िल[2] हो जाता है।

३८—इससे साबित हुआ कि तमाम कार्रवाई बदन की सुरत की धार के आसरे है और इस धार का ऊपर से, यानी दिमाग़ से आँखों में और फिर तमाम देह में, उतरना और फैलना और फिर अख़ीर वक़्त पर इसी रास्ते से, यानी आँख के मुक़ाम से अंदर और ऊपर की तरफ़ होकर, चले जाना और पिंड का छोड़ना साफ़ इन आँखों से नज़र आता है, क्योंकि मरते वक़्त पाँव की उँगलियों से खिंचाव उस धार का शुरू होकर रफ़्ता रफ़्ता[3] ऊपर की तरफ़ को चलता जाता है और जब पुतली उलट गई यानी खिंच गई, तब पिंड की मात हो जाती है।

३९—और यह बात भी इस बयान से साबित हुई कि जब सुरत जाग्रत के वक़्त आँखों में बैठी है, उस वक़्त देह और दुनियाँ का दुख सुख और चिंता और फ़िक्र व्यापता है और जब अंदर की तरफ़ थोड़ी बहुत खिंच गई, उस वक़्त न देह की ख़बर रहती है और न दुनियाँ की और उनका दुख सुख भी नहीं व्यापता है। देखो जब डाक्टर लोग शीशी सुँघाते हैं उस वक़्त सुरत यानी रूह की धार हट जाती है, फिर बदन काट डालते हैं

१—दुनियाँ। २—बेख़बर। ३—धीरे धीरे।

और कुछ ख़बर नहीं होती। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि देह और इन्द्रियाँ जड़ हैं और सुरत चैतन्य है। उसकी चैतन्यता से यह भी चैतन्य होते हैं और जब उससे यानी सुरत से संबंध ढीला हो जाता है या टूट जाता है, उस वक्त यह देह और इंद्रियाँ बेकार या मुर्दा हो जाती हैं।

४०—ऊपर के बयान से ज़ाहिर होता है कि जो कोई जीते जी दुख सुख संसार और देह से बचाव चाहे तो वह ऐसी तरकीब करे कि जिससे जब चाहे तब वह अपनी सुरत को आँख के स्थान से अंदर और ऊपर की तरफ़, जिस क़दर मुनासिब और ज़रूर समझे, खींच ले जावे। तब उसको तकलीफ़ और आराम, देह और दुनियाँ से, बचाव हो सकता है।

रचना के तीन दर्जों का बयान

४१—संतों ने कुल रचना को तीन बड़े दर्जों में तक़सीम[1] किया गया है और वह तीन दर्जे यह हैं।

(१) पहिला दर्जा—जिसमें निर्मल चैतन्य यानी सिर्फ़ रूह का मंडल[2] है और वहाँ के लोक और उन लोकों में सब रचना रूहानी यानी चैतन्य लतीफ़[3] है। और यह मंडल दयाल अथवा संत देश कहलाता है।

(२) दूसरा दर्जा—इस पहिले दर्जे के नीचे से, जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है, ग़ुबार यानी माया का ज़हूर[4] हुआ। जितने रंग हैं, लाल से लगा कर नीले यानी काले रंग तक, सब मन और माया के रंग हैं। इस दर्जे

१—विभाजित। २—लोक। ३—सूक्ष्म। ४—प्रकाश।

में सूक्ष्म यानी लतीफ़ माया निर्मल चैतन्य को तह या ग़िलाफ़ के तौर[1] पर ढके हुए है, यानी लतीफ़ माया की देहियाँ तैयार होकर और उनमें रूह बैठ कर उस देश में कार्रवाई करती है। यह दर्जा ब्रह्मांड कहलाता है।

(३) तीसरा दर्जा—इस दर्जे में निर्मल चैतन्य पर सिवाय सूक्ष्म माया के ग़िलाफ़ों के स्थूल माया की तहें चढ़ी हुई हैं और इसी सबब से यहाँ के लोक भी कसीफ़[2] और उनकी रचना भी निहायत कसीफ़ यानी स्थूल है। छः चक्र पिंड के इसी दर्जे में शामिल हैं।

इस लोक में सुरत की हालत और कार्रवाई का बयान और उसकी निकासी[3] का जतन

४२—हमारा यह पृथ्वी लोक तीसरे दर्जे में है और इसी सबब से यहाँ की रचना भी स्थूल है और यहाँ सुरत यानी रूह कितने ही परदों में गुप्त है। किसी दरख़्त का बीज लेकर देखो कि कितनी तह या छिलके उस पर चढ़े हुए हैं और फिर उनके अंदर मग़्ज़[4] और मग़्ज़ के भी किसी दर्जे में उस बीज की रूह की बैठक है, जहाँ से कि वक़्त पैदाइश के कुला फूटता है यानी प्रथम धार निकलती है। और इन परदों या ग़िलाफ़ या तह को शरीर या देह कहते हैं।

४३—इसी तरह आदमी की रूह भी कई परदों यानी शरीरों में गुप्त है। पहिला स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म और तीसरा कारण शरीर और इन तीनों में हर रोज़ सुरत यानी रूह की आमदरफ़्त[5] रहती है।

१—तरह। २—स्थूल। ३—निकलने। ४—गिरी। ५—आना जाना।

४४—ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि यह देश सुरत यानी रूह का नहीं है, क्योंकि यह माया का देश है और यहाँ काल और माया प्रधान यानी ग़ालिब[1] हैं और सुरत उनके आधीन[2] है। हरचंद कि सब कार्रवाई इस देश में सुरत की धार की ताक़त से हो रही है, पर सुरत का मुख यहाँ नीचे और बाहर की तरफ़ हो रहा है और इस सबब से उसकी धारें मन और माया से मिल कर जारी होती हैं और मन और माया का असर उनमें ज़बर रहता है। इस वास्ते जीव का झुकाव संसार और उसके भोगों की तरफ़ ज़्यादा रहता है।

४५—अब जब तक कि किसी मनुष्य को ऊपर के देश के बासी या उस तरफ़ के चलने वालों का संग न मिलेगा और वह उनसे भेद रास्ता और जुगत चलने की लेकर इस देश और इस घाट यानी स्थान को आहिस्ता आहिस्ता छोड़ना शुरू न करेगा, तब तक सच्चे और पूरे तौर से मन और माया का ज़ोर कम न होगा और न उस मनुष्य की पुरानी आदतें और स्वभाव और व्यवहार और ख़्वाहिशें, जो संसारियों का संग करके पड़ गई हैं, बदलेंगी।

४६—संग और तमाशा और तजरुबा, जिस सोहबत और जिस पेशे में जो कोई कि होवे, बड़ा भारी असर रखता है, यानी जैसे आदमी की सोहबत होगी और जैसा कुछ कि वह अपनी आँख से देखेगा और जो कुछ कि हालत उस पर बीतेगी, उसी मुआफ़िक़ उसकी रहनी

१—ज़ोरदार। २—वश में।

और व्यवहार और चाह होवेगी। और जो चाह कि उसके मन में ज़बर होगी, उसी के पूरा करने के वास्ते वह मेहनत और तवज्जह के साथ जतन करेगा।

अमर और परम सुख की प्राप्ति के लिये जतन करना ज़रूर है और उसी का नाम सच्चा परमार्थ है

४७—सब जीव दुनियाँ के सुखों के वास्ते मेहनत कर रहे हैं और दुखों के दूर करने के लिये तदबीर करते हैं। पर इस दुनियाँ के जितने सुख हैं, वे सब मन और इन्द्रियों के भोग हैं और नाशमान और तुच्छ[1] और जड़ हैं। और जिस किसी को यह सब सुख मिल भी गये तो एक दिन उनको ज़रूर मरने के वक्त छोड़ना पड़ेगा। और जो उन्हीं की चाह मन में ज़बर रही और उम्र भर यही काम करता रहा, तो उसी चाह और स्वभाव और आदत के मुआफ़िक़ फिर जन्म धरना पड़ेगा और इसी तरह हमेशा जन्म मरण का चक्कर जारी रहेगा और दुख सुख भोगता रहेगा और चाहे जैसा जतन करे, देही के दुख सुख से कभी निवृत्ति[2] नहीं होवेगी।

४८—अब समझना चाहिये कि जिस क़दर सुख और ज्ञान और आनन्द और रस हैं, सब सुरत की धार के वसीले से मालूम होते हैं। जो वह धार शामिल न होवे या हट जावे, तो यह सब सुख और आनन्द और ज्ञान जाते रहें। और जब कि सुरत की एक एक धार में इस क़दर

१—नाचीज़। २—छुटकारा।

रस और आनन्द है कि मनुष्य उसमें फँस रहे हैं, तब सुरत के भंडार में, यानी उस रूहानी और निर्मल चैतन्य देश में जहाँ से कि सब सुरतें आई हैं, किस क़दर रस और आनन्द और सुख और ज्ञान होवेगा।

४९–इस वास्ते हर एक मनुष्य को, चाहे पुरुष होवे या स्त्री, मुनासिब है कि उस परम आनन्द की प्राप्ति के लिये थोड़ा बहुत जतन ज़रूर करे और जिस क़दर वह जतन करता जावेगा, इस नीचे के देश से ऊँचे देश में चढ़ कर विशेष सुख भोगता जावेगा और रफ़्ता रफ़्ता एक दिन परम और अमर आनन्द के भंडार में पहुँच जावेगा और वहाँ पहुँच कर आप भी अमर हो जावेगा। और वह देश भी, जो निर्मल चैतन्य का भंडार है, अमर है और वहाँ का सुख भी अमर है।

५०–जो कोई इस बात को नहीं मानेगा, वह इसी नीचे देश में पड़ा रहेगा और बारम्बार ऊँची नीची जोनों[1] में और ऊँचे नीचे देशों में देह धर कर दुख सुख भोगता रहेगा और अपनी करनी और कर्म के मुआफ़िक़ उन जोनों में फल पावेगा।

५१–सिवाय इसके मनुष्य में तीन क़िस्म की ताक़तें मौजूद हैं–पहिली देह और इन्द्रियों की, दूसरी मन और बुद्धि की और तीसरी सुरत रूह की। जो कोई इन तीनों ताक़तों को मथन[2] करके जगावे, वह सबमें श्रेष्ठ कहलावे और ऊँचे दर्जे में पहुँच सकता है और मालिक के भेद

१—योनियों। २—अभ्यास।

को जान सकता है। और जो एक एक ताक़त को सिर्फ़ जगावेगा, वह उसी मुआफ़िक़ फ़ायदा उठावेगा, लेकिन जो सुरत की ताक़त को मथन यानी अभ्यास करके जगावेगा, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकेगा, वह ख़ुद मालिक का प्यारा हो जावेगा और सब रचना उसकी फ़रमाबरदारी[1] करेगी।

५२—अब समझो कि जिसने देह और इन्द्री की क़ुव्वतें[2] भी नहीं जगाईं, वह सिर्फ़ कुली या हल जोतने का काम करके मुश्किल से अपना और अपने कुटुम्ब का पेट भरेगा और हैवानों[3] के मुआफ़िक़ नादान[4] रहेगा। और जिसने कि यह क़ुव्वतें जगाईं, जैसे सीने, लिखने, तसवीर खींचने, गाने बजाने वग़ैरह का काम सीखा, वह किस क़दर फ़ायदा अपनी मेहनत से उठा सकता है?

५३—और जिसने अक़्ली और इल्मी क़ुव्वत को मदरसे में अभ्यास और मश्क़[5] करके जगाया, वह देखो किस क़दर बड़ा दर्जा हाकिमी व डाक्टरी व जजी व मुंसिफ़ी व आनरेरी[6] वग़ैरह का पाता है और अपनी मेहनत और कार्रवाई से किस क़दर ज़्यादा फ़ायदा उठाता है और किस क़दर मान बड़ाई उसकी होती है और हज़ारों लाखों आदमियों पर हुक्म चलाता है।

५४—और जिसने अपनी सुरत यानी रूह की ताक़त को अभ्यास करके जगाया, जैसे कबीर साहब और गुरु नानक साहब जो संत हुए, और कृष्ण महाराज और

१—आज्ञा पालन। २—शक्तियाँ। ३—जानवरों। ४—मूर्ख। ५—अभ्यास। ६—आनरेरी मजिस्ट्रेट।

रामचन्द्र और बुद्ध जी औतार, और व्यास और वशिष्ठ जी वग़ैरह महात्मा, और हज़रत ईसा और हज़रत मुहम्मद और और पैग़म्बर औलिया वग़ैरह, उनकी किस क़दर महिमा और शुहरत[1] हुई कि औरत और मर्द और बच्चे अनेक देशों में उनके नाम की ताज़ीम[2] करते हैं और उनकी बानी और बचन को अपनी मुक्ति का वसीला[3] समझते हैं और कैसे भाव और प्यार के साथ उनकी पूजा और यादगारी करते हैं। बावजूदे[4] कि उनको सैकड़ों और हज़ारों वर्ष गुज़र गये, मगर उनका नाम और बानी बदस्तूर लोगों के दिलों में ताज़ा असर करती है।

५५—अब समझना चाहिये कि हर एक औरत और मर्द पर फ़र्ज़ है कि थोड़ा बहुत तीनों क़ुव्वतों को अभ्यास करके जगावे।

५६—और जो ऐसा नहीं करेंगे, तो यह क़ुव्वतें उन में जैसी सोती आईं, वैसी ही सोती रहेंगी और वे उनके जगाने से जो फ़ायदा हासिल होना मुमकिन है, उससे महरूम[5] और अभागी[6] रहेंगे।

५७—इन सबमें से रूह यानी सुरत की क़ुव्वत को तो ज़रूर थोड़ा बहुत जगाना हर एक मनुष्य को लाज़िम और फ़र्ज़ है कि उसमें उसके जीव रूह का कल्याण और मालिक के देश में पहुँच कर परम आनंद का प्राप्त होना मुमकिन है। और नहीं तो हमेशा अँधेरे यानी माया के घेर में पड़ा रहेगा और देहियों के साथ दुख सुख और

१—प्रशंसा। २—आदर। ३—ज़रिया। ४—गो। ४—वंचित। ६—बदक़िस्मत।

जन्म मरण की तकलीफ़ भोगता रहेगा।

५८—सिवाय इसके दफ़ा ३६, ३७, ३८, ३९, ४० के पढ़ने से मालूम होगा कि सुरत रूह मरने के वक्त आँख के रास्ते होकर जाती है, यानी जब पुतली उलट जाती है उस वक्त मौत हो जाती है। अब हर एक मनुष्य को, चाहे स्त्री होवे या पुरुष, ज़रूर और मुनासिब है कि अपने मरने के वक्त से पहिले इस रास्ते को, जिस क़दर बन सके, खोले यानी तै करे और वहाँ की रचना और क़ुदरत[१] और कैफ़ियत[२] अपनी आँखों से देख ले और जो ऊपर की तरफ़ चलने में आनंद और सरूर ज़रूर ज़्यादा से ज़्यादा मिलता जावेगा, उसका भोग मन और रूह के साथ थोड़ा बहुत इस ज़िन्दगी में करे। तब अख़ीर वक्त पर और किसी भारी तकलीफ़ या दुख या चिन्ता के समय भी उसको रंज बहुत कम होगा और ऐसे वक्त पर अपने अंदर की तरफ़ तवज्जह करने से फ़ौरन् किसी क़दर फ़ायदा मालूम होवेगा।

५९—ऐसे अभ्यासी को कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया और मेहर और उनके अंग संग और हाज़िर नाज़िर[३] होने का सबूत अपने अंतर में मिल कर दिन दिन प्रेम और प्रतीति चरणों में बढ़ती जावेगी और दुनियाँ के काम भी उसके सहज में कुल मालिक की मौज के मुआफ़िक़ सरंजाम पावेंगे[४] और उसके मन में सहज उदासीनता[५] संसार और उसके पदार्थों की तरफ़ से होती

१—शान। २—हाल। ३—मौजूद व देखनेवाला। ४—सरंजाम पावेंगे—हो जावेंगे। ५—उपरामता।

जावेगी और भक्ति बढ़ती जावेगी कि जिससे यह अपना सच्चा उद्धार होता हुआ जीते जी आप देखता जावेगा।

६०—सच्चा परमार्थ इसी का नाम है कि अपने घट में जिस रास्ते होकर सुरत रूह राधास्वामी देश से उतर कर पिंड में आकर ठहरी है, उसी रास्ते से उसको चला कर उसके निज देश में पहुँचाना और अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर उनके दर्शन के बिलास का आनन्द लेना।

६१—संत मत में कुल मालिक की महिमा और पूजा है और वह पूजा ज़ाहिरी नहीं है। उसका भेद लेकर उससे मिलने का जतन[1] करना यही पूजा है और उसके चरणों में दिन दिन प्रीति और प्रतीति का बढ़ाना यही उसकी भक्ति है।

और जोकि सच्चा और कुल मालिक सब जगह मौजूद है और मनुष्य इस लोक में सबसे श्रेष्ट यानी उत्तम है, फिर मनुष्य के चोले[2] में उसका प्रकाश बनिस्बत और रचना इस लोक के ज़्यादा प्रगट है। इस वास्ते जो कोई उससे मिलना चाहे या उसका प्रकाश और जलवा[3] देखना चाहे उसको मुनासिब है कि अपने घट में उसका पता और भेद लेकर खोज करे, क्योंकि मनुष्य का चोला कुल रचना का नमूना है और इस चोले में जो कुछ कि बाहर रचना है वह सब छोटे स्केल[4] पर मौजूद है, जैसे कि एक तसवीर बड़ी और एक उसी की नक़ल छोटी दोनों में बराबर

१—उपाय। २—शरीर। ३—शान। ४—पैमाने।

सब आकार[1] बड़े और छोटे के हिसाब से मौजूद हैं।

६२—बाहरमुख पूजा जिस क़दर कि है वह नक़ल की है या मनुष्य से कमतर[2] दर्जे की रचना की है। यह दोनों असल से बहुत दूर हैं। और जो इनका सिलसिला[3] असल से नहीं लगा हुआ है यानी असल का भेद जो घट में है नहीं मालूम और न उसके मिलने की तरकीब की ख़बर है, तो वह सब पूजा वृथा और फ़ज़ूल है, क्योंकि उस काम के करने से कभी असल नहीं मिलेगा जब तक कि भेदी से उसका भेद लेकर वह जुगत कि जिससे मेला[4] होवे अपने अंतर में कमाई न जावे।

६३—और वह भेद और जुगत यानी तरीक़ा अभ्यास का इस वक़्त में सिर्फ़ राधास्वामी मत में मिल सकता है। और किसी मत में उस भेद और तरीक़े का ज़िक्र भी नहीं है। और वह जुगत ऐसी है कि लड़का, जवान, बूढ़ा, चाहे स्त्री होवे या पुरुष, उसको आसानी के साथ बग़ैर किसी ख़तरे या विघ्न के कमा सकते हैं।

६४—और मतों में प्राणायाम को सबमें बढ़का[5] तरीक़ा या योग क़रार दिया[6] है, पर वह ऐसा मुश्किल और ख़तरनाक है कि विरक्तों[7] से भी उसका अभ्यास नहीं बन सकता। फिर बिचारे गृहस्थी और ख़ास कर औरतें तो उसके संजमों की निगाहदाश्त[8] और प्राणों के रोकने और चढ़ाने का अभ्यास बिलकुल नहीं कर सकतीं और इस सबब से उनका उद्धार उन मतों के मुआफ़िक़ मुतलक़[9]

१—हिस्से। २—घटिया। ३—संबंध। ४—असल से मेल। ५—उत्तम। ६—बताया। ७—संन्यासियों। ८—पाबंदी। ९—बिलकुल।

नहीं हो सकता ।

६५—इन मतों के आचार्यों ने प्राण की धार पर सवार होकर रास्ता तै करना बतलाया, यानी प्राण योग का उपदेश किया, पर संतों ने रूह सुरत की धार की सवारी तजवीज़ की[१] । अब ख़याल करो कि रूह की धार बड़ी है या प्राण की धार । सोते में प्राण की धार जारी रहती है, मगर कुल कार्रवाई मन और इन्द्रियों की बंद रहती है । और जाग्रत में जबकि रूह की धार आँखों के मुक़ाम पर आकर ठहरी, उस वक़्त कुल कार्रवाई तन मन और इन्द्रियों की जारी हो जाती है । इससे साफ़ ज़ाहिर है कि जो कोई रूह की धार पर सवार होकर घर की तरफ़ चलेगा वह सुखाला पहुँचेगा और जल्द मन और इन्द्री और तन उसके क़ाबू[२] में आवेंगे और किसी तरह का ख़तरा और विघ्न रास्ते में पैदा नहीं होगा । और जो प्राण की धार के आसरे चलेगा, उसको प्राणों का रोकना और चढ़ाना बग़ैर पाबंदी मुक़र्रर[३] किये हुए संजमों के, जो कि निहायत कठिन और मुश्किल हैं और न गृहस्थ से बन सकते हैं और न विरक्त[४] से, क़तई[५] नामुमकिन होगा । इस वास्ते यह रास्ता बिलकुल बंद हो गया और सिर्फ़ ज़बानी या तहरीरी[६] बातचीत इस अभ्यास की रह गई । और जो बिलफ़र्ज़[७] किसी एक विरक्त से थोड़ा बहुत अभ्यास बना भी, तो बाक़ी विरक्त और कुल गृहस्थियों से तो उसका बन आना नामुमकिन है । फिर ऐसे रास्ते

१—बतलाई । २—वश । ३—निश्चित । ४—साधु, संन्यासी । ५—बिलकुल । ६—पुस्तकों में । ७—किसी हालत में ।

के बयान करने से क्या फ़ायदा ? किताबों में उसका ज़िक्र लिखने और ज़बानी बयान करने से अभ्यास का फल नहीं मिल सकता है।

६६—इस वास्ते जो अभ्यास कि संतों ने बताया है, उसका मानना और उसके मुआफ़िक़ थोड़ी बहुत कार्रवाई करना हर एक को, चाहे औरत होवे या मर्द, मुनासिब और ज़रूर है, क्योंकि बग़ैर उसके दुनियाँ और देह के सुख दुख और जन्म मरण के सख़्त दुःखों से बचाव किसी तरह मुमकिन नहीं और न सच्चा और पूरा उद्धार या मुक्ति हासिल हो सकती है।

वर्णन कैफ़ियत सुरत शब्द अभ्यास की

६७—इस अभ्यास का नाम सुरत शब्द योग है, यानी सुरत रूह को शब्द के साथ मिलाकर चढ़ाना। और शब्द नाम सिर्फ़ आवाज़ का नहीं है, बल्कि चैतन्य की धार से मतलब है, क्योंकि जहाँ धार रवाँ[1] है, वहाँ उसके साथ आवाज़ भी बराबर होती है। धार नज़र नहीं आती, पर आवाज़ से उसकी पहिचान होती है, जैसे आदमी का असली रूप यानी उसकी सुरत रूह की कैफ़ियत[2] नज़र नहीं आती, पर आदमी के बोलने से मालूम होता है कि रूह सुरत उसमें मौजूद है और कार्रवाई कर रही है। कुल रचना में शब्द के वसीले से कार्रवाई हो रही है और यह शब्द निशान और ज़हूरा[3] चैतन्य का है। जहाँ शब्द नहीं, वहाँ चैतन्य भी नहीं यानी गुप्त है।

१—जारी। २—हाल। ३—प्रकाश।

६८–सुरत चैतन्य को शब्द चैतन्य से मिलाने का मतलब यह है कि सुरत, जो उस शब्द की धार है, उसको अपने घर की तरफ़ आवाज़ की डोरी को पकड़ के उलटाना। और आवाज़ की बराबर कोई अँधेरे में उजाला करने वाला और रास्ता दिखलाने वाला नहीं है। जब कि कोई आदमी अँधेरी रात में जंगल में रास्ता भूल जावे और उस वक्त बसबब छाये होने बादल के किसी क़िस्म की रोशनी चाँद तारागण बिजली और मशाल वग़ैरह की नहीं है, तो जो आवाज़ आदमियों की किसी नज़दीक के गाँव से आती होवे, उसको पकड़ के भूला हुआ आदमी गाँव में पहुँच सकता है।

६९–इसी तरह यह आवाज़ अनाहद शब्द की, जो घट २ में पूर[1] है और बग़ैर मदद ज़बान या किसी बाजे के हर वक़्त जारी है, ऊँचे से ऊँचे देश यानी कुल मालिक के दरबार से आ रही है और एक २ रास्ते के स्थान पर ठहर कर और फिर उस धार के वसीले से जो वहाँ से निकली है, बरामद होकर[2] कुछ तबदीली के साथ बराबर ऊपर से नीचे के मुक़ाम तक जारी है और कुल देह और रचना भर में फैली हुई है। जो कोई इस आवाज़ का भेद और पता यानी स्थान २ के शब्द का हाल भेदी से दरियाफ़्त करके अपने मन और चित्त से उसको सुनता हुआ आँखों के रास्ते से चलना शुरू करे, वह दिन २ उस स्थान के जहाँ से कि पहिली आवाज़ आ

१—भरी। २—बरामद होकर—निकलकर।

रही है, नज़दीक पहुँचता जावेगा और फिर वहाँ से दूसरे शब्द को पकड़ कर चलेगा। इसी तरह सब मंज़िलें[१] रास्ते की तै[२] करता हुआ एक दिन कुल मालिक राधास्वामी दयाल के देश में जा पहुँचेगा।

७०—मालिक कुल अरूप[३] और विदेह[४] है। उसका ध्यान किसी तरह कोई नहीं कर सकता है, पर शब्द के वसीले से, जो उस मालिक के चरणों से जारी हुआ है, अभ्यासी ध्यान करता हुआ पहुँच सकता है, क्योंकि शब्द उस मालिक का प्रथम ज़हूरा[५] और निशान है। और जैसे कि वह मालिक अरूप है, शब्द भी अरूप है, पर ध्यान में बहुत भारी मदद देता है यानी ध्याता[६] को उसके इष्ट के पास पहुँचाता है। इसी तरह अरूप का ध्यान करके अभ्यासी उस अरूप पद में पहुँच सकता है। और कोई रास्ता या तरकीब पहुँचने की ऐसी आसान और बेख़तरा और निश्चय करके सीधी राह से पहुँचाने वाली क़तई[७] नहीं है, क्योंकि रूह की धार, जो शब्द की धार है, उससे बढ़कर और कोई धार नहीं रची गई है। वह और सब धारों की कर्त्ता और चैतन्य करने वाली है। ख़ुद प्राण की धार भी रूह यानी जान की धार से चैतन्य है। फिर सुरत शब्द से बढ़कर और कोई जुगत न रची गई और न हो सकती है।

७१—यह बात सबको मालूम होवेगी कि सुरत रूह का आवाज़ के साथ प्यार और इश्क़ ज़ाती यानी असली है। जैसे कोई आदमी कैसे ही ज़रूरी काम के वास्ते जाता

१—मुक़ाम। २—पार। ३—रूपहीन। ४—देह रहित। ५—प्रकाश। ६—ध्यान करने वाले। ७—बिलकुल।

होवे और जो कहीं रास्ते में उम्दा गाना बजाना होता होवे, तो ज़रूर थोड़ी देर के वास्ते वहाँ ठहर कर उसको शौक़ से सुनेगा, बल्कि सिर्फ़ आदमी ही नहीं, जानवर भी उम्दा बाजे और रसीली आवाज़ के आशिक़ हैं और उसको बड़ी तवज्जह के साथ एकाग्र चित्त[1] होकर सुनते हैं और ख़ुश होते नज़र आते हैं। सबब इसका यही है कि सुरत का भंडार शब्द है और यह आप भी आवाज़ स्वरूप है और इस वास्ते आवाज़ के साथ इसकी प्रीति या इश्क ज़ाती और असली है। रसीली आवाज़ सुन कर सुरत और मन मस्त हो जाते हैं और गाने या बाजा बजाने वाले के संग संग फिरते हैं और कभी ख़ुशी में भर कर नाचने लगते हैं और ज़्यादती सरूर[2] में बेहोश हो जाते हैं।

७२—जिस किसी को सच्चा शौक़ होवे, इस अभ्यास का चंद रोज़ यानी एक महीने पंद्रह रोज़ इम्तिहान और परीक्षा करके आप देख ले, क्योंकि यह राधास्वामी मत करनी का है, बातों और विद्या बुद्धि की चतुराई का नहीं है। विद्यावान् अपनी बुद्धि के अहंकार में संतों के बचन को ग़ौर और फ़िक्र के साथ बिना पक्षपात के न सुन कर कोरे[3] रह गये और उनको सच्चे मालिक का या उसके मिलने के रास्ते और तरीक़े का पता न लगा। सिर्फ़ बातों में संतोष करके थक रहे और अहंकार किया कि उनकी बराबर कोई कुछ नहीं जानता है और हक़ीक़त में असल भेद कुल मालिक और जीव यानी सुरत और शब्द की

१—एकाग्र चित्त—लीन। २—आनन्द। ३—ख़ाली।

धार से बिलकुल बेख़बर हैं।

७३—जो सच्चे खोजी और दर्दी लोग हैं और किसी मत या तरीक़े में उनका बंधन और पक्ष नहीं है और न अपनी विद्या और बुद्धि का ऐसा अहंकार रखते हैं कि हमने सब कुछ जान लिया और समझ लिया है, वे राधास्वामी मत के अभ्यास के लायक़ हैं और वही राधास्वामी मत के हाल और भेद और अभ्यास की जुगत को सुनकर मगन[1] होवेंगे और उसको दिलोजान[2] से मानेंगे और उसके मुआफ़िक़ करनी करके उसके फल को प्राप्त होंगे, यानी अपनी जिंदगी में अपने सच्चे उद्धार और सच्ची मुक्ति का सबूत हासिल करेंगे और एक दिन सच्चे मालिक के देश में पहुँच कर उसके दर्शन का आनंद लेवेंगे और जन्म मरण और देह के दुख सुखों से बच जावेंगे।

राधास्वामी मत के अभ्यासी को प्रेम और सच्च शौक़ की ज़रूरत और उसकी माहिमा

७८—जितने काम दुनिया के हैं बग़ैर शौक़ या मुहब्बत के वह दुरुस्ती से नहीं बन सकते हैं, यानी जब तक कि उनमें मन और इन्द्री पूरी तवज्जह के साथ शामिल नहीं होते हैं, वह काम दुरुस्त नहीं होते। फिर परमार्थ का खोज और अभ्यास बग़ैर पूरी तवज्जह के किस तरह दुरुस्त बन सकता है? इस वास्ते सच्चे परमार्थी

१—प्रसन्न। २—पूरी तरह।

को राधास्वामी मत में ज़रूर है कि प्रेम अंग लेकर सतसंग और अभ्यास करे, तो उसमें फ़ायदा मालूम पड़ेगा, और नहीं तो उसकी कार्रवाई रूखेपन के साथ होवेगी और उसमें रस कुछ नहीं आवेगा और न प्रीति और प्रतीति बढ़ेगी।

७५—जो प्रेम कि प्रतीति[1] के साथ है, उसके ठहराव का भरोसा ज़्यादा होता है और उसमें फ़ायदा भी ज़्यादा मिलेगा और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया भी ज़्यादा आवेगी। और यह प्रतीति सतसंग करके हासिल होगी।

७६—सतसंग नाम गुरू या साध के संग का है और वह गुरू और साध संत मत अथवा राधास्वामी मत के पैरौ[2] होने चाहिये। ऐसे सतसंग में सिवाय इन बातों के और किसी लड़ाई झगड़े क़िस्से बखेड़े का ज़िक्र न होगाः—(१) महिमा सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की और भेद रास्ते और मंज़िलों का और जुगत रास्ता तै करने की। (२) तरीक़ा बढ़ाने प्रेम प्रीति का राधास्वामी दयाल और गुरू के चरणों में। (३) पैदा करना हालत उदासीनता[3] का दुनियाँ और उसके भोगों की तरफ़ से अपने मन में। (४) वर्णन उन विघ्नों का जो मन और माया अभ्यासी के रोकने को पैदा करते हैं। (५) हाल उस क़ैफ़ियत का जो अभ्यासी को हालत सतसंग और अभ्यास में मालूम होती है और (६) ज़िक्र चढ़ाई सुरत

१—विश्वास। २—मानने वाले। ३—उपरामता।

का मुक़ामों पर और उसकी हालत वग़ैरह ।

७७–सतसंग में बैठ कर और चित्त देकर बचन सुनने से बहुत से संशय और भरम दूर होते हैं और बहुत सी चीज़ों में या बातों में जो भाव[१] और पकड़[२] जीव की अरसे से चली आती है, वह भी ढीली हो जाती है । इस तरह आहिस्ता आहिस्ता जीव क़ाबिल अभ्यास करने सुरत शब्द योग के हो जाता है । और जिन्होंने कि सतसंग नहीं किया और सिर्फ़ अभ्यास की बड़ाई सुन कर और मत में शामिल होकर यानी उपदेश ले कर उसकी कमाई करने लगे, तो उनसे अभ्यास जैसा चाहिये वैसा बन नहीं पड़ेगा और न रस पावेगा, क्योंकि जब तक संशय और भरम दूर न होवें और अंतर में सफ़ाई न होवे, तब तक मन और सुरत सर्व अंग करके[३] दुरुस्ती के साथ अभ्यास में नहीं लगते ।

७८–इसी तरह जब कोई सतसंग में बैठ कर पहिचान कुल मालिक राधास्वामी दयाल और उनके धाम[४] की और भेद रास्ते का और बड़ाई सुरत शब्द मार्ग की सुनेगा और बुद्धि से अच्छी तरह समझेगा, तब उसके मन में संतों के बचन की थोड़ी बहुत प्रतीति आवेगी । और जब उस प्रतीति के मुआफ़िक़ थोड़ा बहुत अभ्यास करके रस और राधास्वामी दयाल की दया का परचा[५] अपने अंतर में पावेगा, तब सच्ची प्रीति घट में पैदा होगी और प्रतीति बढ़ती जावेगी और फिर अभ्यास का भी शौक़ बढ़ता

१—श्रद्धा । २—बंधन । ३—सर्व अंग करके—पूरी तरह । ४—लोक ।
५—तजरुबा ।

जावेगा।

७६—बग़ैर थोड़े बहुत ऐसे शौक़ और प्रीति और प्रतीति के रास्ता घट में तै करना[1] और क़ुदरत की क़ैफ़ियत को देखना मुश्किल है, क्योंकि जब तक कुछ भी शौक़ और प्रीति और प्रतीति दिल में नहीं आवेगी, तब तक सुरत और मन और इन्द्रियाँ सिमट कर अभ्यास में नहीं लगेंगी और न उसमें रस आवेगा। और इस सबब से अभ्यासी थोड़े दिन कुछ कार्रवाई करके उसको थक कर और निरास होकर छोड़ देगा और संतों के बचन को रोचक[2] समझ कर उनका निरादर[3] करेगा।

८०—प्रेम या प्रीति खैंच शक्ति को यानी क़ुव्वत जाज़बा[4] को कहते हैं। इसी शक्ति से तमाम रचना जो कि छोटे छोटे ज़र्रों या परमाणुओं से मिल कर रची गई है, क़ायम है और कुल देहियों या सूरतों का ठहराव और कार्रवाई इसी शक्ति के आसरे हो रही है। जो प्रेम न होवे तो कोई किसी से मेल न करे और न किसी काम में मन लगाकर उसकी कार्रवाई करे।

८१—जब कि कुल रचना की कार्रवाई प्रेम के आसरे जारी है, बल्कि सब रचना प्रेम के वसीले से ठहरी हुई है, तो परमार्थ की कार्रवाई, जिससे सुरत अंश अपने अंशी यानी भंडार से मिलना चाहती है, किस तरह बग़ैर प्रेम के जारी हो सकती है और क्योंकर बिना सच्चे शौक़ के इन दोनों का आपस में मेला हो सकता है?

१—तै करना—चलना। २—मन बहलाव की बातें। ३—तिरस्कार। ४—आकर्षण शक्ति।

८२—कुल मालिक राधास्वामी दयाल प्रेम का भंडार हैं और सुरत जो उनकी अंश या धार है, वह भी प्रेम स्वरूप है। इस वास्ते जब तक सुरत में प्रेम न प्रगट होगा, तब तक उसका मेल अपने भंडार से नहीं होगा, यानी रास्ता तै करके उस भंडार में पहुँचने की कार्रवाई (जिसको सुरत शब्द का अभ्यास कहते हैं) दुरुस्ती से नहीं बन पड़ेगी।

८३—ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि जब तक पहिले सतसंग करके प्रीति और प्रतीति मन में नहीं आवेगी और संशय और भरम दूर न होवेंगे, तब तक प्रेम पैदा न होगा। इस वास्ते हर एक सच्चे खोजी और दर्दी[1] परमार्थी को मुनासिब और ज़रूर है कि पहिले राधास्वामी मत के सतसंग में शामिल होकर होशियारी से बचनों को सुन कर और समझ कर और अपने संशय और भरम दूर करके अभ्यास शुरू करे, तब उसको उसका फ़ायदा जल्द मालूम होवेगा और आइंदा को दिन दिन मुआफ़िक़ उसकी लगन[2] के तरक़्क़ी होती जावेगी।

राधास्वामी मत में पाप पुण्य यानी शुभ और अशुभ कर्म की शरह[3]

८४—राधास्वामी मत में शुभ और अशुभ कर्म यानी पुण्य और पाप की शरह ऐसे तौर पर की गई है कि जिसमें किसी को किसी तरह का शक[4] और पकड़ के वास्ते मौक़ा नहीं रहता है। और जो अनेक फ़िरक़ों और

१—मालिक के चाहने वाले। २—प्रेम। ३—वर्णन। ४—संदेह।

अनेक मतवालों ने बहुत से काम पुण्य और बहुत से पाप के साथ नामज़द किये[१] हैं, इनमें बहुत भेद रहता है यानी बाज़े काम ऐसे हैं कि एक मत या एक देश में वे पाप समझे जाते हैं और दूसरे देश और मत में पुण्य माने जाते हैं या एक ही मत में एक वक्त वे पाप कर्म और दूसरे वक्त में जायज़[२] शुमार किये जाते हैं। जैसे जानदार का मारना आम तौर पर अज़ाब[३] में दाख़िल है और मांस अहारियों[४] में वही काम जारी है, या आदमी का मारना गुनाह[५] है और लड़ाई में वही काम जायज़ समझा गया, या अपने पड़ोसी का माल और ज़मीन छीन लेना या उससे ज़बरदस्ती करना नामुनासिब समझा गया और राजे और बादशाह लोग अपने क़रीब के कमज़ोर राजों का राज ज़रा ज़रा सी बात पर नाराज़ होकर छीन लेते हैं और यह काम मुल्कगीरी[६] में दाख़िल किया गया, या यह कि दूसरे के माल या औरत को हाथ लगाना पाप समझा गया लेकिन बाद फ़तह के राजा लोग शहरों के लूटने का हुक्म दे देते हैं और उस वक्त उनकी फ़ौज बहुत से बेगुनाह[७] मर्द और औरतों को क़त्ल कर डालती है और उनका माल लूट लेती है और औरतों की इज़्ज़त बिगाड़ती है, या यह कि अपने मतलब के वास्ते झूठ बोलना नाक़िस[८] समझा गया और राजों की आपस की कार्रवाई में उनके वकील तरह तरह की जो बातें बना कर और तहरीरात[९] को उलट फेर कर उनके मानी और मतलब अपने मुफ़ीद लगाकर

१—नामज़द किये—बताये। २—मुनासिब। ३—पाप। ४—खाने वालों। ५—पाप। ६—राज्य बढ़ाने। ७—बेक़सूर। ८—बुरा। ९—लेखों।

जो कार्रवाई करते हैं, वह दानाई[1] और उम्दा कारगुज़ारी में दाख़िल होती है, या दीवानी और फ़ौजदारी के मुआमलात में जो कोई वकील या मुख़्तार क़ानून और अपनी तक़रीर के ज़ोर से सफ़ेद को स्याह या स्याह को सफ़ेद दिखला देवे, वह बहुत होशियार और चालाक कारकुन[2] समझा जाता है।

८५—राधास्वामी मत में जो काम कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में सुरत को पहुँचावे, शुभ और पुण्य कर्म में दाख़िल है और जिस काम के करने से दूरी होती जावे, वही अशुभ और पाप कर्म है। यह शुभ और अशुभ कर्म मनुष्य की ज़ात से तअल्लुक़ रखते हैं।

८६—कुल मालिक राधास्वामी दयाल सब की जड़ यानी आदि भंडार हैं। उन्हीं के चरणों से धार प्रगट होकर नीचे तक रचना करती चली आई। जिस धार यानी सुरत का रुख़[3] मन और इंद्रियों के वसीले से बाहर और नीचे की तरफ़ है और उसी तरफ़ उसकी कार्रवाई जारी है, वह दिन दिन किसी क़दर दूर होती जावेगी। और जिस सुरत ने कि संतमत का भेद और जुगत लेकर अपना रुख़ चरणों की तरफ़ मोड़ना शुरू किया और राधास्वामी दयाल के सन्मुख पहुँचने और उनके दर्शन का बिलास[4] हासिल करने का इरादा सच्चा और पक्का करके अभ्यास शुरू किया, वही सुरत दिन दिन नज़दीक होकर एक दिन चरणों में पहुँच जावेगी। ऐसी समझ लेकर सुरत

१—होशियारी। २—काम करने वाला। ३—रुझान। ४—आनंद।

शब्द का अभ्यास करना यह शुभ और पुण्य कर्म है।

८७—असली शुभ और अशुभ कर्म यही हैं कि जिनका ज़िक्र ऊपर लिखा गया। अब वह शरह[1] इन कर्मों की की जाती है जो इस लोक के व्यवहार के तअल्लुक़[2] है। और वह यह है कि जो काम कि यह जीव अपनी निस्बत[3] पसंद न करे, उसको औरों की निस्बत भी पसंद करना नहीं चाहिये, यानी जैसा कि यह चाहता है कि लोग इससे बरताव करें, वैसा ही इसको चाहिये कि औरों के साथ आप बरताव करे। इसमें किसी को इसके हाथ से रंज और तकलीफ़ नहीं पहुँचेगी। इस वास्ते इसी का नाम शुभ और पुण्य कर्म है और इसके बरख़िलाफ़ बरताव करना अशुभ और पाप कर्म है, यानी ख़ास अपने आराम और मतलब के लिये मन और बचन और काया[4] से दूसरों को नुक़सान या रंज या तकलीफ़ पहुँचाना पाप है और बग़ैर अपने ख़ास मतलब के दूसरों को सुख और फ़ायदा पहुँचाना पुण्य कर्म है। जो फ़ायदा और आराम न दे सके, तो इस मनुष्य को चाहिये कि किसी को दुख भी न देवे।

८८—जो कोई इन दोनों क़िस्म के शुभ और अशुभ कर्मों पर नज़र रखकर समझ के साथ कार्रवाई करेगा, उससे कुल मालिक राज़ी होकर उसको प्रेम और भक्ति दान यानी अपनी नज़दीकी और मुहब्बत की बख़्शिश करेगा। और जो बरख़िलाफ़ इसके काम करेगा, वह दिन दिन

१—तशरीह। २—संबंध में। ३—बारे में। ४—शरीर।

मालिक के दरबार से दूर होता जावेगा और अँधेरे के घेर[1] में जन्म मरण के चक्कर में देहियों के साथ दुख सुख सहता रहेगा ।

८६—राधास्वामी मत में इस बात की बहुत ताक़ीद[2] है कि अभ्यासी ऊपर की लिखी हुई हिदायत के मुआफ़िक़ कार्रवाई करे । तब उसका प्रेम और भक्ति दिन दिन बढ़ती जावेगी और अभ्यास में भी आनंद और रस मिलता जावेगा । और जो इस हुक्म के मानने में समझ बूझ कर बे-परवाही करेगा, वह अपनी कार्रवाई के एवज़[3] में तकलीफ़ पावेगा और मालिक के चरणों के प्रेम से किसी क़दर ख़ाली रहेगा ।

बयान इस बात का कि कोई सच्चा और कुल मालिक ज़रूर है और जीव सुरत उसकी अंश है

९०—जो कोई निस्बत मौजूदगी कुल और सच्चे मालिक के शक लावे, तो उसको यह कहा जाता है कि देखो चैतन्य सब जगह मौजूद है पर बिना मदद अपने से विशेष चैतन्य के कुछ कार्रवाई नहीं कर सकता है । जैसे इस लोक में भी चैतन्य मौजूद है, पर बग़ैर मदद सूरज की रोशनी और गर्मी के यहाँ कुछ रचना नहीं हो सकती और न क़ायम रह सकती है और यह सूरज मय[4] अपने कुटुम्ब परिवार के यानी तारों के दूसरे अपने से ऊँचे सूरज के गिर्द[5] घूम रहा है जो कि इसका मरकज़[6] है यानी यह

१—मंडल । २—ज़ोर दिया । ३—फल, बदले । ४—साथ । ५—चारों तरफ । ६—केन्द्र ।

हमारा सूरज उस सूरज से ताक़त ले रहा है। इस क़दर तो आसमानी इल्म[१] और दुरबीन की मदद से मालूम हुआ। और संत फ़रमाते हैं कि उस बड़े सूरज के मंडल के ऊपर तीन सूरज मंडल एक से एक बहुत बड़े और हैं और इन सबके ऊपर राधास्वामी धाम है, जोकि कुल का मालिक और कुल का निज भंडार है। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि एक के ऊपर एक मालिक चला गया है और राधास्वामी कुल के मालिक हैं। राधास्वामी धाम अपार और अनंत है, उसके परे और कोई मंडल[२] या रचना नहीं है।

९१—जो लोग कि अपनी नादानी[३] और बेख़बरी से कहते हैं कि कोई मालिक नहीं है और यह रचना आप ही आप मसाला यानी माया से हुई है, किस क़दर ग़लती में पड़े हैं? उनकी देह की कार्रवाई और इस लोक की कार्रवाई से साफ़ ज़ाहिर है कि कुल रचना का तअल्लुक़[४] और उसकी कार्रवाई किसी ऊँचे से ऊँचे और बड़े से बड़े स्थान से हो रही है, जैसे देह की कार्रवाई उस धार पर मुनहसिर[५] है जो दिमाग़ के ऊँचे मुक़ाम से उतर कर तमाम देह में रगों[६] के मंडलों के वसीले से फैली हुई है। और इसी तरह इस लोक और कुल ऊँचे नीचे लोकों की रचना की कार्रवाई ऊँचे से ऊँचे और बड़े से बड़े सूरज मंडल के वसीले से जारी है। और वह मालिक कुल अंतरजामी और सर्व समर्थ और महा ज्ञानी और सबसे भारी बन्दोबस्त करने वाला और कुल का पैदा करने वाला

१—आसमानी इल्म—ज्योतिष। २—लोक। ३—मूर्खता। ४—संबंध। ५—निर्भर। ६—नाड़ियों।

और कुल रचना को चैतन्यता देने वाला यानी कुल जानों की जान है। जो उस ऊँचे देश से धार हर एक मंडल में होकर न आवे, तो सब रचना का खेल बिगड़ जावे और बंद हो जावे।

६२—इस लोक की कुल रचना और देह की रचना से भी साफ़ ज़ाहिर है कि हर एक देह और उसके अंग अंग के बनाने में क़ुदरत और समर्थता और इरादा और मतलब और कारीगरी पाई जाती है। फिर यह बातें बग़ैर महा समर्थ[1] और महा ज्ञानी मालिक के किस तरह ज़ाहिर हुईं? और कुल माया और उसके मसाले और शक्तियों पर उस कुल मालिक की क़ुदरत का असर साफ़ मालूम होता है, यानी यह सब उसी के हुक्म से पैदा हुईं और अब उसी के हुक्म के ताबे[2] हैं और उसकी मौज के मुआफ़िक़ उसी की ताक़त के साथ जाबजा[3] कार्रवाई कर रही हैं।

६३—और सुरत जीव उसी कुल मालिक की अंश है। देखो जब यह सुरत जिस शरीर में अपना ज़हूर[4] करती है—जैसे जब किसी दरख़्त के बीज से कुला फूटता है यानी आदि धार प्रगट हुई—उसी वक़्त से जितनी कि शक्तियाँ हैं, जैसे खैंच शक्ति, हटाव शक्ति और बनाव शक्ति और बिजली और रोशनी और पाँचों तत्त्व और तीनों गुण सब उस देह में मौजूद होकर और इसी आकाश से मसाला लेकर उस देह का बनाव और सम्हाल करते हैं

१—शक्तिवान्। २—आधीन। ३—जगह जगह। ४—प्रकाश।

और जब तक कि सुरत उस देह में मौजूद रहे, तब तक बावजूदे कि यह सब आपस में मुख़ालिफ़ और उलटे हैं पर हिल मिल कर काम देते हैं। और जिस वक्त कि सुरत उस देह को छोड़ती है, उसी वक्त से आपस में बरख़िलाफ़ी के साथ कार्रवाई करके उसका रूप और रंग बिगाड़ देते हैं।

९४—ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि सब तत्त्व और गुण और शक्तियाँ सुरत के हुक्म-बरदार[1] हैं। जहाँ यह अपना ज़हूरा करे, वहाँ यह सब हाज़िर होकर उसकी तावेदारी[2] में कार्रवाई करते हैं और जब वह उस देह को छोड़ देवे, तब सब जुदा होकर अपने अपने मंडल में समा जाते हैं। और जोकि यह सुरत ही इस लोक में सत्य है कि इसके आसरे सब रचना सत्य दिखलाई देती है, यानी कुल देहियाँ अपनी अपनी कार्रवाई कर रही हैं और सब देहियों और रूपों की चैतन्य करने वाली भी यही सुरत है और इसी के वसीले से कुल रस और आनन्द और सरूर[3] पैदा होता है, तो अब यही सुरत सत् चित् आनंद स्वरूप हुई। और जोकि यह अमर और अजर है और शब्द इसका ज़हूरा है, तो यह उसी सिंध रूप सत् चित् आनन्द कुल मालिक की अंश साबित हुई, यानी इसका और उसका जौहर एक ही है।

९५—जब यह बात साबित हुई कि कोई कुल मालिक सत् चित् आनन्द स्वरूप और सर्व समर्थ और सर्व

१—आज्ञाकारी। २—आज्ञा। ३—आनंद।

ज्ञानी ज़रूर मौजूद है और सुरत जीव उसकी अंश है, तो जब तक कि यह अंश अपने अंशी में, यानी बुंद अपने सिंध और किरण अपने सूरज में, न पहुँचेगी, तब तक इसको परम आनन्द प्राप्त नहीं होगा। और जब तक माया के घेर में रहेगी, तब तक उसके मसाले के ग़िलाफ़ इस पर चढ़े रहेंगे यानी इसको देहियों में बैठ कर कार्रवाई करनी पड़ेगी और उनके साथ दुख सुख और जन्म मरण की तकलीफ़ सहनी पड़ेगी।

९६—इस वास्ते जो इन तकलीफ़ों से बचना चाहे और परम आनन्द को प्राप्त होना चाहे, उसको राधास्वामी मत के मुआफ़िक़ अभ्यास करके, आहिस्ता आहिस्ता इस माया के देश को छोड़ कर, अपने निज घर की तरफ़ चलना ज़रूर चाहिये और कुल मालिक की मौजूदगी की निस्बत[1] मन में शक नहीं लाना चाहिये, नहीं तो मरने के बाद बहुत पछताना और शरमाना पड़ेगा और उस वक़्त का अफ़सोस कुछ फ़ायदा नहीं देवेगा।

नीचे दर्जे के मालिकों और औतारों और देवताओं की पूजा का बयान और उसका नतीजा

९७—जो लोग कि औरों को यानी देवताओं और औतारों को मालिक समझ कर मान रहे हैं, उनका पूरा और सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है। और जो परमेश्वर या ब्रह्म या ख़ुदा को कुल मालिक समझते हैं, वे भी सच्चे

१—बारे में

कुल मालिक राधास्वामी दयाल से बेखबर हैं और इस वास्ते वे भी माया के घेर से बाहर नहीं जा सकते और इस सबब से जन्म मरण के चक्कर से नहीं बच सकते। क्योंकि ब्रह्म और ईश्वर और परमेश्वर या परमात्मा सब सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की एक २ कला[1] हैं और माया के संग मिले हुए हैं, यानी उससे मिलकर रचना की कार्रवाई कर रहे हैं। उनके लोक में जो कोई उनकी भक्ति करके पहुँचेगा, वह बहुत काल के लिए सुखी हो जावेगा पर जन्म मरण से बचाव नहीं होगा।

९८–और जितने औतार हुए हैं, वे सब ब्रह्म या विष्णु के हुए हैं और ब्रह्मा विष्णु और महादेव यानी तीनों गुण बड़े देवता हैं और बाक़ी देवता इनसे उत्पन्न हुए। इस वास्ते जो कोई इनकी भक्ति करेगा वह इनके लोक में पहुँच सकता है, मगर इनका लोक अमर[2] नहीं है और न वहाँ की रचना अमर है। इस सबब से जन्म मरण से छुटकारा नहीं हो सकता है। और बनिस्बत ब्रह्म और पारब्रह्म और शक्ति[3] के देश या लोक के देवताओं और औतारों के लोकों में उम्र भी थोड़ी है यानी वहाँ जन्म मरण जल्द होता है और सुख भी ऊपर के लोकों की निस्बत कम है।

९९–इस वास्ते मुनासिब है कि जब कोई परमार्थी काम करना चाहे, तब अच्छी तरह से निर्णय[4] करके अपने सच्चे मालिक की पहिचान करे और दूसरों की पक्ष छोड़

१—अंश। २—हमेशा रहने वाला। ३—माया। ४—जाँच।

कर सच्चे मालिक की सेवा और भक्ति इख़्तियार करे। तब पूरा फ़ायदा होगा क्योंकि भक्ति भाव सब जगह बराबर और एकसाँ बरतना पड़ेगा, पर फल यानी फ़ायदे में हर एक के फ़र्क़ होगा।

१००—और जो कोई असली रूप और धाम[1] औतारों और देवताओं से बेख़बर हैं और सिर्फ़ उनकी नक़ल यानी मूर्त्ति की पूजा और भक्ति करते हैं और असल का खोज नहीं करते, वे असल को नहीं पा सकते। इस वास्ते उनको उस क़दर सुख भी नहीं मिल सकता जिस क़दर कि असल के पूजने वालों को मिलता है। इनकी सीढ़ी[2] बहुत नीची है।

वर्णन हाल बाचक ज्ञानी और सूफ़ी का और यह कि उनका पूरा उद्धार नहीं होता

१०१—और जो लोग कि इस वक़्त में ज्ञानी और विद्वान और वेदान्ती या सूफ़ी[3] कहलाते हैं, वे भी कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से बेख़बर हैं। इनको पुराने जोगेश्वर, वेदान्ती और ज्ञानी की बानी और बचन से ब्रह्मपद तक का हाल मालूम हुआ, पर वह भी तफ़सीलवार[4] नहीं, सिर्फ़ इस क़दर कि ब्रह्म सब जगह व्यापक[5] है और वही सत् चित् आनन्द स्वरूप है और माया से न्यारा है, और कुल रचना ब्रह्म या आत्मा स्वरूप है, फिर कहीं जाना आना नहीं है। इस क़दर समझ लेकर इस बात का निश्चय कर लेना कि मैं ब्रह्म हूँ और सब ब्रह्म हैं, वास्ते उद्धार के वक़्त मौत यानी जुदाई[6] शरीर के, काफ़ी समझते

१—लोक। २—दर्जा। ३—मुसलमान भक्तिमार्गी। ४—विस्तारपूर्वक। ५—मौजूद। ६—छूटने।

हैं। और मन को किसी तरकीब से कुछ दिन अभ्यास करके एकाग्र[1] करना और उसके पीछे ऐसा विचार करते रहना कि मैं कोई शै[2] रचना में से नहीं हूँ, तत्त्व नहीं हूँ, गुण नहीं हूँ वग़ैरह वग़ैरह, फिर जो कुछ कि बाद निषेध[3] सब पदार्थों के बाक़ी रहा, वही ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ। यही उनका अभ्यास है और कोई तरकीब सुरत के चलने और चढ़ने की वे नहीं मानते और कहते हैं कि जब ब्रह्म सब जगह मौजूद है, फिर चलना और चढ़ना क्या ज़रूर है? और सुरत जीव को वे ब्रह्म से जुदा[4] या उसकी अंश नहीं मानते, सिर्फ़ ब्रह्म ही मानते हैं।

१०२—और जोगेश्वर ज्ञानी और वेदान्ती जो पुराने वक़्तों में गुज़रे, उन्होंने अष्टाङ्ग[5] योग यानी प्राणायाम का अभ्यास करके आत्मा को पिंड यानी छः चक्र की हद से न्यारा किया और ब्रह्मांड में चढ़ कर और ब्रह्म पद में पहुँच कर फ़रमाया कि ब्रह्म सर्वत्र[6] व्यापक है। उनका यह कहना उस स्थान पर पहुँच कर सही था, क्योंकि वहाँ पिंडी और ब्रह्मांडी माया बहुत नीचे रह गई और वह शुद्ध ब्रह्म का स्थान था कि जहाँ से सिवाय ब्रह्म के और कोई वस्तु यानी माया वग़ैरह और उसकी रचना नज़र नहीं आती। जैसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़कर नीचे देश की रचना नज़र नहीं आती, सिर्फ़ ग़ुबार या बादल छाया हुआ दिखाई देता है या जो कोई समुद्र या बड़े दरिया में गहरा ग़ोता मारे, उसको उस वक़्त सिवाय पानी के दूसरी

१—निश्चल। २—वस्तु, पदार्थ। ३— इनकार। ४—अलहदा। ५—आठ अंग वाला। योग के आठ अंग यम, नियम इत्यादि हैं। ६—सब जगह।

चीज़ नज़र नहीं आती, ऐसे ही जोगेश्वर ज्ञानियों को शुद्ध ब्रह्म पद में पहुँचने पर सिर्फ़ ब्रह्म व्यापक नज़र आया और माया और उसकी रचना जो नीचे थी, वहाँ से नज़र नहीं आई और असल में वहाँ पहुँचने वाले की यह हालत सच्ची होती है।

१०३—लेकिन हाल के ज्ञानी और वेदान्ती और सूफ़ियों की अजब हालत है कि इन्होंने कोई अभ्यास प्राण और आत्मा के चढ़ाने का अपने घट में नहीं किया और न करने की ताक़त और ख़्वाहिश रखते हैं, सिर्फ़ जोगेश्वरों के सिद्धान्त[1] के बचनों को पढ़ कर या सुन कर उनका निश्चय[2] करके अपने को ब्रह्म और ज्ञानी और विद्वान् मान कर चुप हो बैठे और जो बचन कि उन्हीं जोगेश्वर ज्ञानियों ने निस्बत योग अभ्यास और उसके संजमों[3] की कार्रवाई के लिखे हैं, उनको छोड़ दिया यानी मेहनत और अभ्यास वास्ते सफ़ाई और मर्दन[4] करने यानी क़ाबू में लाने मन और इन्द्रियों के न कर सके। और उनके सिद्धान्त के बचनों से ऐसा समझ कर कि जब ब्रह्म सब जगह मौजूद है तो उससे मिलने के लिये अभ्यास करने की क्या ज़रूरत है और उन बचनों की तामील[5] कि जिसमें अभ्यास के वास्ते ताक़ीद[6] है, नहीं करते।

१०४—और जोगेश्वर ज्ञनियों ने साफ़ अपने ग्रंथों में फ़रमाया है कि जब तक मन और बासना का नाश न होगा, तब तक तत्त्व पद[7] का ज्ञान हासिल नहीं हो सकता

१—सबसे ऊँची अवस्था। २—बिश्वास। ३—नियमों का पालन। ४—वश में। ५—अमल। ६—हिदायत। ७—सार पद।

है और यह कि जब तक किसी में यह चार साधन पूरे पूरे न पाये जावें, वह ज्ञान ग्रंथों के पढ़ने का अधिकारी नहीं है और जो कोई बग़ैर चार साधन हासिल किये उन ग्रंथों को पढ़ेगा, तो वह पढ़ना उसके हक़ में ज़हर क़ातिल[१] होगा यानी आत्मघाती हो जावेगा। और वह चार साधन यह हैं (१) वैराग्य (२) विवेक (३) षट् सम्पत्ति (१—सम यानी अंतःकरण का रोकना, २—दम यानी बाहर इंद्रियों का रोकना, ३—उपरति यानी संसार के दुख सुख और ख़्वाहिशों से उपराम यानी न्यारे रहना, ४—तितिक्षा यानी तकलीफ़ की बरदाश्त करना, ५—श्रद्धा या परमार्थ की सच्ची क़दर और चाह और गुरु और महात्माओं और उनके बचनों में भाव और प्यार, ६—समाधानता यानी होशियारी और पूरी समझ के साथ गुरु और महात्माओं के बचन को सुनना और चित में धर के उनके मुआफ़िक़ बरताव करना) और (४) मुमुक्षता यानी सच्ची और तेज़ चाह वास्ते हासिल करने मुक्ति यानी अपने जीव के कल्याण के।

१०५—अब मालूम होवे कि इन चारों साधन का हासिल होना और मन और बासना का नाश होना, बग़ैर योग अभ्यास की मदद से किसी क़दर पिंड से न्यारे होने के यानी बग़ैर छः चक्र के बेधने[२] के, किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। इसी सबब से आज कल के ज्ञानी बाचक और विद्यावान् कहलाते हैं यानी बातें तो पूरे जोगेश्वरों की

१—ज़हर क़ातिल—विनाशकारी। २—पार करने।

सी बनाते हैं और उनके मन और इन्द्रियों की हालत और उनका व्यवहार और बरताव संसारी और अज्ञान[1] लोगों के मुआफ़िक़ है। जो ब्रह्म आनन्द या आत्म आनन्द उनको प्राप्त हुआ होता तो उस आनन्द में मगन[2] और बेपरवाह रहते और मेलों और तमाशों में और देशों और मकानों की सैर के वास्ते देश विदेश मारे मारे न फिरते और रेल ख़र्च और भंडारों के लिये इससे उससे माँग कर रुपये न जोड़ते। बल्कि जो सच्ची चाह परमार्थ की और अपने जीव के कल्याण का दर्द[3] उनके दिल में होता, तो किसी पूरे गुरू या महात्मा को तलाश करके उसके सन्मुख दीनता और आधीनता के साथ रह कर कोई दिन सुरत और मन की घट में चढ़ाई का अभ्यास करते कि जिससे चारों साधन पूरे पूरे उनमें आ जाते और मन और बासना का किसी क़दर नाश हो जाता और तब ज्ञान के बचन सुनने और समझने के अधिकारी बन जाते।

१०६—लेकिन अफ़सोस की बात है कि इन बाचक ज्ञानियों को अपने मन और इन्द्रियों के हाल की भी ख़बर नहीं कि कैसे चक्रों[4] में उनको डाल कर घुमा रहे हैं। और जो कोई उनको चितावनी का बचन सुनावे तो उससे लड़ने को तैयार होते हैं और जो संतों का भेद और जुगत मन और सुरत के चढ़ाने की सुनाना चाहे, तो उससे वादविवाद[5] करते हैं और अपने जीव के हित के बचनों का निरादर करके मुतलक़[6] नहीं सुनते। यह लोग आप भी

१—मूर्ख। २—लीन। ३—तीव्र इच्छा। ४—फंदों। ५—बहस। ६—क़तई।

ठगाये गये और जो कोई उनके बचन सुनेगा और मानेगा वह भी धोखा खावेगा और अपने जीव के कल्याण में आप ख़लल[१] डालेगा या आत्मघाती[२] हो जावेगा।

१०७—ग़ौर करने से मालूम हो सकता है कि चैतन्य में बसबब हायल होने[३] माया के बहुत दर्जे हो गये हैं, यानी ऊँचे से ऊँचे के दर्जे का चैतन्य महा निर्मल और लतीफ़[४] है और जहाँ से कि माया का ज़हूर[५] हुआ है, उससे नीचे की तरफ़ दर्जे बदर्जे माया की कसाफ़त[६] से चैतन्य भी मलीन हो रहा है। और इस लोक का चैतन्य निहायत कसीफ़ यानी मलीन है कि अपनी ताक़त से कोई कार्रवाई रचना की नहीं कर सकता है और सूरज मंडल के विशेष चैतन्य का आधीन[७] है। इसी तरह सूरज मंडल का चैतन्य अपने से ऊँचे के सूरज मंडल के चैतन्य का अधीन है यानी माया की हद में समान[८] और विशेष चैतन्य का हिसाब नीचे से ऊपर तक चला गया है और माया के घेर के पार महा निर्मल चैतन्य देश है। बग़ैर वहाँ पहुँचे किसी का सच्चा और पूरा उद्धार नहीं हो सकता है। फिर बाचक ज्ञानियों ने जो चैतन्य को व्यापक मान कर ऊपर की तरफ़ चलना चढ़ना नहीं माना, तो किस क़दर ग़लती करी और अपने जीव के उद्धार में किस क़दर धोखा खाया?

क्योंकि इस देश का चैतन्य मलीन माया के संग से आप मलीन हो रहा है और जन्म मरण यानी रचना के

१—विघ्न। २—अपना नाश करने वाला। ३—परदा डालने। ४—सूक्ष्म। ५—प्रकाश। ६—मैल। ७—आश्रित। ८—सामान्य, साधारण।

भाव[1] और अभाव[2] में पड़ा हुआ है, फिर यहाँ रह कर यानी पिंड में बैठकर जहाँ से कि दुनियाँ की कार्रवाई मन और इन्द्रियों के वसीले से हो रही है, किसी का छुटकारा जन्म मरण और देह और दुनियाँ के दुख सुख से नहीं हो सकता है और यही सबब है कि बाचक ज्ञानियों की हालत नहीं बदलती यानी उनके मन और इन्द्रियों का बरताव मुआफ़िक़ संसारी और अज्ञानी जीवों के रहता है।

१०८—जोगेश्वर ज्ञानियों ने ब्रह्म में तीन दर्जे क़ायम किये यानी माया सबल[3] ब्रह्म जो कि माया से मिल कर रचना कर रहा है और साक्षी ब्रह्म जो कि उसको मदद दे रहा है और शुद्ध ब्रह्म जहाँ कि माया निहायत सूक्ष्म और बीज रूप है और वह पद[4] रचना की कार्रवाई से किसी क़दर न्यारा है यानी गुप्त मदद दे रहा है। अब जो मुआफ़िक़ समझ बाचक ज्ञानियों के ब्रह्म के सर्वत्र व्यापक होने में कोई भेद नहीं था तो जोगेश्वर ज्ञानियों ने यह दर्जे क्यों मुक़र्रर किये और माया सबल ब्रह्म और साक्षी ब्रह्म के मंडल में क्यों नहीं ठहरे और योग अभ्यास करके पहिले पिंड से न्यारे होकर और फिर ब्रह्मांड में चढ़ कर शुद्ध ब्रह्म पद में पहुँच कर क्यों विश्राम किया ?

१०९—इससे साफ़ ज़ाहिर है कि बाचक ज्ञानी निरे[5] विद्यावान् हैं यानी परमार्थी किताबें सिर्फ़ मुतअल्लिक़ ज्ञान के पढ़ कर अपने आप को पूरा समझते हैं और ब्रह्म रूप मानते हैं और अमल यानी अभ्यास कुछ नहीं किया

१—उत्पत्ति। २—नाश। ३—शबल- माया से मिला हुआ। ४—शुद्ध ब्रह्म का पद। ५—कोरे।

या करते हैं। विद्या यानी इल्म बग़ैर अमल यानी अभ्यास के ख़ाली[1] है। इस वास्ते यह लोग बेअमल यानी अभ्यास से ख़ाली रहकर अहंकारी और मानी हो गये और अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारी यानी घट में चलने और चढ़ने को फ़ज़ूल समझ कर संसारी और अज्ञानी जीवों के गिरोह[2] में शुमार किये गये बल्कि उनसे भी कम, क्योंकि उन लोगों के चित्त में थोड़ी बहुत दीनता है और जो कोई महात्मा उनको मिल जावें, तो उनके बचन को मान कर उनकी दया के भागी[3] हो जावें और अपना थोड़ा बहुत उद्धार का रास्ता जारी कर लेवें। और यह बाचक ज्ञानी इस क़दर अहंकारी और बेपरवाह हो गये कि अपने बराबर किसी को ख़्याल नहीं करते और किसी के बचन को, जो इनके हित के वास्ते कहे, नहीं मानते हैं।

११०—और मालूम होवे कि बाचक ज्ञानी क़रीब क़रीब नास्तिक[4] हैं, यानी जब उन्होंने अपने आपको ब्रह्म माना तो उनको किसी की सेवा या भक्ति करने की ज़रूरत नहीं रही। तो वह असली ब्रह्म, जो कि तमाम तीन लोक की रचना का कर्त्ता धर्त्ता[5] है, ग़ायब कर दिया गया और उसकी भक्ति मौक़ूफ़[6] हो गई। अब ख़्याल करो कि ऐसे ज्ञान का मत नास्तिक मत हुआ या क्या? क्योंकि यह बाचक ज्ञानी जीवों से अपनी भक्ति और सेवा तो कराते हैं और आप किसी की भक्ति या सेवा नहीं करते, बल्कि भक्ति से बिरोध रखते हैं और कहते हैं कि जो कोई भक्ति करेगा,

१—निष्प्रयोजन। २—झुंड। ३—अधिकारी। ४—ईश्वर को न मानने वाले। ५—धारण करने वाला। ६—ख़त्म।

उसका जन्म मरण दूर न होगा। और अपना जन्म मरण नहीं मानते हैं यानी ऐसा ख़्याल करते हैं कि वे देह छोड़ने पर ज़रूर मुक्त हो जावेंगे। और हाल यह है कि अपनी ज़िन्दगी भर में मुक्ति की कुछ भी हालत या कैफ़ियत नहीं पैदा करी, तब मरने पर किस तरह मुक्ति मिल सकती है ?

१११—जो लोग मदरसों में विद्या पढ़ कर दर्जा हासिल करते हैं, उनमें से बाज़े इल्म फ़िलॉसफ़ी और हिकमत की किताबें पढ़कर और कुल मालिक की मौजूदगी में शक लाकर नास्तिक मत की तरफ़ रुजू करते[1] हैं। उनका हाल भी थोड़ा बहुत बाचक ज्ञानियों के मुआफ़िक़ समझना चाहिये यानी बाज़े उनमें से चैतन्य को सब जगह व्यापक मान कर उसकी और माया की मिलौनी से रचना का ज़हूर कहते हैं, पर उस चैतन्य को समझवार[2] और शक्तिमान् नहीं मानते।

और कोई कोई चैतन्य को न्यारा नहीं मानते। उसको माया के मसाले का खुलासा ख़्याल करते हैं और कहते हैं कि जब जीव की मौत होती है, उस वक़्त माया का मसाला यानी तत्त्व और गुण वग़ैरह सब आपस में जुदा होकर अपने अपने मंडल में जा समाते हैं और वह चैतन्य क़ुव्वत[3] जो इनकी मजमूई[4] शक्ल से पैदा हुई थी, गुप्त यानी ग़ायब हो जाती है और फिर मनुष्य के आपे का कुछ निशान बाक़ी नहीं रहता है। इस वास्ते जो कुछ काम किया जाता है वह इसी ज़िन्दगी के आराम

१—रुजू करते—आकर्षित होते। २—ज्ञानयुक्त। ३—शक्ति। ४—मिलौनी।

के वास्ते है और दूसरों को भी आराम देना चाहिये। इससे ज़्यादा वे लोग कुछ नहीं मानते और मालिक की भक्ति करने वालों को नादान[1] समझते हैं।

११२—यह सब मत काल पुरुष ने वास्ते भरमाने और सत्त पद से बेख़बर रखने जीवों के, विद्या और बुद्धि की मदद से, प्रगट कराये और जो जीव कि उस क़िस्म की तबीयत रखते हैं, वे उनमें शामिल होकर सच्चे मालिक से मुनकिर[2] हो जाते हैं और कुल मज़हबों पर, जो किसी को मालिक मानते हैं, तान करते हैं और कहते हैं कि उनके आचार्यों ने अपनी नामवरी और फ़ायदे की नज़र से उन मतों को मूर्ख जीवों में जारी किया और उनको ख़ौफ़ और उम्मेद दिखाकर अपने बचनों में ख़ूब मज़बूत बाँधा। असल में कोई मालिक नहीं है, और बाद मौत के कर्म और उसका फल बाक़ी नहीं रहता है और न कहीं स्वर्ग और नरक वग़ैरह हैं।

११३—इन लोगों ने सिर्फ़ माया के पदार्थों के भोग बिलास को अपना आनन्द और सरूर[3] समझा है और जीवों को अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ मदद करना उपकार समझा है। इनकी समझ पर अफ़सोस आता है कि कुल कार्रवाई इस रचना की अपनी आँख से देखते हैं कि वह किसी न किसी रूह की ताक़त से जारी है और वह रूह किसी न किसी क़िस्म की देह यानी जिस्म में बैठ कर कार्रवाई करती है और मिस्ल सूरज और चाँद वग़ैरह

१—मूर्ख। २—नास्तिक। ३—आनन्द।

बेशुमार अरसे से उनका ज़हूर और क़याम चला आता है और बेशुमार अरसे तक जारी रहेगा। इसी तरह इस मंडल के ऊपर और मंडल मालूम होते हैं और क़ानून क़ुदरत को निज़ाम[1] फ़लकी[2] और ज़मीनी यानी ऊँचे और नीचे देश की रचना के बन्दोबस्त में देख कर साबित होता है कि उनका बन्दोबस्त मुक़र्रर किये हुए क़ायदों के मुआफ़िक़ जारी है और बेशुमार अरसे से ऐसा ही चला आया है और जारी रहेगा। और इस दुनियाँ के बन्दोबस्त में भी कोई न कोई अफ़सर और कारकुन की मार्फ़त कार्रवाई जारी होती है। इसी तरह घर का बन्दोबस्त भी किसी घर के बड़े की मार्फ़त जारी होता है। और जोकि इस दुनियाँ की कार्रवाई ऊपर की रचना की छाया यानी अक्स और नक़्ल समझी जाती है, इस सबब से मुमकिन नहीं है कि ऊँचे देश की रचना का बन्दोबस्त और इसी तरह कुल रचना का बन्दोबस्त बग़ैर किसी अफ़सर या मालिक के जारी होवे। अलबत्ता एक के ऊपर एक अफ़सर या मालिक मुक़र्रर है और सब के परे[3] औरसब के ऊपर कुल मालिक का देश और तख़्त है। वहाँ से आदि में कार्रवाई रचना की शुरू हुई और सब बंदोबस्त और क़ायदे वहीं से मुक़र्रर होते चले आये। और जोकि कुल रचना के हर एक जिस्म और चीज़ के बनाने में इरादा और मतलब और क़ुदरत और कारीगरी पाई जाती है [जो समर्थ[4] कर्त्ता की मौजूदगी के गवाह हैं],

१—इंतिज़ाम। २—आसमानी। ३—आगे। ४—शक्तिमान्।

फिर जो कोई रचना को आप से आप बग़ैर किसी कर्त्ता के मानते हैं, वह सरीह[१] ग़लती में पड़े हुए हैं, पर अपनी मन हठ से इस बात के क़ायल[२] नहीं होना चाहते। सो इसका फल उनको वक्त सख़्त तकलीफ़ के इस ज़िन्दगी में या वक्त छोड़ने इस देह के मालूम पड़ेगा।

११४—बहुत से मुआमले तसदीक़[३] किये हुए ऐसे हैं कि जहाँ एक शख़्स ने पैदा होकर अपने पिछले जन्म का हाल बयान किया और जो उसके कलाम[४] की तसदीक़ उसके पिछले जन्म की सकूनत[५] से की गई तो सब बातें दुरुस्त निकलीं। फिर जो यह लोग रूह सुरत का मरते वक्त अभाव[६] मानते हैं, निहायत ग़लती करते हैं। ज़्यादा इस मुआमले को यहाँ तूल[७] करना मुनासिब नहीं। जिस क़दर लिखा गया है, उसी क़दर समझवार सतसंगी खोजी के वास्ते काफ़ी है और जो लोग वादविवाद करें, वह किसी दलील से क़ायल नहीं होवेंगे। उनसे बातचीत करना फ़ज़ूल है।

समाजों की परमार्थी कार्रवाई

११५—जो समाज जहाँ तहाँ आज कल जारी हैं, उनके आचार्य विद्यावान् और बुद्धिवान् हुए। उन्होंने हालत इस वक्त के जीवों की देखकर कि खान पान और आज़ादगी की ख़्वाहिश से अपने मत को छोड़ कर ग़ैर मत में शामिल होते चले जाते हैं या इरादा शामिल होने का रखते हैं, इस सबब से मुनासिब और मसलहत वक्त

१—स्पष्ट रूप से। २—क़ायल होना—स्वीकार करना। ३—साबित। ४—बात। ५—रहने की जगह। ६—नाश। ७—लंबा।

समझ कर क़रीब क़रीब वेदांत शास्त्र के क़ायदे और उसूल के मुआफ़िक़ नया मत खड़ा किया कि उसमें हर तरह की आज़ादगी खान पान वग़ैरह और शादी व्यवहार की, मिस्ल ईसाई मत वालों के, जीवों को दे दी और जो ज़ाहिरी रसूम[1] कि पुराने वक़्तों से जारी हैं और उनको लोग अपने मज़हब का एक अंग समझते हैं और उनके जारी रहने में इस ज़माने में सिवाय हर्ज और तकलीफ़ के कोई ख़ास दुनियवी या परमार्थी फ़ायदा नज़र नहीं आता, उनकी क़ैद छुड़ा दी और एक मालिक का, जिसको मुताबिक़ वेदांत शास्त्र के ब्रह्म कहते हैं, इष्ट बँधवा कर उसकी स्तुति और महिमा और शुकराने के भजन या बानी का पढ़ना या गाना जारी किया और नक़्ल यानी मूर्त्ति वग़ैरह बना कर पूजा करने को मना और निषेध किया और तीर्थ, व्रत और औतार और देवताओं की पूजा (मूर्त्तियाँ बनाकर) जो कसरत[2] से जारी थी, मौक़ूफ़[3] कर दी और जो कोई ज़्यादा शौक़ वाले मालूम हुए, उनको वास्ते प्राणायाम यानी अष्टाङ्ग योग के अभ्यास करने की हिदायत की। लेकिन जोकि यह अभ्यास निहायत कठिन और उसके संजम भी बहुत कठिन हैं, इसका सच्चा अभ्यासी उनके बेड़े[4] में ज़ाहिरा कोई नज़र नहीं आता। और कोई कोई ब्रह्म को आकाशवत् व्यापक मान कर उसका ध्यान आँख बंद करके या खुली आँखों से, बग़ैर मुक़र्रर करने किसी ख़ास मुक़ाम के, अंतर या बाहर में करते हैं। इस

१—रस्में। २—अधिकता। ३—बंद। ४—समाज।

अभ्यास से थोड़ी सफ़ाई होती है। और जो कोई प्रेम सहित बानी का पाठ करते हैं या भजन गाते हैं, तो वह भी उस वक़्त किसी क़दर अपने मन में गद्गद[1] होकर प्रेम की हालत में थोड़ी देर के वास्ते भर जाते हैं, मगर वह हालत ज़्यादा ठहराऊ नहीं होती और न उसकी तरक़्क़ी सिर्फ़ इसी क़दर कार्रवाई से मुमकिन है।

इन समाजों में सिर्फ़ इसी क़दर साधन[2] वास्ते प्राप्ति मुक्ति के जारी हैं।

११६-यह सब कुल और सच्चे मालिक के भेद और अंतर में मन और सुरत के चढ़ाने के अभ्यास से बिलकुल बेख़बर हैं और इस सबब से उन जीवों का, जो इन समाजों में शामिल हैं, सच्चा उद्धार बल्कि किसी ऊँचे दर्जे का भी उद्धार या मुक्ति मुमकिन नहीं। बहुत से लोग तो इन समाजों में सिर्फ़ नामवरी और दुनियाँ की कार्रवाई या आज़ादी के हासिल करने के लिये शामिल होते हैं और असल में परमार्थ की चाह उनके दिल में बिलकुल नहीं मालूम होती है।

११७-एक नुक़्स[3] इन समाजों में और भी है कि वे गुरू की ज़रूरत नहीं समझते और न पूरे गुरु का खोज करते हैं। सबब इसका यह है कि इनके मत में भेद और अभ्यास नहीं है और इसी सबब से इनको ज़रूरत पूरे गुरू की मदद की नहीं होती, क्योंकि इनके मत में सिर्फ़ किताबों का पढ़ना और पढ़ाना या भजन वग़ैरह का

१—प्रसन्न। २—अभ्यास। ३—कसर।

गाना जारी है और इनकी किताबों में भेद रास्ता या तरकीब अभ्यास अंदरूनी[1] का कोई ज़िक्र नहीं है कि जिसके वास्ते ज़रूरत दरियाफ़्त की भेदी और अभ्यासी से होवे, बल्कि उनमें तारीख़ी[2] हाल या महिमा और सिफ़त मालिक को या मसले[3] इल्मी और अक़्ली या हाल तत्त्वों और गुणों का, जो स्थूल रचना की कार्रवाई कर रहे हैं, दर्ज है। इस सबब से जिस किसी ने थोड़ी बहुत रस्मी विद्या हासिल की है वह भी उन किताबों को पढ़ कर उनका मतलब अपनी समझ के मुआफ़िक़ समझ सकता है। यह लोग भेदी और अभ्यासी गुरु की क़दर नहीं जानते हैं, क्योंकि इनको अपने जीव के सच्चे उद्धार और अपने मालिक से मिलने की ख़्वाहिश बिलकुल नहीं है।

११८—इसी तरह कर्मकांड के शास्त्र भी सिर्फ़ बाहरी रस्मों और उनकी कार्रवाई का ज़िक्र करते हैं और इसी सबब से वहाँ भी पूरे गुरु की ज़रूरत नहीं है, सिर्फ़ विद्यावान् गुरू जो होम और यज्ञ वग़ैरह और जन्म मरण और दूसरे समय के कर्म किताबों को पढ़ कर कराते हैं और जिनको वे आचार्य्य कहते हैं, काफ़ी समझे जाते हैं। और जो लोग आप थोड़ी बहुत संस्कृत ज़बान से वाक़फ़ियत[4] रखते हैं, वे आप सब कार्रवाई किताबों को देखकर कर सकते हैं। यह लोग भी यानी कर्मकांडी पूरे गुरू की क़दर नहीं जानते और न इनके मन में खोज सच्चे परमार्थ का है, सिर्फ़ कर्म करने से मुक्ति हासिल

१—अंतरी। २—ऐतिहासिक। ३—समस्याएँ। ४—जानकारी।

होने का यक़ीन करते हैं। मगर यह बात सही नहीं है, क्योंकि जब तक उपासना करके सच्चा ज्ञान हासिल न होगा, मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। और संतों के बचन के मुआफ़िक़ यह मुक्ति भी ना-तमाम[1] है यानी पूरा और सच्चा उद्धार सच्चे ज्ञानियों का भी, जिनको योग अभ्यास करके ज्ञान प्राप्त हुआ है, नहीं होता है, जब तक कि संतमत के मुआफ़िक़ अभ्यास करके पारब्रह्म पद के पार[2] संत देश में न जावें। फिर कर्मकांडी और बाहरमुख उपासना मूर्त्ति वग़ैरह की करने वालों को सच्ची मुक्ति किस तरह हासिल हो सकती है?

११६—ऊपर के लिखे हुए से ज़ाहिर है कि बाचक ज्ञानी और समाज वाले और कर्मकांडी घट के भेद से बिलकुल बेख़बर हैं। और हरचंद[3] उनके मत में शब्द की महिमा बहुत की है और साफ़ लिखा है कि आदि में ओम् शब्द प्रगट हुआ और इसी शब्द से कुल रचना पैदा हुई और तीन लोक की रचना की ताक़त और मसाले का भंडार भी यही शब्द है, पर यह लोग शब्द का खोज नहीं करते और न रचना का भेद दरियाफ़्त करते हैं कि कैसे ओम् शब्द से तीन लोक की रचना हुई। जो यह ख़्वाहिश इनके दिल में होती तो ज़रूर भेदी और अभ्यासी गुरू की ज़रूरत इनको पड़ती।

१२०—ज़रा ग़ौर करने से मालूम होगा और वेद के उपनिषदों में भी लिखा है कि जब तक अभ्यासी ओम्

१—अपूर्ण। २—आगे। ३—गोकि।

शब्द यानी शब्द ब्रह्म को पहिले प्राप्त होकर उसके पार न जावेगा, तब तक वेद मत के मुआफ़िक़ उद्धार न होगा यानी अशब्द[1] ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि ओम् शब्द को ही महत्तत्त्व[2] कहते हैं और वही तीन लोक की रचना के मसाले का भंडार है। फिर जब तक उसके पार न जावेगा, तीन लोक की रचना के घेर से न्यारा नहीं होगा। यह भेद जोगेश्वर ज्ञानी जानते थे और वे योग अभ्यास करके ओम् पद के पार पहुँचे, पर आजकल के ज्ञानी इस रास्ते और भेद से बिलकुल बेख़बर हैं और उनको ख़्वाहिश उसके मालूम करने और योग अभ्यास करने की नहीं है, सिर्फ़ अपनी विद्या और बुद्धि की समझ के मुआफ़िक़ अपनी बिदेह[3] मुक्ति का यक़ीन करते हैं यानी बाद मरने के मुक्ति का हासिल होना मानते हैं। और यह भारी ग़लती और भूल है और सच्चे जोगेश्वर ज्ञानी और उपनिषदों के कलाम[4] के बरख़िलाफ़ है।

१२१–रस्मी विद्या तो विद्यावान् गुरू से हासिल हो सकती है। सो विद्यावान् गुरू को यह सब मानते हैं, पर ब्रह्मज्ञान बग़ैर ब्रह्मनेष्ठी[5] गुरू के हासिल नहीं हो सकता है। सच्चे ज्ञानियों ने तीन दर्जे ब्रह्मज्ञानियों के मुक़र्रर किये हैं, ब्रह्मश्रोत्री, ब्रह्मनेष्ठी, ब्रह्मसंतुष्ट। ब्रह्मश्रोत्री विद्यावान् ज्ञानी को कहते हैं। यह अव्वल सीढ़ी है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी से जीव का कारज नहीं हो सकता, जब तक कि वह पढ़े और सुने के मुआफ़िक़ नेष्ठा यानी अभ्यास न करे।

१—शब्द ब्रह्म के परे का। २—महत् (सांख्य दर्शन का)। ३—मौत के बाद। ४—उपदेश। ५—ब्रह्म में नेष्ठा वाला या अभ्यास करने वाला।

ब्रह्मनेष्ठी अभ्यासी को कहते हैं कि वह अभ्यास करके ब्रह्म पद में पहुँचना चाहता है और ब्रह्मसंतुष्ट उसको कहते हैं कि जो ब्रह्म पद को प्राप्त होकर शान्त स्वरूप हो गया।

१२२—अब ख़्याल करो कि जितने ज्ञानी आजकल नज़र आते हैं, वे सब विद्यावान् हैं यानी विद्या पढ़कर उन्होंने ब्रह्म का निश्चय[1] किया है। यह निश्चय इल्मी और अक़्ली है। जीव का कल्याण इससे नहीं हो सकता है जब तक कि उस विद्या के मुआफ़िक़ अमल यानी अभ्यास न किया जावेगा। और वह अभ्यास, अंतरमुख उपासना ब्रह्म पद की है यानी प्रेम और भक्ति के साथ जो अभ्यास कि संतों ने इस वक़्त में जारी फ़रमाया है, उसकी कमाई करके पिंड देश से न्यारे होकर ब्रह्मांड में चढ़कर पहुँचना, क्योंकि प्राणायाम का अभ्यास जो पिछले वक़्त में जारी था, जीवों से बिलकुल नहीं बन सकता है। उसके संजम वग़ैरह निहायत कठिन हैं।

इन मतों के अभ्यास की कमाई बग़ैर मदद अभ्यासी यानी नेष्ठावान् या संतुष्ट[2] गुरू के किसी तरह मुमकिन नहीं है। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि यह बाचक ज्ञानी सिर्फ़ विद्या में अटके रह गये और अंतरमुख अभ्यास इनसे नहीं बना। इस वास्ते इन्होंने अभ्यासी गुरू का खोज नहीं किया और जो कोई ऐसा गुरू मिले तो उसके बचन को भी नहीं मानते और नहीं सुनते हैं। यह लोग साफ़ ख़िलाफ़ बचन सच्चे जोगेश्वर, वेदांती या ज्ञानी और वेद

१—विश्वास। २—ब्रह्मसंतुष्ट।

मत के कार्रवाई कर रहे हैं और फिर अपनी ग़लती और भूल के मन हठ और अहंकार से क़ायल नहीं होते।

१२३—यही हाल कुल मतों के लोगों का है कि अपने आचार्य्यों के बचन के बरख़िलाफ़ कार्रवाई कर रहे हैं यानी नीचे के दर्जे की बातों में अटक रहे हैं या अपने मन और बुद्धि के वसीले से बाहरमुख पूजा ईजाद[१] करके जीवों को उसमें भरमा रहे हैं और अपने रोज़गार के ख़ातिर[२] सच्ची बात को छिपाते चले आये हैं, यहाँ तक कि अब वे उन सच्ची बातों से आप भी बेख़बर रह गये और जो कोई उन बातों को जनावे, उससे बिरोध करते हैं। और बावजूदे[३] कि आप अपने आचार्य्यों के बचन से ग़ाफ़िल और बेख़बर हैं, उलटा उस समझाने वाले को निन्दक[४] क़रार देकर आम जीवों को उलटे बचन सुना कर सच्चे रास्ते पर चलने से बाज़[५] रखते हैं, यानी इन्होंने अपना अकाज किया और औरों का भी अकाज करते हैं।

१२४—सच्चे परमार्थी को ऐसे लोगों और बाहरमुखी पूजा वालों के संग से क़तई[६] परहेज़ करना चाहिये और उनके बचनों को सुनना नहीं चाहिये, बल्कि नेष्ठावान् या अभ्यासी गुरु से (और जो मिल जावे तो संतुष्ट गुरु से) मिल कर उनसे अभ्यास की जुगत दरियाफ़्त करे और जिस क़दर बन सके अभ्यास करके अपने अंतर में आनंद हासिल करना और जीते जी अपनी मुक्ति होती हुई देखना चाहिये।

१—नई जारी। २—लिए। ३—गो। ४—बुराई करने वाला।
५—अलहदा। ६—बिलकुल।

संत सतगुरु और साधगुरू की पहिचान

१२५—राधास्वामी मत में संत सतगुरु या साधगुरू की ख़ास पहिचान यह रक्खी है—

(१) यह कि सुरत शब्द मार्ग के भेदी और अभ्यासी होवें और घट का भेद और जुगत अभ्यास की मय नाम स्थानों और शब्दों के समझाते होवें और सिवाय इसके दूसरे क़िस्म के अभ्यास की हिदायत[1] न करते होवें।

(२) यह कि दर्दी खोजी को फ़ौरन् बचन सुन कर और अभ्यासियों की हालत देख कर दिल में शान्ति और आनंद पैदा होगा और जिस क़दर उसके संशय और संदेह दूर होते जावेंगे और प्रश्नों के पूरे जवाब मिलते जावेंगे, उसी क़दर उसकी प्रीति और प्रतीति संत सतगुरु या साधगुरू के चरणों में बढ़ती जावेगी और अंतर में राधास्वामी दयाल की दया के परचे पाकर यक़ीन मज़बूत होता जावेगा और प्रेम दिन दिन बढ़ता जावेगा। इससे बढ़कर यानी बचन और भेद[2] से ज़्यादा कोई पहिचान नहीं है कि जिससे सच्चे परमार्थी के दिल में थोड़ा बहुत यक़ीन पैदा होवे कि यहाँ से मेरा परमार्थी काम बनेगा।

(३) यह कि जो कोई कुछ अरसे तक उनका रात दिन सतसंग करे और उनकी रहनी और गहनी और बोलचाल और व्यवहार और बरताव को देखे तो उसके मन में दिन दिन इस बात का यक़ीन होता जावेगा कि वे

१—उपदेश। २—अंतर का भेद।

ज़रूर पूरे अभ्यासी हैं और रहनी उनकी सतोगुनी है और उसका परमार्थ उनके वसीले[1] से ज़रूर बन जावेगा। सिवाय इसके और जो कोई पहिचान है वह सिवाय सुरत शब्द अभ्यासी के दूसरा नहीं परख सकता है क्योंकि अभ्यासी की हालत को अभ्यासी ही परख और समझ सकता है, दूसरे की ताक़त नहीं है।

१२६—जो कोई पुरानी किताबों के मुआफ़िक़ महात्माओं के लक्षण पढ़ कर किसी महात्मा या अभ्यासी की पहिचान किया चाहें, तो उनको हरगिज़ पहिचान नहीं आवेगी क्योंकि जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार और मन और इन्द्रियों के चक्कर में आप पड़े हैं और मालिक के भेद और उसके मिलने की जुगत से बेख़बर हैं, उनकी क्या ताक़त है कि जो इनके चक्कर से न्यारे[2] बरत रहे हैं या इन क़ुव्वतों पर किसी क़दर सवार हैं यानी उनको अपने क़ाबू में लाये हैं, उनकी हालत की थोड़ी बहुत परख और पहिचान कर सकें? ऐसे लोग हमेशा धोखा खाते हैं और धोखा खावेंगे।

१२७—इस वास्ते सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि पहले सिर्फ़ बचन की पहिचान करे, यानी जिनके दर्शन और बचन और संग से कुल मालिक के चरणों में भय और भाव पैदा होवे और परमार्थ की क़दर और बड़ाई चित्त में समावे और दुनियाँ और उसके सामान दिन दिन ओछे[3] और रूखे और फीके मालूम होते जावें और जिन

१—जरिये। २—अलहदा। ३—तुच्छ।

चीज़ों और बातों में कि संसारी जीव अटके और फँसे हुए हैं, उनसे उनकी तबीयत आहिस्ता आहिस्ता हटती जावे, तो जानना और समझना चाहिये कि ऐसों के संग और उपदेश से ज़रूर एक दिन संसार और उसके बंधनों से छुटकारा हो जावेगा और परम पद और परम आनंद की प्राप्ति हो जावेगी। इससे ज़्यादा हाल उनके अभ्यास और उनकी गति[1] का, जब तक कि यह आप कोई दिन अभ्यास न करेगा, तब तक नहीं मालूम होगा।

फिर उन्हीं का कोई दिन सतसंग करे और जब उनकी रहनी और बरताव थोड़ा बहुत देख ले तब उनमें अपना गुरु भाव लावे और जिस क़दर बने उनकी आज्ञा अनुसार कार्रवाई परमार्थ की करे और जिस बात में कसर पड़े, उसके दूर होने के वास्ते उनकी और राधास्वामी दयाल की दया माँगता रहे। रफ़्ता रफ़्ता एक दिन उसका कारज सिद्ध हो जावेगा।

सच्चे परमार्थी के थोड़े बहुत लक्षण और स्वभाव यहाँ लिखे जाते हैं

१२८—हर एक परमार्थी को चाहिये कि इन लक्षणों के मुआफ़िक़ अपने मन के हाल और चाल को परखता चले:—

(१) परमार्थी का मन कोमल और चित्त मुलायम होना चाहिये ताकि[2] किसी के साथ सख़्ती न करे और दुखिया का दुख तवज्जह से सुनकर जो बन सके तो अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ उसकी मदद करे, नहीं तो

१—पहुँच। २—जिससे।

उसकी हमदर्दी, गमख़्वारी[1] और दिलदारी[2] करे।

(२) परमार्थ की चाह सच्ची होवे और सच्चे परमार्थ का खोज बराबर जारी रहे और जब उसका पता लग जावे तब वादविवाद और पक्षपात छोड़ कर उसको दिल से क़बूल करके जो अभ्यास कि उसके हासिल करने के वास्ते बताया जावे, उसकी सच्चे मन से कार्रवाई करे।

(३) कुल मालिक की मौजूदगी का पूरा यक़ीन मन में होवे और उसकी भक्ति करने के वास्ते नई नई उमंग मन में उठती रहें।

(४) जो कोई सच्चे कुल मालिक का पता और भेद सुनावे, वह शख़्स प्यारा लगे और दीनता के साथ उसका संग बारम्बार करे और उससे पूरा भेद और जुक्ति लेकर, जिस क़दर जल्दी बने, अभ्यास शुरू करके अपने अंतर में थोड़ा बहुत रस और आनन्द लेवे।

(५) क्षमा और बरदाश्त करना उसकी आदत हो जावे और जहाँ तक मुमकिन होवे, किसी से ग़ुस्सा या तकरार[3] या झगड़ा न करे।

(६) संसारी लोग और माया के पदार्थों से मन में किसी क़दर नफ़रत होवे यानी इनसे मिलने में मन राज़ी और ख़ुश न होवे।

(७) सच्चे परमार्थ की कार्रवाई में संसारी लोगों का ख़ौफ़ और शर्म न करने का इरादा रक्खे और जिस क़दर बने, इसी मुआफ़िक़ बरताव शुरू करे।

१—सहनशीलता। २—उदारता। ३—लड़ाई।

(८) सच्चे मालिक की भक्ति तन मन और धन से शौक़ के साथ करने की चाह बनी रहे और जिस क़दर बन सके, उसकी कार्रवाई जारी करे।

(९) गुरू और मालिक की प्रसन्नता की औरों की प्रसन्नता पर, जहाँ तक मुमकिन होवे, मुख्यता[1] रक्खे।

(१०) मन और इन्द्रियों को शौक़ के साथ, जिस क़दर बने, क़ाबू में लाने का इरादा मज़बूत रक्खे।

(११) जो काम या चाल या रस्म कि उसके परमार्थ की कार्रवाई में विघ्नकारक[2] होवें, उनसे जिस क़दर बने बचाव करे।

(१२) निंदक लोगों के बचन सुन कर विचार के साथ कार्रवाई करे और ग़ौर करके समझे और विचारे कि उनकी निंदा किस क़दर ग़लत और किस क़दर सही है और जो सही है, उसमें क्या नुक़सान है या यह कि परमार्थी फ़ायदा उसमें किस क़दर है। और जो अपनी समझ में कोई बात बख़ूबी न आवे तो प्रेमी सतसंगी से उसका हाल अलहदगी में दरियाफ़्त करके अपना इतमीनान और तसल्ली करे।

(१३) किसी तरह का अहंकार या मान ज़ात पाँत और धन और हुकूमत और गुण वग़ैरह का अपने मन में परमार्थी कार्रवाई और सतसंग में न रक्खे।

(१४) अपनी कसरों[3] और औगुनों का ख़्याल करके आपको निबल और नाचीज़[4] और नाकारा[5] देखता और

१—प्रधानता। २—रुकावट डालने वाले। ३—दोषों। ४—तुच्छ। ५—निकम्मा।

समझता रहे और हर एक से प्यार और दीनता के साथ बरताव करे और उन कसरों के दूर करने की बराबर कोशिश जारी रक्खे।

(१५) जहाँ तक बने ईर्षा और विरोध और क्रोध को अपने मन में न आने देवे और किसी की बुराई भलाई दूसरे से उसकी ग़ीबत[1] में न करे और न दूसरों की बुराई सुनने की आदत रक्खे।

(१६) बेफ़ायदा लोभ और लालच न करे और बग़ैर ज़रूरत के दूसरे से कोई पदार्थ न माँगे और न लेवे।

(१७) अपनी मान बड़ाई के वास्ते कोई काम दिखावे का न करे। परमार्थ में ऐसी करतूत निष्फल[2] समझी जाती है। जो काम या सेवा करे वह गुरु और मालिक की प्रसन्नता के वास्ते निरअहंकार[3] और चित्त में दीनता रख कर करे।

राधास्वामी मत के अभ्यासी को इन संजमों की सम्हाल रखना चाहिये

१२६—जो कोई राधास्वामी मत में शामिल होवे और उसके मुआफ़िक़ अभ्यास शुरू करे, उसको यह संजम वास्ते दुरुस्ती से करने अभ्यास सुरत शब्द मार्ग के दरकार हैं :—

(१) मांस अहार न करे और न कोई नशे की चीज़ पीवे या खावे। हुक्का पीना नशे में दाख़िल नहीं है।

(२) मामूली खाने से आहिस्ता आहिस्ता क़रीब चौथाई हिस्से के कम कर लेवे और बहुत चिकने चुपड़े

१—पीठ पीछे। २—निरर्थक। ३—अहंकार रहित होकर।

और स्वाद के भोजन ज़्यादा न खावे।

(३) सोवने में भी कुछ कमी करे यानी आम तौर पर छः घंटे से ज़्यादा न सोवे।

(४) संसारी लोगों से ज़रूरत के मुआफ़िक़ मेल और बरताव करे। उनसे ज़्यादा मेल न रक्खे और बग़ैर ज़रूरत के किसी संसारी मुआमले में दख़ल न देवे।

(५) संसारी पदार्थ और इन्द्रियों के भोगों की चाह फ़ज़ूल न उठावे और न उनके वास्ते फ़ज़ूल जतन[1] करे, बल्कि जो भोग और पदार्थ मुयस्सर आवें[2] उनमें भी जिस क़दर मुनासिब होवे, एहतियात[3] के साथ बरताव करे।

(६) वक़्त अभ्यास के बेफ़ायदा ख़याल दुनियाँ और उसके पदार्थों और भोगों के न उठावे और जो पुरानी आदत के मुआफ़िक़ ऐसी गुनावन मन में पैदा होवे, तो उसको जिस क़दर जल्दी बने दूर हटावे, नहीं तो अभ्यास में रस नहीं मिलेगा।

(७) सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और गुरू का किसी क़दर ख़ौफ़ दिल में रक्खे और उनकी प्रसन्नता में अपनी बेहतरी[4] समझे और नाराज़ी में नुक़सान परमार्थ और स्वार्थ का। और उनके चरणों में दिन दिन प्रीति प्रतीति बढ़ाता रहे।

(८) जहाँ तक मुमकिन होवे किसी जीव से विरोध और ईर्षा दिल में न रक्खे।

(९) पुण्य कर्म, मुआफ़िक़ दफ़ा ८४ से ८८ तक

१—उपाय। २—मुयस्सर आवें—प्राप्त होवें। ३—होशियारी। ४—भलाई।

के, जिस क़दर बन सके करे और पाप कर्म से जहाँ तक बने बचता रहे।

(१०) राधास्वामी दयाल की दया का हर दम भरोसा मन में रख कर अपना अभ्यास नेम से हर रोज़ दो बार या ज़्यादा करता रहे और पोथियों का भी थोड़ा पाठ किया करे कि उससे अभ्यास और मन और इंद्रियों की दुरुस्ती में मदद मिलेगी।

(११) सतसंग में शामिल होने का हमेशा शौक़ रक्खे और जब मौज से मौक़ा मिले तब चेत कर होशियारी से बचन सुने और उनका मनन[1] करके अपने लायक़ के बचन छाँट कर उनके मुआफ़िक़ कार्रवाई और बरताव शुरू करे।

(१२) अपने मन और इंद्रियों की चाल को निरखता चले, यानी मन की चौकीदारी करे कि नाक़िस[2] और पाप कर्मों और ख़यालों में न जावे और जहाँ तक बने मन और माया के हाथ से धोखा न खावे।

(१३) सच्चे परमार्थी यानी प्रेमी जन से मुहब्बत करे और जब वे मिल जावें तो शौक़ के साथ उनका संग और ख़ातिरदारी और जो मौक़ा होवे तो मेहमानदारी करे।

(१४) अपने वक़्त का ख़याल रक्खे कि जहाँ तक मुमकिन होवे फ़ज़ूल और बेफ़ायदा कामों और बातों में मुफ़्त ख़र्च न होने पावे।

१—विचार। २—खराब।

(१५) जब कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल को सर्व समर्थ और सर्वज्ञ[1] समझा तो जो कुछ कि स्वार्थ और परमार्थ के मुआमले में पेश आवे, उसको उनकी मौज समझना चाहिये और चाहे वह मन के मुआफ़िक़ होवे या नहीं, उस मौज के साथ मुआफ़िक़त करना[2] चाहिये यानी तकलीफ़ को धीरज के साथ बरदाश्त करना चाहिये और तरक़्क़ी यानी सुख में परमार्थ से ग़ाफ़िल होना नहीं चाहिये।

खुलासा कुल बचन का

१३०—जो कि यह बचन बहुत तूल यानी लंबा हो गया है, इस वास्ते मुनासिब है कि इसका खुलासा थोड़ी दफ़ों में लिख दिया जावे ताकि असली मतलब इस बचन का पढ़ने वालों की समझ में जल्द आ जावे और थोड़ा बहुत याद रहे :—

(१) राधास्वामी मत सत्त मत है।

(२) राधास्वामी नाम कुल और सच्चे मालिक का नाम है।

(३) यह नाम किसी ने नहीं धरा[3]। इसकी धुन आप हर एक स्थान पर हो रही है यानी यह ध्वन्यात्मक नाम है और इसको संत और साध जन और प्रेमी अभ्यासी सुनते हैं।

(४) "राधा" नाम आदि धार का है, जो कुल मालिक यानी स्वामी के चरण से निकली और "स्वामी"

१—सब जानने वाला। २—मुआफ़िक़त करना—मेल मिलाना। ३—रक्खा।

नाम शब्द का है, जिसमें से धुन या धार निकली और वही धुन या धार सुरत है। इस वास्ते "राधास्वामी" नाम के अर्थ सुरत शब्द के समझने चाहियें।

(५) जब तक कोई इस नाम को मय[1] इसके भेद के अपने हृदय में नहीं बसावेगा, तब तक उसको अभ्यास में मदद पूरी तौर से नहीं मिलेगी और न धुर मुक़ाम तक का रास्ता निर्विघ्न[2] तै कर सकेगा।

(६) आदि धार जो राधास्वामी दयाल कुल मालिक के चरणों से निकली, वही नूर[3] और जान और शब्द की धार है और उसी ने जगह जगह ठहर कर और मंडल बाँध कर सत्तलोक तक रचना करी और फिर वहाँ से दो धारों ने यानी निरंजन और जोत[4] ने उतर कर ब्रह्मांड की रचना और सहसदलकँवल से तीनों धारों ने (जिनको सतोगुन, रजोगुन और तमोगुन कहते हैं) उतर कर पिंड देश की रचना करी। खुलासा यह है कि कुल रचना शब्द की धार ने करी है और शब्द ही कुल मालिक का प्रथम ज़हूरा यानी प्रकाश है और सब जगह शब्द ही चैतन्य का निशान और ज़हूरा है।

(७) शब्द की धुन या धार कानाम सुरत है और यह दोनों यानी सुरत और शब्द कुल रचना और उसकी कार्रवाई कर रहे हैं।

(८) इस लोक में भी कुल काम शब्द (यानी बोलने वाला) और सुरत (यानी सुनने वाला) कर रहे हैं।

१—साथ। २—बिना विघ्न के। ३—प्रकाश। ४—ज्योति।

(९) जब बच्चा पैदा होता है और उसने शब्द किया यानी रोया तो ज़िन्दा है। और जब तक आदमी बोलता है तो ज़िन्दा है, नहीं तो मुर्दा है।

(१०) सुरत की धार उतर कर दोनों आँखों के मध्य[1] में अंदर की तरफ़ छठे चक्र के स्थान पर इस जिस्म यानी देह में ठहरी है और वहीं से दो धार होकर दोनों आँखों में जाग्रत के वक्त बैठ कर इस लोक में मन और इन्द्रियों के वसीले से कार्रवाई करती है।

(११) सुरत चैतन्य सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की अंश है और मन निरंजन यानी कालपुरुष या ब्रह्म की अंश है और इन्द्रियाँ और देह माया की अंश हैं यानी उसके मसाले से बनी हुई हैं।

(१२) आँखों के स्थान से सुरत की धार को घर की तरफ़ यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में बिरह और प्रेम अंग लेकर उलटाना चाहिये। तब सच्चा और पूरा उद्धार होगा और इसी कार्रवाई का नाम सच्चा परमार्थ है।

(१३) इसी उलटाने को सुरत शब्द का अभ्यास कहते हैं और असली मतलब राधास्वामी मत का यही है कि जीव यानी सुरत को, जो सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों से जुगानजुग[2] से जुदा हो गई है और यहाँ देह और मन और इंद्रियों का संग करके दुख सुख भोग रही है, फिर उलटा कर उसके निज घर में, जो महाप्रेम[3] और

१—बीच। २—अनेक युगों से। ३—अत्यन्त प्रेम।

महाआनन्द का आदि भंडार है और जहाँ काल क्लेश और माया का बीज भी नहीं है, पहुँचाना, ताकि अमर, अजर और महासुखी हो जावे और जन्म मरण और देहियों के दुख सुख के क्लेश से उसका हमेशा को बचाव हो जावे।

(१४) कुल रचना के तीन दर्जे हैं। पहिला निर्मल चैतन्य देश और इसी को संत देश और दयाल देश कहते हैं। यहाँ माया बिलकुल नहीं है और इसी सबब से यह देश अमर और अजर है और महासुख और परम आनन्द का भंडार है। दूसरा निर्मल चैतन्य और शुद्ध माया देश। इसी दर्जे के शुरू में माया का ज़हूर हुआ, लेकिन इस दर्जे में वह निहायत[1] लतीफ़[2] है। इसको ब्रह्मांड कहते हैं। तीसरा निर्मल चैतन्य और मलीन माया देश। यहाँ मलीनता ज़्यादा है और यहाँ की रचना भी इस वास्ते स्थूल है। इस दर्जे को पिंड देश कहते हैं।

(१५) जिस वक्त पुतली आँखों की ज़रा चढ़ जाती है, आदमी फ़ौरन् बेहोश हो जाता है और जब ज़्यादा खिंच जाती है, तब मर जाता है। तो इससे ज़ाहिर है कि देही और मन और इन्द्रियों और संसार के बंधनों से छुटकारा इसी रास्ते से सुरत के उलटाने यानी चढ़ाने से मुमकिन है, यानी सच्ची मुक्ति और उद्धार इसी जुगत[3] की कमाई से मुमकिन है, और किसी तरह नहीं।

१—अत्यन्त। २—सूक्ष्म। ३—साधन।

(१६) जिस क़दर बाहरमुख करनी परमार्थ के नाम से और मतों में जारी है, वह असल में मुक्ति का साधन नहीं है, बल्कि सब भर्म है ।

(१७) और जो कोई साधन प्राणों के साथ या किसी और धार के साथ चढ़ाई का है, पहिले तो वह ऐसा कठिन है कि किसी से बन नहीं सकता और जो किसी बिरले जीव से बन भी गया, तो वह अभ्यासी माया के घेर से बाहर नहीं जावेगा, क्योंकि सिवाय शब्द की धार के और सब धारें जिस क़दर कि हैं, वे ब्रह्मांड से जारी हुई हैं यानी जहाँ से कि माया का ज़हूर होकर माया और चैतन्य ने मिलकर रचना करी है । इस सबब से जो कोई इन धारों पर सवार होकर चलेगा, वह माया के घेर में रहेगा और देह के बंधनों और जन्म मरण से उसका छुटकारा नहीं होगा ।

(१८) माया सुरत चैतन्य की धार का ख़ोल और ग़िलाफ़ हो रही है, यानी जिस क़दर माया में सूक्ष्म और स्थूल वग़ैरह दर्जे हैं, उसी क़दर ग़िलाफ़ सुरत पर चढ़े हुए हैं । और यही ग़िलाफ़ या ख़ोल देही कहलाते हैं और इन्हीं ग़िलाफ़ों का सुरत के वियोग[1] यानी जुदाई से बेकार[2] हो जाने का नाम मौत है । इस वास्ते जब तक सुरत माया के देश में रहेगी, तब तक ग़िलाफ़ में रहेगी और इस सबब से जन्म मरण उसका, चाहे जल्दी होवे या देर से, जारी रहेगा । इस वास्ते संत फ़रमाते हैं कि जब तक

१—अलहदगी । २—बेमसरफ़ ।

सुरत संत देश अथवा दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश में, जहाँ माया बिलकुल नहीं है, न पहुँचेगी, तब तक सच्चा और पूरा उद्धार न होगा।

(१६) यह उद्धार सिर्फ़ सतगुरु और शब्द भक्ति से हो सकता है। और किसी की भक्ति या दूसरे क़िस्म के अभ्यास से हासिल नहीं हो सकता है। और संत मत के अभ्यासी को प्रेम और शौक़ के साथ करनी शुरू करना मुनासिब है, क्योंकि बग़ैर प्रेम और शौक़ के अभ्यास में आसानी नहीं होवेगी और जैसा चाहिये रस भी नहीं आवेगा।

(२०) हर एक आदमी को, चाहे औरत होवे या मर्द, वास्ते अपने सच्चे और पूरे उद्धार के, सुरत शब्द का अभ्यास करना ज़रूर और मुनासिब है और इसी को सच्चा परमार्थ कहते हैं। बाक़ी जिस क़दर बाहरमुख पूजा और अभ्यास है, जिसका अंतर से सिल्सिला[1] नहीं लगा हुआ है, वह भर्म है। उससे जीव का सच्चा और पूरा कल्याण नहीं होगा। अलबत्ता शुभ कर्म का फल मिलेगा यानी थोड़े अरसे के वास्ते सुख स्थान मिल जावेगा और जो अशुभ कर्म बनेगा, उसके एवज़[2] में दुख भोगना पड़ेगा।

२१—कर्म का स्थान आँखों का मुक़ाम है यानी जब सुरत जाग्रत अवस्था में आँखों के स्थान पर बैठती है, तब मन और इन्द्रियों से बाहरमुखी करतूत बनती है। और संत फ़रमाते हैं कि जैसे बने जीव को चाहिये कि

१—संबंध। २—बदले।

भक्ति और अभ्यास करके आँखों के स्थान से आहिस्ता २ सरकता[1] जावे यानी ऊपर और अंदर की तरफ़ चलना शुरू करे, तो जिस क़दर चाल चलेगी, उसी क़दर कर्म थकता और घटता जावेगा और रफ़्ता २ एक दिन यह जीव निःकर्म[2] हो जावेगा।

(२२) संतों ने कर्म की दो क़िस्म करी हैं। एक जो इस जीव की ज़ात यानी आपे से तअल्लुक़ रखता है। और दूसरा जिसका तअल्लुक़ औरों के साथ व्यवहार में है। पहली क़िस्म यह है कि जिस करतूत करके[3] यह जीव अपने मालिक के नज़दीक़ पहुँचता जावे, वह असली यानी परमार्थी शुभ कर्म है और जो करतूत कि इसको अपने मालिक के चरणों से दूर डाले वही असली यानी परमार्थी अशुभ कर्म है। दूसरी क़िस्म यह है कि औरों के साथ मन, बचन और कर्म करके इस तरह बरताव करे कि जैसे यह जीव चाहता है कि और लोग इसके साथ बरताव करें। यह व्यवहारी शुभ कर्म है और इसके ख़िलाफ़ बरताव करना व्यवहारी अशुभ कर्म। परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि ऊपर के क़ायदे के मुआफ़िक़ अपने ज़ाती और व्यवहारी कर्म का दुरुस्ती से बरताव करें।

(२३) और मतों में बाहरमुखी कर्म का बहुत बिस्तार किया है। सबब इसका यह है कि सच्चे और कुल मालिक की भक्ति की रीति और महिमा उनको

१—चढ़ता। २—कर्म के घेर से बाहर। ३—के कारण।

मालूम नहीं हुई और न सुरत शब्द अभ्यास की ख़बर हुई कि जिससे जीव बहुत जल्द कर्म के घेर से निकल कर अपने निज घर की तरफ़ जा सकता है। और जो कर्मों के बखेड़े में पड़ा रहा तो चाहे उससे व्यवहारी शुभ कर्म बने या अशुभ, उसका हिसाब काल और माया के संग कभी बेबाक़[1] नहीं हो सकता है और इस वास्ते जन्म मरण और दुख सुख के फंदे से रिहाई[2] मुमकिन नहीं है।

(२४) जिन मतों में कि सिर्फ़ बाहरमुखी पूजा या पोथियों का पढ़ना और पढ़ाना जारी है और घट के भेद से बेख़बरी है, उनकी कुल कार्रवाई व्यवहारी शुभ या अशुभ कर्म में दाख़िल है। उससे मुक्ति हासिल नहीं हो सकती।

(२५) और जिन मतों में थोड़ा अंतर अभ्यास जारी है और वह वर्णात्मक नाम का सुमरिन या ध्यान किसी देवता या औतार या परमेश्वर का या मुद्रा का साधन है और स्थान उस अभ्यास का छः चक्र के अंदर है और संतों के धाम का भेद मालूम नहीं है, तो भी वह सच्ची मुक्ति का साधन नहीं है। अलबत्ता सुख स्थान कुछ काल के वास्ते मिलेगा और फिर जन्म मरण के चक्कर में आना पड़ेगा।

(२६) जो लोग कि ज्ञानी या वेदान्ती या सूफ़ी कहलाते हैं और अपने को ब्रह्म मानते हैं, पर कोई अभ्यास ब्रह्म पद में पहुँचने का नहीं करते और न भेद से ब्रह्म पद और

१—साफ़। २—छुटकारा।

उसके रास्ते से वाफ़िक़[1] हैं, यह भी जन्म मरण के चक्कर से नहीं बच सकते। ऐसा ज्ञान बाचक कहलाता है। बग़ैर मन और सुरत की चढ़ाई के (संतों के अभ्यास के मुआफ़िक़) हालत नहीं बदल सकती और न ब्रह्म पद की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि प्राणायाम का अभ्यास ब-सबब उसकी कठिनता के ख़ारिज[2] है और कोई दूसरे अभ्यास से यह मतलब हासिल नहीं हो सकता। और यह बाचक ज्ञानी और सूफ़ी अपनी विद्या और बुद्धि के अहंकार में संतों का बचन नहीं मानते, इस सबब से ख़ाली रह गये।

(२७) नास्तिक और और मत जो विद्यावानों ने जारी किये हैं, इनमें तो कोई परमार्थी बात नहीं है। सिर्फ़ पर उपकार का उपदेश हैं और कुल मालिक की मौजूदगी से इनकार है। फिर यह लोग क्या भक्ति और अभ्यास कर सकते हैं ? इस वास्ते इनका उद्धार किसी तरह मुमकिन नहीं है।

(२८) रचना का हाल ग़ौर से नज़र करने से साफ़ ज़ाहिर होता है कि कोई कुल और सच्चा मालिक ज़रूर है, क्योंकि हर एक चीज़ से कारीगरी और मतलब और इरादा समर्थ बनाने वाले का ज़ाहिर है। और यह जीव उसी कुल मालिक समर्थ दयाल की अंश है यानी उसका और जीव का जौहर[3] एक ही है। फिर जो लोग कि इस बात को नहीं मानते हैं, वे अपना भारी नुक़सान करते हैं और अंत को बहुत पछतावेंगे।

(२९) जो लोग कि तीर्थ, व्रत और मूर्त्ति, मंदिर और

१—जानकार। २—छोड़ा हुआ, बेमसरफ़। ३—असलियत।

औतारों और देवताओं की पूजा में अटक रहे हैं और घट के भेद और संत मत की जुक्ति से बेख़बर हैं और न उसकी तलाश और खोज करते हैं, उनका भी सच्चा उद्धार नहीं हो सकता। वे कर्म का फल अलबत्ता पावेंगे, पर सच्चे मालिक के दरबार में नहीं पहुँच सकते, बल्कि उस औतार और देवता के असल रूप का भी जैसा कि उसके लोक में है, दर्शन नहीं मिलेगा, क्योंकि अपनी ज़िंदगी में असल का खोज नहीं किया। फिर मरने के बाद भी नक़्ल का ही दर्शन पावेंगे, बशर्ते सच्ची लगन और किसी क़दर प्रतीति के साथ मूर्त्ति की पूजा करी होगी और जो रस्मी परमार्थ के तौर पर कार्रवाई की है तो नक़्ली रूप की भी प्राप्ति नहीं होगी।

(३०) सच्चे परमार्थी को चाहिये कि भेदी और अभ्यासी गुरु खोज कर और उनकी थोड़ा पहिचान करके, सुरत शब्द मार्ग के अभ्यास में लग जावे और जो संजम कि बताये गये हैं, उनके मुआफ़िक़ कार्रवाई अपनी दुरुस्त करता जावे। तब जो कुछ कि बचन संतों ने कहे हैं, उनकी तसदीक़[1] अंतर में वह आप करता जावेगा और कुल मालिक की दया भी अपने अंतर में परखता जावेगा। इस तरह उसकी प्रीति और प्रतीति चरणों में दिन दिन बढ़ती जावेगी और एक दिन अपने मालिक के चरणों में पहुँच जावेगा।

१—सच्चे होने की ताईद।

बचन—१६

राधास्वामी दयाल के चरणों में जैसी तैसी प्रीति करना चाहिये, तब सहज सहज सच्चा उद्धार होता जावेगा और एक दिन काम पूरा बन जावेगा

१—इस दुनियाँ में जितने कारोबार हैं और जहाँ तहाँ जिस जिस का मेल और मुआफ़िक़त है, वह शौक़ और प्रीति के सबब से जारी हैं, यानी जहाँ जिसकी प्रीति है और जिस काम में जिसका शौक़ है, वहाँ कार्रवाई आसानी और दुरुस्ती के साथ जारी है। और जिस जगह या जिस काम में किसी को नामुआफ़िक़त या नफ़रत है, वहाँ कुछ कार्रवाई नहीं हो सकती है। और जो ज़बरदस्ती से कोई ऐसी जगह या ऐसे काम में कुछ कार्रवाई करावे, तो वह दुरुस्ती से और आराम और आसानी के साथ न होगी, बल्कि उसमें हुज्जत[1] और तकरार होने का खौफ़ रहेगा।

२—जहाँ जिसकी सच्ची प्रीति या शौक़ है, वहाँ वह तन, मन और धन से कार्रवाई करने को बहुत ख़ुशी के साथ तैयार होता है और इन तीनों को ख़र्च करके यानी काम में लाकर बहुत मगन होता है। और जिसके वास्ते ऐसी कार्रवाई करता है, वह भी अपने प्यार वाले की यह कार्रवाई देख कर बहुत ख़ुश होता है और उलट कर उसकी भी इसी तरह ख़िदमत और सेवा करने को उमंग

१—झगड़ा।

के साथ तैयार होता है और आपस में मुहब्बत दिन दिन बढ़ती जाती है।

३–जिस वक्त़ जिस किसी का कोई प्यारा दूर से आने को होता है, तो चाहे जैसा बेवक्त़ होवे और चाहे उस वक्त़ शिद्दत[1] से सर्दी या गर्मी या बारिश होती होवे, पर वह शख़्स बग़ैर किसी ख़्याल और सोच के उसी वक्त़ घर से चल कर रेल के स्टेशन पर या थोड़े फ़ासले पर पहिले से पहिले अपने दोस्त या प्यारे से मिलने को जाता है और उस वक्त़ उसकी सुरत और मन बहुत ताक़त के साथ तन को वहाँ पहुँचाते हैं कि जिससे जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, अपने प्यारे का दीदार[2] करे और उससे मिल कर आनन्द पावे।

और जब दोनों आपस में मिलते हैं, तब दोनों बहुत ख़ुश होते हैं और उस ख़ुशी में सब तकलीफ़ या थकावट, जो जागने या बारिश या गर्मी और सर्दी वग़ैरह के सबब से आयद[3] हुई होवे, एक छिन में दूर हो जाती है।

४–इससे ज़ाहिर है कि सुरत और मन और इन्द्री सब मुहब्बत यानी प्रीति के बस हैं। जहाँ और जिसमें प्रीति आ जाती है, वहाँ सब उमंग के साथ कार्रवाई करते हैं और उसमें किसी तरह का थकाव या तकलीफ़ नहीं होती।

५–इसी तरह जहाँ असली प्रीति नहीं है, पर धन या और किसी चीज़ या काम के लालच से शौक़ पैदा

१—ज़ोर। २—दर्शन। ३—पैदा।

हुआ है, तो वहाँ भी मन और इन्द्री और तन बहुत तवज्जह और मेहनत के साथ कार्रवाई करके उस शख़्स को जिससे वह लालच का काम पूरा होने वाला है, राज़ी और ख़ुश करके अपना मतलब निकालते हैं।

६—ख़ुलासा यह है कि सुरत, मन और इन्द्री और तन प्रीति या कोई मतलब या किसी क़िस्म के मतलब की आशा के आधीन हैं। जहाँ इनमें से कोई बात होगी, वहीं वे शौक़ और उमंग के साथ कार्रवाई करने को तैयार होवेंगे।

७—और जहाँ कि प्रीति या कोई मतलब या उसके थोड़ी देर बाद पूरे होने की आस नहीं है, लेकिन ख़ौफ़ किसी क़िस्म के नुक़सान या तकलीफ़ का है या दबाव है, तो वहाँ भी हुक्म के मुआफ़िक़ मन, तन और इन्द्रियाँ दुरुस्ती के साथ काम करते हैं, पर ऐसी कार्रवाई में वह ख़ुशी और उमंग कि जो प्रीति और मतलब की जगह होती है, नहीं होती है और न वैसा आराम और आसानी उस काम के करने में मालूम होती है।

८—लेकिन जिस जगह कि ख़ौफ़ अपने प्यारे की नाराज़गी या तकलीफ़ का है या अपने आराम और आनन्द में ख़लल और विघ्न पड़ने का है, तो ऐसी जगह मन और इन्द्रियाँ और तन वैसे ही उमंग और शौक़ के साथ काम देते हैं जैसे कि ख़ास प्रीति की जगह और उस कार्रवाई में किसी तरह की तकलीफ़ नहीं मालूम होती है।

९—अब समझना चाहिये कि संत अथवा राधास्वामी मत में सिर्फ़ प्रेम के ऊपर ज़ोर दिया है कि जितनी और जिस क़दर हो सके सच्चे मालिक और सच्चे गुरु के चरणों में प्रतीति के साथ प्रीति करना चाहिये। जो थोड़ी बहुत भी प्रीति होवेगी तो वक़्त सतसंग बाहर के, मन और चित्त तवज्जह के साथ परमार्थी बचन सुनेंगे और गुरु स्वरूप का मुहब्बत के साथ दर्शन करेंगे और अंतर में अभ्यास के वक़्त मन और सुरत और इन्द्रियाँ शब्द और स्वरूप में थोड़े बहुत उमंग के साथ लगेंगे। और इस तरह जब संसार और उसके कारोबार की तरफ़ से थोड़ी बहुत अलहदगी होवेगी और ख़ास तवज्जह परमार्थ की तरफ़ आवेगी, तो ज़रूर मन और सुरत अंतर के शब्द और स्वरूप में थोड़ी देर को लग जावेंगे और एकाग्र होने में ज़रूर किसी क़दर रस और आनन्द आवेगा और फिर रोज़मर्रह के अभ्यास और सतसंग से यही आनन्द और रस आहिस्ता आहिस्ता बढ़ता जावेगा और एक दिन जीव का काम पूरा बन जावेगा।

१०—और मालूम होवे कि प्रीति और प्रतीति कुल मालिक राधास्वामी दयाल और गुरू या साध के चरणों में, सतसंग में उनकी और उनके धाम की महिमा सुनकर, आवेगी और प्रेमी और भक्त जन की हालत सुन कर और देख कर और अंतर में थोड़ा बहुत अभ्यास करके वह प्रतीति और प्रीति दिन दिन मज़बूत होवेगी और तरक़्क़ी करेगी।

११—इस प्रीति और प्रतीति के साथ थोड़ा ख़ौफ़ भी शामिल होना चाहिये और उसकी दो क़िस्म हैं। पहिला यह है कि जो जीव से कुछ अभ्यास नहीं बन पड़ेगा या कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में सच्ची प्रीति और प्रतीति नहीं करेगा, तो जन्म मरण के चक्कर से उसका बचाव नहीं होगा और हमेशा देही धर कर उनके साथ दुख सुख भोगता रहेगा। और दूसरा यह कि जो जीव हुक्म के मुआफ़िक़ कार्रवाई नहीं करेगा तो सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल उससे राज़ी नहीं होवेंगे। और उनकी अप्रसन्नता यानी नाराज़गी में जीव का निहायत दर्जे का नुक़सान है कि उसका रास्ता अंतर में अपने निज घर की तरफ़ चलने का बंद हो जावेगा और फिर काल और कर्म और माया उस जीव को अपने घेर में रख कर दुख सुख देते रहेंगे और उसका सच्चा और पूरा उद्धार न होने देवेंगे।

१२—जब इस तरह से थोड़ी बहुत प्रीति और प्रतीति जीव को कुल मालिक राधास्वामी दयाल और उनके सतसंग और गुरू में आई और दोनों या एक क़िस्म का ख़ौफ़ भी उसके दिल में सच्चा पैदा हुआ, तब उसका रास्ता आसानी से अंतर में तै होता जावेगा यानी मन और सुरत अपने प्यारे गुरू और सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँचने और दर्शन का बिलास और आनन्द हासिल करने के वास्ते सहज में पहिले पिंड में सिमट कर फिर ऊँचे देश यानी ब्रह्मांड और उसके पार संत

देश की तरफ़ शब्द की डोरी पकड़ के और स्वरूप के ध्यान का आसरा लेकर चढ़ना शुरू करेंगे और प्रीति भाव और ख़ौफ़ के सबब से उनको ज़रा भी इस काम के करने में सुस्ती या आलस या तकलीफ़ नहीं सतावेगी, बल्कि अंतर में शब्द और स्वरूप का थोड़ा बहुत रस और आनन्द लेते हुए उमंग और शौक़ के साथ ऊपर की तरफ़ क़दम बढ़ावेंगे और सतगुरु की मदद और राधास्वामी दयाल की मेहर से एक दिन धुर घर में, जो कि अपने प्रीतम कुल मालिक का महल[1] है, पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होवेंगे।

१३—सब जीव निहायत दर्जे के कमज़ोर हैं और जिस जगह पिंड में सुरत बैठ कर कार्रवाई देह और दुनियाँ की कर रही है, उस जगह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार और मन और दसों इन्द्रियों का बहुत भारी ज़ोर है। किसी की ताक़त नहीं है कि इनसे बच कर निज घर की तरफ़ को अपने बल से चल कर रास्ता तै करे, लेकिन राधास्वामी दयाल की मेहर और सतगुरु अथवा साध के संग से आहिस्ता आहिस्ता जीव के अधिकार यानी शौक़ के मुआफ़िक़ काम बन सकता है। और जो शौक़ कम भी है, तो सतगुरु अपनी दया और मदद से उसको बढ़ा सकते हैं और अभ्यासी के दिल में थोड़ा बहुत ख़ौफ़ भी पैदा कर सकते हैं कि जिससे उसका शौक़ बढ़ता रहे और ढीला और सुस्त न होवे।

१—स्थान।

१४—सब जीव अजान हैं यानी अपने निज घर और अपने सच्चे माता और पिता कुल मालिक राधास्वामी दयाल के भेद से नावाक़िफ़[1] हैं और न जुगत चलने की जानते हैं। सब कर्म और भर्म में अटके हुए हैं और बाहरमुख पूजाओं में अपना वक्त और तन, मन, धन मुफ़्त ज़ाया[2] कर रहे हैं या विद्या पढ़ कर और बुद्धि और चतुराई बढ़ा कर अपने आपको ब्रह्म मान कर निश्चिंत हो जाते हैं या कुल मालिक की मौजूदगी और सुरत के चैतन्य और अमर होने से इनकार करके नास्तिक बन जाते हैं। इनको जब तक सतगुरु का संग न होगा और यह उनका बचन प्रीति भाव से सुन कर असल हाल रचना और अपनी मौजूदा हालत से वाक़िफ़ न होंगे और वास्ते बचाव दुख सुख और जन्म मरण के संतों की जुगत चलने की सुरत शब्द मार्ग के मुआफ़िक़ दरियाफ़्त करके अपने अन्तर में सतगुरु का बल दया और लेकर थोड़ा बहुत रास्ता काटना शुरू न करेंगे, तब तक इनको सच्चे मालिक की प्रतीति और प्रीति नहीं आवेगी और न अन्तर में कुछ रस और आनन्द प्राप्त होगा।

१५—इस वास्ते ज़रूर है कि पहिले भेदी और अभ्यासी गुरू की तलाश करे और जब वे मिल जावें, तो उनसे भेद रास्ते का लेकर अभ्यास शुरू करे और उनका और उनकी बानी का संग करके अपनी समझ बूझ बढ़ावे और संसारी मत और समझ और बरताव को बदलता जावे और उनके चरणों में सच्ची प्रीति और

१—अनजान। २—बरबाद।

प्रतीति, जिस क़दर हो सके, करे। तब उनकी दया और मदद से इसका रास्ता तै होवेगा और एक दिन अपने निज घर में पहुँच कर जन्म मरण से रहित हो[1] जावेगा, और नहीं तो बारम्बार संसार में ऊँचे नीचे देश और ऊँची नीची जोनों[2] में जन्म लेकर माया के भोगों में भरमता रहेगा और अनेक तरह के कष्ट और क्लेश देह के संग भोगता रहेगा और कभी इसका छुटकारा इस चक्कर से न होवेगा।

१६—जो प्रीति कि सिवाय सच्चे मालिक के दर्शनों की प्राप्ति के और किसी मतलब या चाह लेकर लगाई जावेगी, वह परमार्थी हिसाब में स्वार्थ यानी कपट की भक्ति कहलाती है। ऐसी प्रीति से जीव का कारज किसी तरह से नहीं बन सकता है। चाहे दुनियाँ का मतलब शायद किसी क़दर पूरा हो जावे, पर गुरू और राधास्वामी दयाल के चरणों में सच्चा प्रेम, जो सफ़ाई करके सुरत और मन को उनके निज घर में पहुँचावे, कभी हासिल नहीं होगा।

१७-इस वास्ते मुनासिब है कि चाहे थोड़ी प्रीति होवे पर सच्ची प्रीति वास्ते प्राप्ति दर्शन सच्चे मालिक के अपने हृदय में धारण करे और सतगुरु और सतसंग और अंतर अभ्यास की मदद से उसको आहिस्ता आहिस्ता बढ़ाता जावे तो एक दिन निज घर में पहुँच कर बासा पावेगा यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगा।

१—रहित हो—छूट। २—योनियों।

इसी प्रीति के आसरे मन और सुरत घर की तरफ़ आहिस्ता आहिस्ता चलना शुरू करेंगे और जिस क़दर रस मिलता जावेगा, उसी क़दर चाल उनकी बढ़ती जावेगी। इस वास्ते हर एक मर्द और औरत को मुनासिब और लाज़िम[1] है कि जैसे बने वैसे थोड़ी या बहुत प्रीति राधास्वामी दयाल और गुरू के चरणों में पैदा करके परमार्थ की कार्रवाई जारी कर दें और जन्म मरण और देह धर के दुख सुख भोगने का ख़ौफ़ दिल में लाकर इस काम में सुस्ती और ग़फ़लत[2] न करें, नहीं तो अन्त को बहुत पछताना पड़ेगा। और फिर वह अफ़सोस कुछ फ़ायदा नहीं देगा और अमोल नर देह, जो बड़ी मुश्किल यानी चौरासी का चक्कर खाकर हाथ आई है, पशुओं के मुआफ़िक़ खान पान यानी इन्द्रियों के भोग बिलास और उनके हासिल करने की मेहनत और मशक़्क़त[3] में मुफ़्त बरबाद जावेगी।

बचन—१७

हर शख़्स को अपने जीव चैतन्य के भंडार का खोज और पता लगा कर वहाँ पहुँचने का जतन करना चाहिये कि जिससे परम आनंद को प्राप्त होवे और जन्म मरण और देह के दुख सुख से बचाव हो जावे।

१—इस रचना में दो पदार्थ हैं—एक चैतन्य और

१—ज़रूरी। २—लापरवाही। ३—मेहनत।

दूसरा जड़। चैतन्य वह है जो चेष्टा[1] करता है और जिस देह में वह बिराजमान[2] होता है, उस देह की सम्हाल और उसके औज़ारों (यानी इन्द्री वग़ैरह) के वसीले से इस लोक में कार्रवाई करता है और बल्कि और देहियों की भी सम्हाल करता है।

और जड़ पदार्थ वह है, जो अपने आपसे किसी क़िस्म की चेष्टा और हरकत[3] नहीं कर सकता है और बिना मदद और सहारे चैतन्य के उससे कोई कार्रवाई नहीं हो सकती है।

२—अब इस चैतन्य की कैफ़ियत और ताक़त समझना चाहिये कि जिस जगह या जिस वीर्य्य से कि इसकी प्रथम धार प्रगट होती है, वही धार उस वीर्य्य के स्वरूप और कुल देह की कर्त्ता[4] है और जब से कि वह धार प्रगट हुई, उसी वक़्त से जिस क़दर शक्तियाँ यानी क़ुव्वतें और तत्त्व और गुण इस रचना में कार्रवाई कर रहे हैं, वे सब इस धार के बढ़ाव और उसकी देह के बनाव में (आपस में रल मिल कर) कार्रवाई जारी करते हैं। और वे शक्तियाँ और तत्त्व वग़ैरह यह हैं—(१) खैंच शक्ति (२) हटाव शक्ति (३) बनाव शक्ति (४) मिलाव शक्ति (५) मिक़नातीसी यानी चुम्बक शक्ति (६) संहार[5] शक्ति (७) बिजली की शक्ति (८) रोशनी की शक्ति और तीन गुण, सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण और पाँच तत्त्व आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी।

३—देह जड़ है और पाँच तत्त्व और तीन गुण की

१—क्रिया। २—मौजूद। ३—क्रिया। ४—रचनेवाली। ५—नाश करने वाली।

मिलौनी से बनी है और सुरत चैतन्य की शक्ति से चैतन्य और कार्रवाई करती नज़र आती है।

४—सुरत चैतन्य की ताक़त किस क़दर भारी[१] है कि जब और जहाँ वह ज़हूर[२] करे, वहीं सब शक्तियाँ और तत्त्व और गुण वग़ैरह हाज़िर होकर (बावजूद मुख़ालफ़त[३] के) आपस में रल मिल कर कार्रवाई करते हैं। और जब सुरत किसी देह को छोड़ती है, उसी वक़्त से रूप और रंग और ताक़त उस देह की जाती रहती है और निहायत भयानक यानी ख़ौफ़नाक और डरावना रूप उस देह का हो जाता है और कुल कार्रवाई उस देह और उसके औज़ारों की बंद होकर वह देह जल्द गल कर मिट्टी के मुआफ़िक़ हो जाती है।

५—सब जगह [मैदान यानी आकाश में और लोकों में] तमाम रचना सुरत के बल से हुई है और क़ायम है और आइन्दा को जारी रहेगी, यानी एक २ सुरत, जो महा चैतन्य की अंश है, हर एक जिस्म यानी लोक [सूरज, चाँद, तारागण] में बैठ कर उस देह का बनाव और सम्हाल कर रही है। और जब वह सुरत उस देह को छोड़ती है, तब उसकी फ़ौरन् प्रलय[४] हो जाती है यानी उसका अभाव हो जाता है।

६—जिस क़दर सूरज और चाँद और तारागण नज़र आते हैं, यह सब एक २ देह हैं और सुरत अंश इनमें बैठकर उनकी रचना की सम्हाल और कार्रवाई करती

१—ज़बरदस्त। २—प्रकाश। ३—विरोध। ४—नाश।

रहती है और जो २ तारे हर एक सूरज और चाँद के मुतअल्लिक़ हैं, उनकी रचना की भी सम्हाल वही सूरज और चाँद करते हैं।

७—इससे साबित हुआ कि जिस क़दर रचना हुई है, सब सुरत की धार से प्रगट हुई है और सुरत चैतन्य ही के आसरे क़ायम है और उसी की ताक़त से सब काम दुनियाँ के जारी हैं।

८—जब इस सुरत की, जो एक किरण के मुआफ़िक़ है, इस क़दर ताक़त और कार्रवाई है, फिर उस भंडार या कुल सूरज की, जहाँ से यह किरण आई है, ताक़त और समर्थता[1] का क्या अंदाज़ हो सकता है? वह भंडार कुल रचना का कर्त्ता और कुल का पालनकर्त्ता और कुल की सम्हाल करने वाला और महा ताक़त वाला यानी सर्व समर्थ है। वहीं से आदि धार या किरण प्रगट हुई और नीचे उतर कर और मंडल बाँध कर रचना करती चली आई और पिंड में आँखों के मुक़ाम पर बैठ कर देह और दुनियाँ की कार्रवाई कर रही है और दुःख सुख और चिंता और ख़ौफ़ वग़ैरह इसी जगह जाग्रत अवस्था में व्यापते हैं।

९—जब आँखें मिच[2] जाती हैं या पुतली ज़रा खिंच जाती है, तब आदमी बेहोश और देह उसकी बेकार हो जाती है और जब ज़्यादा खिंचाव हो जाता है, तब सुरत देह को छोड़ जाती है।

१०—यह देश सुरत का नहीं है। यह सुरत अंश या

१—शक्ति। २—बंद हो।

किरण या धार उस सर्व समर्थ भंडार की है, जिसको संतों ने कुल मालिक राधास्वामी दयाल कहा है और जब तक यह उलट कर उसी धार को पकड़ के जिसके वसीले उतरी है अपने भंडार में न जावेगी, पूर्ण सुख और आनन्द इसको नहीं मिलेगा और न जन्म मरण से छुटकारा होगा, क्योंकि जन्म मरण देह यानी खोल का होता है और खोल माया के मसाले यानी तत्त्वों और गुणों वग़ैरह का बना है। और जब तक सुरत माया के घेर में रहेगी, ज़रूर उस पर खोल चढ़े रहेंगे और जिस मंडल में सुरत प्रगट होगी, उसी मंडल के मसाले के बने हुए खोल में उसका बरताव[1] होगा और जैसी वहाँ की रचना है, उसके मुआफ़िक़ दुख सुख भोगना पड़ेगा। और माया सत्तलोक यानी दयाल देश के नीचे से प्रगट हुई है और उसमें ब-हिसाब शुद्धता और मलीनता के बहुत से दर्जे हैं। सो जब तक कि इन सब दर्जों को तै करके माया के घेर के बाहर दयाल देश यानी अपने निज भंडार में सुरत न जावेगी, तब तक निर्मल और सुखी न होवेगी।

११—इस वास्ते हर एक जीव को, चाहे मर्द होवे या औरत, लाज़िम[2] और मुनासिब है कि जैसे बने तैसे संतों की जुगत के मुआफ़िक़ रास्ता घर जाने का तै करना शुरू करे, तब देह के बंधन और कष्ट और क्लेश से सच्चा छुटकारा होगा और इसी को सच्ची मुक्ति और पूरा उद्धार कहते हैं।

१—व्यवहार। २—ज़रूरी।

१२–और जो सुरतें यानी जीव मन और इन्द्रियों के भोग बिलास की चाह उठा कर उन्हीं के हासिल करने के जतन में उम्र भर लगे रहेंगे, तो उनकी चाल दिन २ माया के मंडल में नीचे की तरफ़ जारी रहेगी और इस सबब से जल्दी २ जन्म मरण और ज़्यादा से ज़्यादा तकलीफ़ उनको भोगनी पड़ेगी और जड़ पदार्थों के साथ (क्योंकि सब भोग दुनियाँ के जड़ हैं) दिन दिन उन सुरतों का मेल बढ़ता जावेगा और अपने निज भंडार से दूरी होती जावेगी।

१३–इस दुनियाँ में सब जीव मन और इन्द्रियों के भोगों से सुख हासिल करने की चाह में फँसे हुए हैं और रात दिन इसी चाह के पूरा करने के लिये मेहनत कर रहे हैं। और हाल यह है कि यह सुख तुच्छ[1] और नाशमान हैं और बारम्बार उनकी प्राप्ति के लिये मेहनत करनी पड़ती है और फिर एक बार देह छोड़ने के वक़्त इन सबको छोड़ना पड़ेगा।

जब ऐसे ओछे और नाशमान सुखों के वास्ते जीव उम्र भर पचते[2] हैं, तो परम आनंद और अमर सुख के हासिल करने के लिए उनको किस क़दर तवज्जह और मेहनत करना मुनासिब और लाज़िम है, ख़ास कर जब कि इस काम के बनाने के वास्ते सिर्फ़ एक बार किसी क़दर मेहनत बहुत आराम और ख़ुशी के साथ करनी पड़ेगी और फिर वह सुख और आनंद हमेशा क़ायम रहेगा।

१—नाचीज़। २—परेशान होते।

१४—अब ग़ौर करना चाहिये कि जब इस दुनियाँ में दो बड़े पदार्थ, एक चैतन्य और दूसरा जड़ यानी माया है और ऊँचे से ऊँचे देश में चैतन्य का भंडार है और नीचे के देश में जड़ यानी माया का भंडार है, तो चैतन्य को जो जीव का निज आपा[1] है, उसके भंडार में पहुँचाना वास्ते प्राप्ति परम आनंद के निहायत ज़रूर मालूम होता है और जड़ पदार्थ यानी माया की तरफ़ से जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, हटना वास्ते बचने दुक्खों से, उसी क़दर ज़रूर और मुनासिब है।

१५—इस वास्ते हर एक आदमी पर यह काम करना, अपने आपे को सुख देने के निमित्त,[2] फ़र्ज़ है यानी चैतन्य या सुरत की धार को पकड़ कर, एक समान चैतन्य से विशेष और फिर उससे ज़्यादा विशेष और इसी तरह से दर्जे-बदर्जे चढ़ कर महा विशेष चैतन्य यानी निज भंडार में कि जिसके ऊपर और विशेष नहीं है और जो आप अपार और अनंत है, पहुँचना चाहिये।

१६—कुल रचना में ब-सबब मिलौनी माया के चैतन्य में दर्जे हैं यानी जहाँ माया ज़्यादा है, वहाँ का चैतन्य किसी क़दर उसके ग़िलाफ़[3] से ढका हुआ है यानी उसकी ताक़त और प्रकाश वहाँ कम है, और जिस दर्जे में माया कम यानी सूक्ष्म है, वहाँ चैतन्य का प्रकाश और ताक़त का ज़हूर ज़्यादा है। जैसे इस लोक का चैतन्य सूरज चैतन्य की धारों का आधीन है यानी जब तक कि सूरज

१—हस्ती। २—लिये। ३—खोल।

की रोशनी और गर्मी इस लोक में न आवे, तब तक यहाँ कुछ रचना नहीं हो सकती और न ठहर सकती है, इसी तरह यह सूरज मय[1] अपने तारागण के अपने से बड़े सूरज का आधीन[2] है और उसके ऊपर इसी तरह कई सूरज मंडल हैं ; आख़िरी महा सूरज या महा मंडल और कुल का भंडार और कर्त्ता और रक्षक[3] सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल हैं। और जोकि सुरत उसी महा सूरज की अंश है, इस वास्ते उसको अपने कुल माता पिता निज सूरज या भंडार में पहुँचना चाहिये, नहीं तो माया के घेर में रहेगी।

१७—जो धार कि निज सूरज से निकल कर नीचे के देश में उतर कर ठहरी है, वही सुरत और चैतन्य और जान और रूह और नूर[4] और शब्द की धार है और जिस जगह पिंड में उतर कर ठहरी है, वहाँ उसका नाम सुरत है।

इस सुरत को शब्द की धार के वसीले से चढ़ा कर उसके निज घर में पहुँचाने को सुरत शब्द योग कहते हैं और वही भंडार यानी आदि शब्द कुल का मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल है। ऐसी समझ धारण करके अभ्यास करना राधास्वामी मत का उपदेश है और यही रचना भर में सच्चा और क़ुदरती मत और सहज अभ्यास है। और बाक़ी जितने मत कि दुनियाँ में जारी हैं और जिनमें यह भेद और यह अभ्यास नहीं है, वे मन और बुद्धि के रचे हुए हैं, चाहे वे मन और बुद्धि ब्रह्मांडी हैं या पिंडी

१—साथ। २—आश्रित। ३—रक्षा करने वाले। ४—प्रकाश।

यानी जिसमानी,[१] और उनसे जीवों का कारज दुरुस्त होना, जैसा कि चाहिये, मुमकिन नहीं है और न उनमें पूरी शान्ति हासिल हो सकती है।

१८—जिन्होंने कि प्राणों के रोकने और चढ़ाने का अभ्यास पिछले वक्त में जारी किया, वह इस क़दर कठिन है और उसके संजम ऐसे मुश्किल हैं कि उसका किसी से दुरुस्ती के साथ बनना ख़ासकर इस ज़माने में नामुमकिन मालूम होता है। इस वास्ते वह अभ्यास ख़ारिज[२] समझना चाहिये। और मुद्रा वग़ैरह के अभ्यास से भी माया के पार जाना मुमकिन नहीं है। इस वास्ते सुरत शब्द का अभ्यास जो कि संतों ने दया करके इस ज़माने में जारी फ़रमाया है, कुल जीवों के वास्ते, चाहे गृहस्थ होवें या विरक्त[३] और पुरुष होवें या स्त्री सबके वास्ते, मुफ़ीद[४] है और इसी के वसीले से सुरत धुर पद[५] में माया के पार पहुँच सकती है। और मुद्रा और प्राणायाम का अभ्यास सिर्फ़ विरक्तों ही के वास्ते था और अब उनसे भी नहीं बन सकता और वह अभ्यास माया के घेर के अंदर ख़त्म हो जाता है। इस सबब से उसमें जीव का पूरा उद्धार भी मुमकिन नहीं है।

अर्थ शब्द नंबर २

सार बचन (नज़्म) बचन ४१

कड़ी

सुन्नी सुरत शब्द बिन भटकी, अटकी मन सँग दुख पाई ॥ १ ॥

१—शरीर संबंधी। २—व्यर्थ। ३—बैरागी। ४—लाभदायक। ५—अंतिम स्थान।

अर्थ

जो सुरत कि सुन्न यानी चैतन्य मंडल की बासी थी, शब्द की धार को छोड़ कर इस संसार में भटक गई और मन का संग करके दुख पाती है।

कड़ी

भरमत फिरे चक्र की नाईं, उलट गई तन में छाई ॥ २ ॥

अर्थ

और चक्र यानी चकई के मुआफ़िक़ चंचल होकर भरम रही है और उलटी होकर देह में फैल गई।

कड़ी

विष खावत जग में झख मारत,
समझ सोच धुर नहिं लाई ॥ ३ ॥

अर्थ

और भोगों में, जो ज़हर से भरे हुए हैं, बरत कर जगत में टक्करें खाती है और अपने धुर मुक़ाम की समझ नहीं लाती है।

कड़ी

सोवत रही मोह अँधियारी, जागन चौंप नहीं पाई ॥ ४ ॥

अर्थ

और मोह के अंधकार यानी रात में बेहोश सो रही है और जागने का इरादा नहीं करती।

कड़ी

इंद्री के बस पड़ी बिकल होय, काल कला घट में छाई ॥ ५ ॥

अर्थ

और इन्द्रियों के बस होकर हर वक़्त चंचल और बिकल हो रही है और इस सबब से काल की कला यानी ज़ोर घट में व्याप रहा है।

कड़ी

भोगन में अतिकर लिपटानी, रोग सोग दिन दिन खाई ॥ ६ ॥

अर्थ

और भोगों में लिपट कर दिन दिन रोग और शोक सहती है ।

कड़ी

बंधन बँधी जगत में गाढ़ी, बाढ़ी ममता रस पाई ॥ ७ ॥

अर्थ

इस तरह जगत में बंधन इसके खूब मज़बूत हो गये और थोड़ा थोड़ा रस पाकर हर एक चीज़ में पकड़ यानी मोह बढ़ गया ।

कड़ी

जग व्योहार लगा अति प्यारा, धारा उलटी यहाँ आई ॥ ८ ॥

अर्थ

और जगत में बरताव प्यारा लग कर जो धार कि सुरत की ऊपर को चढ़नी चाहिये थी, वह उलटी देह और संसार में बहने और बिखरने लगी ।

कड़ी

बिना मेहर सतगुरु पूरे के, कस उलटे कस घर जाई ॥ ९ ॥

अर्थ

जब ऐसा हाल हो गया तो अब बिना मेहर पूरे सतगुरु के मुख इसका ऊपर यानी निज घर की तरफ़ कैसे मोड़ा जावे ?

कड़ी

सुखमन द्वार गगना का नाका, कठिन हुआ नहिं सुधि पाई ॥ १० ॥

अर्थ

और इसी सबब से आकाश का द्वारा जो कि पहिला सुखमन स्थान है, खुलना कठिन हो गया, बल्कि उसकी सुधि भी भूल गई।

कड़ी

श्याम धाम से हुई न न्यारी, सेत पदम कस कस पाई ॥११॥

अर्थ

और श्याम स्थान यानी काल के घेर से जुदा न हो सकी। फिर सेत धाम जो उसका निज स्थान है, कैसे पावे ?

कड़ी

धुन की छाँट होत नहिं भाई, कैसे सूरत धुन पाई ॥१२॥

अर्थ

और इसी सबब से धुन की छाँट भी नहीं हुई, फिर निज धुन को कैसे प्राप्त होवे ?

कड़ी

घट में बैठ निरख दृग द्वारा, यहाँ से राह अधर जाई ॥१३॥

अर्थ

अब चाहिये कि अपने घट में निश्चल होकर और नेत्रों के द्वारे को झाँक कर अंदर को चले। यही सड़क ऊँचे और निज देश की है।

कड़ी

घाटा तोड़ काल मति मोड़ो, करम काट ऊँचे जाई ॥१४॥

अर्थ

पहिली घाटी को कि जिसकी हद त्रिकुटी तक है, तोड़ कर और काल का मुख मोड़कर और कर्मों को

काटते हुए ऊँचे को चलना चाहिये।

कड़ी

राधास्वामी कहत सुनाई, समझ समझ पग धर भाई ॥१५॥

अर्थ

राधास्वामी दयाल फ़रमाते हैं कि इस रास्ते में निरख निरख कर और परख परख कर क़दम रखना चाहिये।

बचन— १८

मालिक का संसार में नर रूप धर कर औतार लेना जीवों के सच्चे उद्धार और कल्याण के वास्ते निहायत दर्जे की दया और मेहर का निशान है

१—मालिक को अपने जीवों की तरक़्क़ी समझ बूझ और प्राप्ति विशेष सुख की हमेशा मंज़ूर नज़र[1] है। इस वास्ते जब और जिस क़िस्म और दर्जे के जीव संसार में पैदा होते हैं, उनके समझाने बुझाने और तरक़्क़ी देने के वास्ते कोई न कोई कला[2] किसी ऊँचे दर्जे से संसार में पैदा करके कार्रवाई परमार्थ और व्यवहार की जारी कराई जाती है, यानी दुनियावी मुआमलों में इल्म और हुनर[3] और इख़लाक़[4] यानी धर्म की नई नई रीति से तरक़्क़ी दी जाती है। और इसी तरह जब और जिस लियाक़त के जीव रचना में आते हैं, उनकी परमार्थी कार्रवाई और ज्ञान, ध्यान और भक्ति की तरक़्क़ी दर्जे बदर्जे की जाती है।

१—पसंद। २—विशेष योग्य सुरत। ३—फ़न। ४—सदाचार।

२—और जब प्रेमी और भक्तिवान् जीव ऊँचे दर्जे के पैदा होते हैं और पुरानी कार्रवाई जीवों की मनमुखता के सबब से ढीली और उलट पलट हो जाती है और जीवों के उद्धार का रास्ता भूल और भरम की ज़्यादती और भोगों की तरफ़ कसरत[1] से झुकाव होने के सबब से किसी क़दर बंद हो जाता है, तब कुल मालिक अति दया करके आप इस संसार में संत सतगुरु रूप धारण करके प्रगट होते हैं और सच्चा और सहज रास्ता पूरे उद्धार का, जिससे कुल जीव फ़ायदा उठा सकें, उपदेश करते हैं।

३—जो कोई ऐसा कहे कि क्या कुल मालिक, जो कि सर्व समर्थ है, बग़ैर औतार रूप धरने की तकलीफ़ गवारा करने[2] के, हिदायत नहीं कर सकता, उसका जवाब यह है कि उस मालिक में सब ताक़त मौजूद है और बिना नर रूप धारण करने के कई तरह से हर एक के अंदर में उपदेश कर सकता है। लेकिन जीवों को ऐसे उपदेश से शुरू में यानी जब तक कि उनको किसी ऊँचे दर्जे का समझ बूझ हासिल न होवे और प्रीति और प्रतीति और शौक़ उनके दिल में गहरा पैदा न होवे, कुछ फ़ायदा नहीं हो सकता है और न भूल और भर्म क़तई दूर हो सकते हैं और न मन और इंद्रियों के भोगों की तरफ़ से सच्चा और सहज वैराग्य हासिल हो सकता है और न ऐसे उपदेश का, जब तक कि उपदेशक नज़र न आवे और उससे सवालात करके उस उपदेश का निर्णय न किया

१—अधिकता। २—गवारा करने—उठाने।

जावे यानी जब तक भर्म और संशय दूर न होवें, पूरा पूरा यक़ीन हो सकता है।

४—जीवों की हालत ऐसी है कि अपनी अपनी अक्ल और समझ के मुआफ़िक़ हर एक नई बात को खोज और निर्णय कर के समझना चाहता है और जो जो भरम और संशय मन में धरे हुए हैं, उनका दूर होना चाहता है और जब तक यह बात न होवे, उससे कार्रवाई किसी क़िस्म की दुरुस्ती से बन नहीं सकती। और ख़ास कर अंतर की कार्रवाई में तो ज़ाहिरी और अंतरी मदद दोनों की निहायत ज़रूरत है। और जब उपदेशक[1] नज़र न आवे, तो अनेक तरह के भरम और ख़ौफ़ दिल में पैदा होकर कार्रवाई में विघ्न डाल कर उसको चलने न देंगे।

५—तजरुबा और इम्तिहान से मालूम हुआ है कि बावजूद हासिल करने भेद के पूरे गुरू से और मालूम होने बहुत से हालात और अंतर की कार्रवाई के, फिर भी अभ्यासी जीव अंतर के बचन और नई कैफ़ियत, जब जब उनको सुनाई और नज़राई देवे, ज्यों का त्यों नहीं समझ सकते और अक्सर बेजा[2] संशय और भरम चित्त में उठा कर उसके फ़ायदे और बड़ाई की तमीज़[3] नहीं कर सकते। फिर जब कि उनको अंतर के हालात और मुक़ामात और कैफ़ियतों से बिलकुल बेख़बरी होगी, तब किस तरह मालिक की दया की, जो वह अंतर में किसी जीव पर करे या कोई तमाशा क़ुदरत का दिखलावे,

१—उपदेश देने वाला। २—व्यर्थ के। ३—पहिचान।

कैसे समझ और परख आ सकती है ?

६—जीवों की ताक़त और लियाक़त इस लोक में इस क़िस्म की रक्खी गई है कि वह दूसरे शख़्स की मदद से, जो उनसे ज़्यादा ताक़त और लियाक़त रखता होवे, आहिस्ता आहिस्ता बारम्बार समझाने बुझाने और कार्रवाई का नमूना दिखलाने से बढ़ सकती है और सिर्फ़ एक दफ़े के बचन का असर, चाहे जैसा वह बचन ज़बर होवे, क़ायम नहीं रह सकता, क्योंकि मन और इन्द्रियाँ, जो कि काम करने के औज़ार हैं, हर रोज़ किसी क़दर बदलते रहते हैं और इसी सबब से भूल भी ज़्यादा है। इस वास्ते जब तक कि किसी काम का बराबर सीखना और अभ्यास करना जारी नहीं रहेगा और कोई शख़्स बतौर उस्ताद या गुरू के उस कार्रवाई की निगरानी और ताक़ीद[1] नहीं करेगा, तब तक मन और इन्द्रियाँ, जिनका ख़्वास[2] आरामतलबी और भोगों में लिपट कर और उनका रस लेकर मगन और निचिंत[3] हो रहने का है, कभी ऐसे काम कि जिनमें इनको मेहनत और अपनी आदत से विलक्षण यानी जुदी और नई कार्रवाई करनी पड़े, दुरुस्ती से अंजाम नहीं देंगे[4]।

७—दुनियाँ में जितने काम हैं, कोई मनुष्य बल्कि जानवर भी बग़ैर सिखाये और अपने हम-जिन्सों[5] को वह काम करते हुए देखे बग़ैर नहीं सीखते और न दुरुस्ती से उसकी कार्रवाई करते हैं। यहाँ तक कि उठना

१—ताक़ीद करेगा—बार बार ज़ोर देगा। २—गुण। ३—बेफ़िक्र।
४—अंजाम देंगे—करेंगे। ५—अपने जैसों।

बैठना, चलना फिरना, खाना पीना, कपड़ा पहिरना, खाना बनाना, और इल्म और हुनर[1] और कारीगरी और चालाकी और बहुत से और काम मामूली या ग़ैर मामूली, बग़ैर सीखने और औरों को वह काम करते हुए देखने के, नहीं आते। फिर जब कि दुनियाँ के काम, कि जिनमें मन और इन्द्री अपने पिछले जन्मों के स्वभाव के मुआफ़िक़ आसानी से लग जाते हैं बग़ैर सिखाने वाले और हम-जिन्सों में बैठ कर उसकी कार्रवाई करने के, नहीं सीखे जाते हैं, तब मनुष्य लोग परमार्थ की कार्रवाई, जो कि कठिन है और उसकी चाल भी उलटी है, किस तरह से अंतर में मालिक का बचन एक दफ़े सुन कर सीख सकते हैं और उस बचन को कैसे ज्यों का त्यों समझ सकते हैं।

८—मालिक जब किसी को कोई बात बतावेगा, तो यही करेगा कि अंतर में उसको बचन सुनावेगा या उसके मन में प्रेरणा[2] करेगा, पर दोनों हालत में, बग़ैर बाहर की मदद के, कोई कार्रवाई उस बचन या प्रेरणा के मुआफ़िक़ नहीं बन सकती है। या यह कि मालिक उसको अंतर में सच्चे सतसंग और पूरे गुरू के सन्मुख जाकर उपदेश लेने की हिदायत या प्रेरणा करेगा और जब वह यह बचन मानेगा, तो उसका अभ्यास करके सच्चे उद्धार का रास्ता जारी हो जावेगा और सतगुरु की मेहर से एक दिन पूरा काम बन जावेगा।

९—जीवों में बहुत दर्जे हैं और हर एक की समझ

१—फ़न। २—फुरना।

बूझ और लियाक़त अपने अपने दर्जे के मुआफ़िक़ है। बाहर के बचन हर एक जीव अपनी अपनी लियाक़त और समझ के मुआफ़िक़ समझते हैं और सब की समझ एकसाँ[1] नहीं होती। फिर अंतर का बचन, जो निहायत सूक्ष्म[2] होगा, कैसे सब जाव ज्यों का त्यों समझ सकते हैं ? हर एक की समझ जुदी जुदी है और हर एक के मन और इन्द्री की ताक़त भी मुआफ़िक़ उनके बरताव और व्यवहार और स्वभाव यानी रहनी के जुदी जुदी है, फिर सब जीव सकसाँ नहीं हैं और उनकी समझ और रहनी भी एकसाँ नहीं है। इस वास्ते वे अंतर या बाहर का बचन भी एकसाँ नहीं ग्रहण कर सकते हैं और आपस में फ़र्क़ ज़रूर रहेगा। फिर मालिक अपने अंतरी बचन या प्रेरणा से हर एक की सम्हाल जैसा कि चाहिये, नहीं कर सकता। इस वास्ते सिखाने और समझाने वाले की मदद बाहर से हर एक जीव को ज़रूर दरकार[3] है।

१०—और मालूम होवे कि अंतर का बचन सुन कर जीवों को कैसे यक़ीन हो सकता है कि यह मालिक का बचन है या उनकी अपने अपने मन और बुद्धि की प्रेरणा है या कोई और रूह मिस्ल[4] भूत या जिन्न के या कोई काल की कला अंतर में बोलती है ? इसमें अभ्यासियों को जिनके सिर पर गुरू मौजूद हैं, भरम हो जाता है। फिर जिनको गुरु नहीं मिले, वे कैसे भरम और संशय से इस मुआमले में बच कर किसी

१—एक जैसी। २—बारीक। ३—आवश्यक। ४—मानिंद।

क़िस्म की कार्रवाई अंतरी बचन के मुआफ़िक़ कर सकते हैं या उसको जैसा कि चाहिये वैसा समझ सकते हैं ?

११—अब मालूम होवे कि जिस क़दर कार्रवाई दुनियाँ या परमार्थ की है, वह बिदून[1] मुहब्बत या प्रेम के दुरुस्ती से बन नहीं सकती और मुहब्बत या प्रेम जीव को किसी में बग़ैर देखने या उसकी महिमा सुनने के आ नहीं सकता। और जो महिमा सुनकर भी प्रेम आवे तो वह बिदून देखने यानी दर्शन के और उस तरफ़ से थोड़ी बहुत मदद मिलने के, बढ़ नहीं सकता। फिर मालिक के चरणों का प्रेम किसी के मन में पहिले तो महिमा सुन कर आवेगा और फिर दर्शन और दया पाकर बढ़ेगा। इस वास्ते जो मालिक अंतर में किसी को बचन सुनावे या प्रेरणा करे, तो वैसा प्रेम जो दर्शन पाकर और दया की परख करके आवेगा, पैदा नहीं हो सकता।

१२—जो करनी बताई जावे, वह ऐसी कठिन है कि बग़ैर मन और इन्द्रियों के रोकने के दुरुस्ती से बन नहीं सकती और माया के पदार्थ और इन्द्रियों के भोग ऐसे ज़बर हैं कि उनसे, बिदून बाहरी और अंतरी मदद के, हटना और उनसे नफ़रत करना जीवों की ताक़त से बाहर है। फिर किसी क़िस्म की करनी जीवों से दुरुस्ती से बन आना और दिन २ उसमें तरक़्क़ी करना किस क़दर मुश्किल है ? इसी सबब से जितने उपाय और जतन कि पोथियों में लिखे हैं सब कहने और सुनने की बातें रहीं

१—बिना।

और करनी किसी से उनके मुआफ़िक़ नहीं बनती और इसी वजह से जीव का सच्चा उद्धार दुर्लभ[1] हो गया।

१३—इस वास्ते ऐसी हालत और बे-ताक़ती[2] जीवों की देख कर, कुल मालिक राधास्वामी दयाल आप संत सतगुरु रूप धार करके प्रगट हुए और जीवों को अपने पुत्र की तरह प्यार करके चरणों में खींचा और मेहर और दया से अपने चरणों की प्रीति उनके मन में बसाई। इस प्रीति का हृदय में बसाना यही दया ख़ास है, क्योंकि प्रीति से जीव एक दूसरे से मिलते हैं और प्रीति के सबब से एक दूसरे की तरफ़ खिंचता है। सो जिसके दिल में राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति पैदा हुई, वही उस प्रीति के सबब से भेद रास्ते का लेकर उनके चरणों की तरफ़ खिंचता है और चौरासी के चक्कर और काल और माया के घेर से निकल कर मुक्ति पद को प्राप्त होता है।

१४—ज़ाहिर है कि जीवों की प्रीति अनेक पदार्थों और भोगों में और कुटुम्ब परिवार और बिरादरी में लग रही है, यानी उनका मन अनेक जगह बँध रहा है। सो उन सबसे हट कर पहले एक ज़ाहिरी[3] स्वरूप में जब तक नहीं ठहरेगा, तब तक उसका सूक्ष्म और अति सूक्ष्म और अरूप[4] में लगना मुश्किल और नामुमकिन है। अब समझना चाहिये कि ऐसा चैतन्य और समर्थ ज़ाहिरी स्वरूप, जो कि जीवों के मन को सब तरफ़ से हटा कर अपने में लगावे, कौन है? वह स्वरूप सच्चे और पूरे गुरु का

१—कठिन। २—कमज़ोरी। ३—प्रत्यक्ष। ४—रूपहीन पुरुष।

ज़ाहिरी यानी देह रूप है। उन्हीं के दर्शन और बचन से कुल मालिक के चरणों में प्रीति जागेगी और महिमा चित्त में समावेगी। और सच्चे अनुरागी[1] जीवों को उनका ज़ाहिरी स्वरूप और बचन निहायत प्यारे लगेंगे। और जिस क़दर जीवों की प्रीति उनमें बढ़ती जावेगी, उसी क़दर वह दुनियाँ से आहिस्ता आहिस्ता न्यारे[2] होते जावेंगे और फिर वही प्रीति गुरु के सूक्ष्म और अति सूक्ष्म और विदेह[3] रूप में लगती जावेगी और ज़ाहिरी स्वरूप से किसी क़दर नज़र हटती जावेगी। इस तौर से अनुरागी जाव भेद रास्ते का और जुगत चलने की दरियाफ़्त करके राधास्वामी दयाल के चरणों की तरफ़ दिन दिन चलता जावेगा और एक दिन धुर पद यानी राधास्वामी धाम में पहुँच कर कुल मालिक के दर्शन पाकर सच्ची मुक्ति को प्राप्त होगा।

१५—बग़ैर ऊपर की तरक़ीब के मुआफ़िक़ चलने के कोई जीव धुरपद में नहीं पहुँच सकता, क्योंकि चलना और चढ़ना बग़ैर प्रेम के नहीं बन सकता है। इस वास्ते पहिले गुरु के चरण में प्रीति लगाना ज़रूर है और ऐसे चैतन्य पुरुष और समर्थ गुरु, सिवाय मालिक के या जिसको कि आप अपनी दया से इस दर्जे पर पहुँचावें, दूसरा नहीं हो सकता। फिर ज़ाहिर है कि जब तक मालिक आप नर रूप धर कर संसार में न आवे, तब तक जीवों के सच्चे उद्धार की कार्रवाई जारी नहीं हो सकती।

१—प्रेमी। २—अलहदा। ३—शरीर रहित, अरूप।

१६—और मालूम होवे कि कुल मालिक सिवाय गुरु स्वरूप के निज रूप से भी जीवों के उद्धार में मदद देता है, यानी जो जीव कि गुरू का सतसंग करके निर्मल किये गये यानी अन्तर में रास्ता तै कर के किसी ऊँचे दर्जे पर पहुँचाये गये, वहाँ उनको ताक़त परखने[1] कुल मालिक की दया और मदद की हासिल होवेगी और वहाँ से धुर मुक़ाम तक कुल मालिक अपनी मेहर से उनको आप मदद देकर यानी गुरु स्वरूप में दर्शन देकर पहुँचावेगा।

१७—लेकिन जब तक कि जीव नीचे दर्जे में माया और तमोगुण के घेर में पड़े हुए हैं, उनको कुल मालिक की दया की धार नज़र नहीं आ सकती है। इस वास्ते पहिले उनकी सफ़ाई और किसी दर्जे तक चढ़ाई बग़ैर गुरु स्वरूप के उपदेश और मदद के नहीं हो सकती है। यानी पहिले उनका भाव[2] और प्यार गुरू के देह स्वरूप में लगाया जावेगा और उस प्रीति के वसीले से उनके स्थूल और सूक्ष्म बन्धन काटे जावेंगे, तब अन्तर में वह दर्जा हासिल होगा कि जहाँ से कुल मालिक के चरणों में सच्ची और गहरी प्रीति प्रगट होकर सुरत को निज धाम यानी राधास्वामी के चरणों में पहुँचावेगी।

१८—ऊपर के लिखे हुए से साफ़ ज़ाहिर है कि मालिक का संसार में नर रूप धारण करके प्रगट होना, वास्ते उद्धार जीवों के यानी खींचने ऊपर की तरफ़ को नीचे के दर्जों में से, निहायत ज़रूर है, क्योंकि उन नीचे

१—पहचानने। २—श्रद्धा।

दर्जों से सुरत का उबार[1] सिवाय कुल मालिक के, जब वह आप सतगुरु रूप धारण करके संसार में प्रगट होवे या उसकी ख़ास अंश के, जिसको वह अपनी ताक़त देकर संसार में भेजे, दूसरा कोई नहीं कर सकता।

१६—यह सतगुरु रूप जीवों को अपने चरणों में लगा कर और अपनी प्रीति उनके हृदय में बसा कर दिन २ ऊपर की तरफ़ खींचता है। बिना सतगुरु के प्रेम प्रीति के कोई जीव नीचे का देश छोड़ कर ऊँचे देश में नहीं पहुँच सकता और इस वास्ते कुल मालिक का या उसके निज अंश का गुरु स्वरूप धारण करके संसार में आना निहायत ज़रूर है और यही उसकी ख़ास दया जीवों के उबार के वास्ते है कि उनको प्रेम प्रीति यानी भक्ति का दान देकर और सुरत शब्द अभ्यास की, जिस क़दर मुनासिब और ज़रूरी है, कमाई करा कर माया और काल और चौरासी के चक्कर से बचाकर निज धाम में पहुँचा कर, अपने निज स्वरूप के दर्शन देता है और जन्म मरण की फाँसी से अपनी मेहर और दया से छुड़ा लेता है।

२०—जो जीव कि ज़्यादा नीचे दर्जे में पड़े हैं और मन और इन्द्रियों के भोग बिलास में अटक[2] रहे हैं, उनका उबार भी मंज़ूर है, लेकिन उनकी सफ़ाई बग़ैर उनके तन और मन को थोड़ा बहुत कष्ट देने के नहीं हो सकती। सो यह कष्ट और क्लेश जो उनको वक़्त मुनासिब पर दिया जाता है, शुरू दर्जे की दया है। जैसे

१—उद्धार। २—फँस।

कि खिलाड़ी और नटखट लड़कों को बाप या उस्ताद ताड़ मार करके सम्हालता है यानी उनका चालचलन अपनी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ दुरुस्त कर लेता है, इसी तरह मालिक नीचे के दर्जों के जीवों को तकलीफ़ और तंगी[1] का दंड देकर निर्मल कर लेता है। तब वे लायक़ गुरु की सेवा और सतसंग के होते हैं और फिर गुरु स्वरूप की मेहर और मदद से ज़्यादा ऊँचे दर्जे पर चढ़ाये जाते हैं, जहाँ से कि कुल मालिक उनको अपनी अन्तरी मेहर व दया से अभ्यास कराके और प्रेम बढ़ा कर अपने महल में बुला लेता है। इसी का नाम सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार है।

बचन—१६

इतसे[2] मोड़ और उतको[3] जोड़ यानी संसार और माया के पदार्थों से चित्त को हटा कर राधास्वामी दयाल के चरणों में यानी स्वरूप और शब्द की धार में जोड़ना चाहिये

१—जो कोई सच्चा कल्याण और उद्धार अपने जीव का चाहे, उसका यह काम सिर्फ़ संत अथवा राधास्वामी मत में शामिल होकर और सुरत शब्द के अभ्यास की कमाई करके पूरा पूरा बन सकता है। और किसी मत में जो दुनियाँ में जारी हैं, यह काम जैसा चाहिये दुरुस्त नहीं बन सकता।

१—ग़रीबी। २—इधर से। ३—उधर को यानी मालिक से।

२—कुल मालिक का देश यानी सुरत का भंडार ऊँचे से ऊँचा है और वहीं से आदि सुरत की धार निकली और उतर कर जगह जगह ठहर कर और मंडल बाँध कर रचना करती हुई पिंड में तीसरे तिल के मुक़ाम पर ठहरी है और वहीं से पिंड की रचना की सम्हाल कर रही है और दो धारें दोनों आँखों के तिल के मुक़ाम पर ठहर कर देह और दुनियाँ की कार्रवाई करती हैं और मुख उनका बाहर की तरफ़ और पिंड में नीचे की तरफ़ है।

३—जो धारें कि नीचे की तरफ़ पिंड में फैली हैं, उनका बंधन देह के अंग अंग में हो रहा है और जो कि बाहर की तरफ़ जारी हैं, वह अनेक प्रकार के भोगों और पदार्थों में और कुटुम्ब परिवार और बिरादरी वग़ैरह में भी बँध रही हैं। अपनी धारों की ज़ंजीरों से मन और सुरत संसार में बँध कर फँस गये हैं।

४—मन अनेक तरंगें भोग बिलास और संसार के मान बड़ाई की उठाता रहता है और उनके पूरा करने के वास्ते अनेक[1] तरह के जतन यानी कर्म करता है।

५—इस कार्रवाई में जो और जीवों को सुख पहुँचा तो उसका फल किसी क़दर सुख मिलता है और जो जीवों को दुख पहुँचा तो उसकी एवज़[2] दुख भोगना पड़ता है। खुलासा यह कि कर्मों के चक्कर से जीव कभी बाहर नहीं होता और ऊँच नीच देश और जोनों[3] में सदा भरमता रहता है।

१—बहुत। २—बदले में। ३—योनियों।

६—इस चक्कर से, जो कि माया के घेर में हर वक़्त चल रहा है, कोई जीव बाहर नहीं जा सकता, क्योंकि देह की आशा और भोगों की इच्छा उसको हमेशा नीचे के देशों में और कर्म अनुसार जोनों में भरमाये रखती है, यानी उसके मन और सुरत का रुख़[1] और झुकाव अपनी चाहों के सबब से सदा नीचे और बाहर की तरफ़ माया के मंडल में रहता है।

७—जितने मत कि दुनियाँ में जारी हैं उन सबमें जो कुछ कि परमार्थी कार्रवाई अकसर की जाती है, वह सब बाहरमुखी है और जो कुछ किसी मत में अंतरी अभ्यास जारी है, उसकी कार्रवाई छः चक्रों के अंतरगत यानी पिंड की हद के अंदर में की जाती है और कहीं कहीं पिंड के परे ब्रह्मांड के नीचे के दर्जे तक उस कार्रवाई की रसाई बयान की है। पर वहाँ के अभ्यास का तरीक़ा, मिस्ल प्राण-योग[2] वग़ैरह के, ऐसा कठिन और ख़तरनाक है कि किसी जीव से, चाहे वह गृहस्थ आश्रम छोड़ कर विरक्त भी हो जावे, वह अभ्यास दुरुस्ती से बनना निहायत मुश्किल बल्कि नामुमकिन है।

८—इसी सबब से सब जीव बाहरमुखी परमार्थ में लग रहे हैं और जोकि ऐसी कार्रवाई का सिलसिला सच्चे मालिक के देश या उसके चरणों की धार से अंतर में नहीं लगा हुआ है, इस वास्ते वह बाहरमुखी कार्रवाई सिर्फ़ शुभ कर्म का फल देती है और जन्म मरण और दुख सुख से

१—रुझान। २—प्राणायाम।

छूटना और सच्चे मालिक के चरणों में पहुँच कर अमर और परम आनन्द को प्राप्त होना मुमकिन नहीं है।

६—और जो कोई बिलफ़र्ज़[1] थोड़ी बहुत अंतरी कार्रवाई करके, पिंड के नाके तक या ब्रह्मांड के नीचे के दर्जे में पहुँचे, वह बहुत काल को सुखी हो जावेगा, पर जन्म मरण से बिलकुल रहित[2] नहीं होवेगा। इस तरह सच्चा उद्धार किसी का न होगा यानी सच्चे मालिक का दर्शन किसी को हासिल नहीं हो सकता और न उसके देश की, जो कि पिंड और ब्रह्मांड के परे है और जहाँ माया बिलकुल नहीं है, किसी को ख़बर मिल सकती है।

१०—ऐसी हालत जगत के जीवों की देख कर परम पुरुष पूरन धनी कुल मालिक राधास्वामी दयाल संत सतगुरु रूप धार कर इस संसार में प्रगट हुए और जीवों को अति दया करके सच्चे और पूरे उद्धार की सहज जुगत बताई, यानी सुरत शब्द मार्ग का उपदेश किया, जिसकी कमाई जो सच्चा शौक़ रखता होवे, चाहे मर्द होवे या औरत, जवान होवे या बूढ़ा, विद्वान् होवे या अनपढ़, आसानी के साथ कर सकता है और रफ़्ता रफ़्ता एक दिन सच्चे और कुल मालिक के चरणों में पहुँच कर परम आनंद को प्राप्त हो सकता है।

११—इस अभ्यास का मतलब यह है कि मन और सुरत की धार को, जो नीचे और बाहर की तरफ़ भोगों और माया के अनेक पदार्थों में बह रही है, इधर से हटा कर या मोड़ कर ऊँचे की तरफ़ को अपने अंतर में

१—मानों। २—छुटकारा।

चलाना चाहिये ।

१२—कुल मालिक का देश ऊँचे से ऊँचा है और उसका भेद और रास्ता और स्थानों का हाल संतों के उपदेश से मालूम होगा, यानी हर एक स्थान का नाम और रूप और आवाज़ वग़ैरह का भेद संत बताते हैं। सो उस उपदेश के मुआफ़िक़ स्वरूप और शब्द के आसरे मन और सुरत को समेट कर निज घट में चढ़ाना चाहिये ।

१३—कुल काम दुनियाँ के प्रीति और शौक़ के साथ दुरुस्त बनते हैं । इसी तरह जिसके मन में सच्चे और कुल मालिक और उसके देश की महिमा सुन कर प्रीति और शौक़ आया, वही अधिकारी संत मत के उपदेश का है और उसी के मन और सुरत की धार आसानी के साथ अंतर में ऊपर की तरफ़ चढ़ेगी ।

१४—दुनियाँ में जिसका जिससे विशेष प्यार और मुहब्बत है, वह एक दूसरे से चल कर मिलते हैं । इसी तरह जिसका प्यार चरणों में कुल मालिक के आया और भेद रास्ते और मंज़िलों का और जुगत चलने की उसको मालूम हुई, तब शौक़ और प्रेम के साथ उसके मन और सुरत अपने प्रीतम सच्चे मालिक के दर्शन के वास्ते उसी रास्ते पर आहिस्ता आहिस्ता चलना शुरू करेंगे और जिस क़दर उनकी चाल चलेगी, उसी क़दर आनन्द रास्ते में उनको मिलना शुरू हो जावेगा यानी कुछ कुछ रोशनी या प्रकाश भी नज़र आता जावेगा और आवाज़ भी रसीली सुनने में आवेगी । इस तरह शौक़ और प्यार दिन दिन बढ़ता

जावेगा और उसके साथ चाल भी बढ़ती जावेगी।

१५—फिर जिस क़दर कि अंतर में कैफ़ियत[1] नज़र आवेगी और आनन्द मिलेगा, उसी क़दर शौक़ मालिक के दर्शनों का बढ़ता जावेगा और उसी क़दर मन और इंद्रियाँ इस तरफ़ यानी दुनियाँ के भोग बिलासों की तरफ़ से हटती जावेंगी और दुनियाँ और उसका सामान फीका[2] लगता जावेगा और दुनियादारों के संग से तबीयत में उदासीनता आती जावेगी। इसी का नाम इधर से मोड़ना और उधर को जोड़ना है।

१६—सच्चे शौक़ीन और दर्दी पमार्थी को इस अभ्यास के करने में ज़रा भी तकलीफ़ नहीं होती, बल्कि और रस और आनन्द आता है और कुल मालिक की दया भी उसको अंतर और बाहर मालूम होने लगती है। तब प्रतीति यानी यक़ीन बढ़ेगा और उसके साथ प्रेम प्रीति भी बढ़ेगी और दिन दिन तरक्क़ी होती जावेगी और इसी तरह एक दिन निज घर में, जोकि अमर और अजर और प्रेम और आनन्द का महा भंडार है, पहुँचकर अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल का दर्शन पावेगा और तब बिलास और आनन्द में मगन रहेगा। काल कष्ट और क्लेश और जन्म मरण वहाँ नहीं हैं, क्योंकि वहाँ माया का नाम निशान भी नहीं है।

१७—यह दुनियाँ और देह दुख सुख और मल मूत्र का भाँड़ा[3] है। यहाँ रह कर कोई परम आनंद को जो एक रस सदा क़ायम रहे, प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते

१—हाल। २—रसहीन। ३—बरतन।

संत फ़रमाते हैं कि जो कोई दुक्खों से और जन्म मरण की फाँसी से बचना चाहे, वह जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, उसी क़दर संत सतगुरु की दया और मेहर लेकर इस पिंड और संसार से न्यारे होने का जतन[1] शुरू कर देवे, तो एक दिन कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया से पिंड और ब्रह्मांड के पार संत अथवा दयाल देश में पहुँच जावेगा।

१८-ज़ाहिर है कि जिस क़दर कार्रवाई स्वार्थ और परमार्थ यानी दुनियाँ और दीन[2] की जो आदमी से बन रही है या बन सकती है, वह सब इसकी तवज्जह की धार के सबब से बनती है। और तवज्जह या चित्त की धार में मन और सुरत की धार शामिल है। अब जब तक कि आदमी की तवज्जह की धार बाहर की तरफ़ जड़ पदार्थों में, जैसे इन्द्री भोग वग़ैरह में जारी रहेगी, तब तक समझना चाहिये कि चैतन्य धार का ख़र्च ही ख़र्च है और जड़ पदार्थों के साथ मेल और बंधन होता है और इस वास्ते उनके भाव[3] और अभाव[4] में (जिस क़दर आसक्ति[5] होगी) उसी क़दर सुख दुख ज़रूर भोगना पड़ेगा। जो तवज्जह दुखदाई पदार्थ की तरफ़ से हटा कर दूसरी तरफ़ जोड़ दी जावे, तो वह दुख बहुत हलका और कम हो जावेगा और जो पूरी पूरी तवज्जह बदल दी जावे तो वह दुख बिलकुल मालूम नहीं पड़ेगा।

१९-राधास्वामी मत के अभ्यास की यही ख़ूबी और बड़ाई है कि इसमें आदमी की तवज्जह इसके सुरत चैतन्य के भंडार की तरफ़ सहज में फेरने की तरकीब काम

१—उपाय। २—परमार्थ। ३—मौजूदगी। ४—ग़ैर मौजूदगी। ५—बंधन।

में लाई जाती है। वह चैतन्य भंडार आनन्द और सुख का घर है। सो जब तवज्जह उस तरफ़ को पूरी पूरी आती है, फ़ौरन् थोड़ा बहुत सुख और आनन्द प्राप्त होता है और दुख और चिन्ता बिसर[1] जाती है।

२०—जो कोई चिन्ता और तकलीफ़ या रोग सोग की हालत में अपनी तवज्जह पूरी पूरी—(१) बानी के पाठ के सुनने में या (२) मुक़ाम का ख़याल करके नाम के सुमिरन और स्वरूप के ध्यान में या (३) शब्द की धुन में या (४) संत और साध की ज़बानी चर्चा और बचन में लावे, तो उसी वक्त संतों के अभ्यास का असर अपने अन्तर में मालूम कर सकता है यानी ज़रूर उसकी चिंता या तकलीफ़ या बीमारी या रंज किसी क़दर हलके और कम हो जावेंगे और इस तरह पिछले कर्मों का भोग बहुत कम व्यापेगा। और जो अभ्यास जारी रहा, तो दिन दिन पाप कर्म कटते जावेंगे और कुछ अरसे में पूरी सफ़ाई हो जावेगी और आइन्दा को आनन्द बढ़ता जावेगा और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया व मेहर की परख आती जावेगी और चरणों में प्रीति और प्रतीति और अभ्यास की लगन बढ़ती जावेगी।

२१—अब ग़ौर करना चाहिये कि सब जीव वास्ते प्राप्ति सुख और दूर होने दुक्खों के उम्र भर रात दिन जतन करते रहते हैं और जो सुख कि हासिल होता है, वह तुच्छ और नाशमान है और हरचंद[2] कि यहाँ का दुख भी नाशमान है, पर बाज़े बाज़े दुख ऐसे भारी हैं कि

१—भूल। २—गो।

उम्र भर तकलीफ़ देते हैं। फिर वास्ते प्राप्ति निर्मल और ठहराऊ सुख और आनंद के और दूर करने या जड़ से काट देने तकलीफ़ और दुक्खों के किस क़दर तवज्जह हर एक शख़्स को, चाहे मर्द होवे या औरत, करना वाजिब और मुनासिब है ? और इस काम के करने की जुगत सिर्फ़ राधास्वामी मत में जारी है और वह इस क़दर सहज है कि जो थोड़ा भी सच्चा शौक़ होवे, तो वह दुरुस्ती से बन पड़ेगी और वह शौक़ दिन दिन बढ़ता जावेगा और पूरी करनी करा कर एक दिन अभ्यासी को निज घर में पहुँचा कर निश्चिंत कर देगा।

बचन—२०

मन और सुरत का मुख अंतर में ऊपर की तरफ़ मोड़ने और आहिस्ता आहिस्ता चढ़ाने में हमेशा सुख और आनंद ज़्यादा से ज़्यादा मिलेगा और दुख और तकलीफ़ और चिंता दूर और कम होते जावेंगे। इस वास्ते यह अभ्यास कुल जीवों को, चाहे औरत होवे या मर्द, वास्ते अपने असली फ़ायदे के करना लाज़िम और मुनासिब है।

१—दुनियाँ में सब जीव वास्ते प्राप्ति सुख और

आनन्द के रात दिन मेहनत और कोशिश करते हैं और दुक्खों से बचने या उनको दूर करने के वास्ते भी बराबर तदबीर और जतन करते हैं। पर जो सुख कि यहाँ प्राप्त होते हैं, वह सब मन और इन्द्रियों के विषय[१] हैं, यानी मन और इन्द्रियों को उनसे स्वाद और रस मिलता है और उसका असर बहुत थोड़ी देर तक ठहरता है और फिर जाता रहता है और जो दुख कि भारी हैं, जैसे सख़्त बीमारी और मौत, उनके दूर करने का कोई जतन या तदबीर आदमी के इख़्तियार में नहीं है, यानी वे ला-इलाज हैं और सबको चार नाचार[२] सहने पड़ते हैं, बल्कि छोटे दुक्खों को भी कोई शख़्स पहिले उनके मुक़र्ररा[३] वक़्त से हटा नहीं सकता और न कम कर सकता है।

२—सबब तुच्छ और नाशमान होने दुनियाँ के सुखों का यानी इन्द्रियों के भोगों का यह है कि यह रस और स्वाद जड़ पदार्थों के संग से प्राप्त होते हैं और जड़ पदार्थों में चैतन्य अंश बहुत कम है। और जोकि यह बात तहक़ीक़[४] और निर्णय हो चुकी है कि जितने सुख और आनन्द और रस और स्वाद हैं, वह सब सुरत चैतन्य की धार के वसीले से, जो इंद्रियों के घाट यानी द्वारे पर आकर ठहरती है, हासिल होते हैं, इस वास्ते जो धार कि इंद्रियों के घाट से ऊँचे देश में जारी है, उससे सुरत और मन को मिलने से ज़रूर सुख और आनन्द और रस निर्मल और ज़्यादा मालूम होवेगा और उस वक़्त में,

१—भोग। २—लाचारी में। ३—निश्चित। ४—साबित।

बग़ैर करने दूसरे जतन के, तकलीफ़ चाहे किसी क़िस्म की होवे यानी मानसी[1] या देह की, कम मालूम पड़ेगी यानी किसी क़दर उसको इफ़ाक़ा[2] हो जावेगा।

३—अब ग़ौर करना चाहिये कि जो कोई इस तरह का जतन बतावे कि जिससे सुरत और मन और इन्द्रियों का रुख़ ऊँचे देश की तरफ़ को सहज में उलटता जावे और अंतर में स्वतंत्र यानी अपने इख़्तियार से जितनी देर चाहे ऊपर के दर्जे का रस और आनन्द ले सके, तो उस जतन या जुगत को किस क़दर तवज्जह के साथ हर एक औरत और मर्द को साधना और उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करना लाज़िम और मुनासिब है, ख़ासकर जब कि वह जुगत ऐसी है कि विशेष रस और आनन्द प्राप्त करावे और उसी वक़्त चिंता और तकलीफ़ को भी हटा देवे या कम कर देवे, यानी वह जतन दुहरे फ़ायदे का असर रखता है।

४—और वह जतन यह है कि मन और सुरत को तवज्जह के साथ ऊँचे देश में संतों के भेद के मुआफ़िक़ रूप में जोड़े और शब्द की धुन के साथ, जो हर वक़्त घट घट में हो रही है, लगावे और उसी धार को पकड़ कर ऊपर को चढ़ावे। इस जतन का नाम ध्यान और सुरत शब्द योग है और परम पुरुष राधास्वामी दयाल ने उसको इस क़दर सहज कर दिया है कि लड़का, जवान, बूढ़ा, औरत होवे या मर्द, गृहस्थ होवे या विरक्त[3], पढ़ा लिखा होवे या

१—मन संबंधी। २—कमी। ३—बे घरबार वाला।

अनपढ़, हर एक शख़्स आसानी और आराम के साथ बग़ैर किसी ख़तरे के कर सकता है और जल्द उसका असर और फ़ायदा अपने अंतर में देख सकता है।

५—इसी जतन की कार्रवाई करके जीव दर्जे बदर्जे अपने मन और सुरत को घट में चढ़ाकर माया के घेर से बाहर जा सकता है और देहियों के बंधन और उनके लाज़िमी[1] दुख सुख से सच्चा छुटकारा हासिल कर सकता है और फिर वहाँ से आलमे रूहानी यानी निर्मल चैतन्य देश में पहुँचकर अपने सच्चे माता पिता कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर अमर और अजर हो सकता है।

६—यह जतन कोई जादू या मन्त्र नहीं है। सिर्फ़ तवज्जह का दर्जे बदर्जे और आहिस्ता आहिस्ता ऊँचे स्थानों में जो कि घट घट में वक़्त उतार सुरत के क़ुदरती रचे गये हैं, लगाने और जमाने[2] का काम है। जिस क़दर जिसकी तवज्जह अंतरी रूप या शब्द में ठहरेगी, उसी क़दर उसको रस और आनन्द प्राप्त होगा और दिन दिन सफ़ाई होती जावेगी और दुनियाँ का मैल और आलायश[3] और नापाकी[4] घटती जावेगी, यानी संसारी चाहें और इन्द्री भोगों की बासना कम होती जावेंगी और रफ़्ता रफ़्ता सुरत मन और इन्द्रियों का संग छोड़कर और बिदेह होकर निर्मल चैतन्य यानी दयाल देश में चढ़ जावेगी। इस मुक़ाम में पहुँचने पर सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल होती है

१—अवश्य होने वाले। २—ठहराने। ३—गंदगी। ४—मलीनता।

यानी जन्म मरण से सच्चा छुटकारा हो जाता है और अमर और परम आनन्द की प्राप्ति होती है, क्योंकि वह देश रूहों[1] का भंडार है और महा विशेष और निर्मल चैतन्य वहाँ भरपूर है। और जोकि सुरत चैतन्य है और सत्य और अमर और अजर और महा आनन्द स्वरूप है, फिर उस देश के अविनाशी[2] सुख और आनन्द का क्या अनुमान किया जावे कि उसका अंदाज़ा बिलकुल अक्ल और क़यास में नहीं आता है।

७—ऊपर के लिखे हुए फ़ायदे की तसदीक़[3] और जांच अभ्यासी जीव अपनी इसी ज़िंदगी में कोई दिन के अभ्यास के बाद अच्छी तरह कर सकता है और थोड़ा बहुत रस और आनन्द अभ्यास शुरू करते ही मिलने लगता है। इससे ज़्यादा क्या सबूत इस जतन और अभ्यास की बड़ाई का दरकार[4] है? इस वक़्त के जीवों पर निहायत दर्जे की दया कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने फ़रमाई है कि ऐसा बढ़के दर्जे का अभ्यास इस क़दर सहज कर दिया है कि हर कोई उससे आसानी के साथ फ़ायदा उठा सकता है।

८—अब जीवों को निहायत ग़ौर के साथ अपने असली नफ़े और नुक़सान का विचार करना ज़रूर है कि जब कि वे इस दुनियाँ के तुच्छ और नाशमान सुख और आराम के लिये ऐसी मेहनत और मशक़्क़त कर रहे हैं कि उम्र भर इसी में खो देते हैं, तो फिर वास्ते प्राप्ति अमर

१—सुरतों। २—हमेशा रहने वाला। ३—पहिचान। ४—आवश्यक।

और परम आनन्द के किस क़दर तवज्जह और कोशिश उनको करना वाजिब[1] है कि जिससे बारम्बार जन्म धर कर दुख सुख भोगने से हमेशा के वास्ते रिहाई[2] हो जानी मुमकिन है।

९—जो कोई यह ख़्याल करे कि अभ्यासी को इस काम के करने में घर बार या रोज़गार छोड़ना पड़ेगा, सो इस बात की संत अथवा राधास्वामी मत में कुछ ज़रूरत नहीं है। इस मत में जिस क़दर त्याग[3] है वह मन से है, बाहर से गृहस्थी और रोज़गार के छोड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ती, यानी जब तक कि अभ्यासी को गहरा रस और आनन्द अंतर में ऊँचे दर्जे का हासिल न होवे, तब तक वह दुनियाँ की कुल कार्रवाई मुख़्तसर तौर पर यानी संक्षेप करके बराबर किये जावेगा। और जब इस क़दर आनन्द हासिल होगा कि फिर तवज्जह दूसरी तरफ़ को यानी दुनियाँ के काम में नहीं कर सकता, तब कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से उस अभ्यासी के कारोबार का बन्दोबस्त आप कर देंगे कि जिसमें उसको और उसके कुटुम्बियों को किसी क़िस्म की तक़लीफ़ न होगी।

१०—ऊपर लिखा गया है कि दुनियाँ में बाज़े दुख बहुत भारी और बाज़े रोग ला-इलाज[4] यानी असाध[5] हैं। सो उनकी तक़लीफ़ भी सुरत शब्द के अभ्यास से बहुत कम और हलकी हो जावेगी यानी जिस क़दर कि अभ्यासी

१—मुनासिब। २—छुटकारा। ३—वैराग्य। ४—जिनका इलाज नहीं। ५—जो अच्छे नहीं हो सकते।

को ताक़त चढ़ाने मन और सुरत की आँख के मुक़ाम से ऊँचे की तरफ़ दिमाग़ में अभ्यास के बसीले से हासिल होगी, उसी क़दर चिन्ता और फ़िक्र और दुख और तकलीफ़ मन और देह की उसको कम व्यापेगी।

११—देखने में आता है कि तवज्जह के रुख़ बदलने से यानी चित्त के एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ मुख मोड़ने से, आदमी की हालत फ़ौरन् बदल सकती है। जैसे कोई आदमी किसी फ़िक्र और चिन्ता में बैठा हुआ है और उस वक़्त उससे कोई अचरजी ख़बर या बात कोई शख़्स आकर कहे, तो जितनी देर उस बात का ज़िक्र और निर्णय वग़ैरह होता रहेगा और उसकी तवज्जह उस तरफ़ लगी रहेगी, तब तक वह चिन्ता या फ़िक्र उसको नहीं सतावेगी। ऐसे ही अगर किसी अंग[1] में बदन के किसी क़िस्म की तकलीफ़ है और उस वक़्त बीमार की तवज्जह किसी ख़ास काम या बात की तरफ़ लगा दी जावे, तो उसको वह तकलीफ़, जब तक कि तवज्जह बटी रहेगी, बहुत कम मालूम होगी।

१२—अब मालूम होवे कि राधास्वामी मत में अभ्यास मन और सुरत की धार या मुख को घट में ऊँचे की तरफ़ मोड़ने का कराया जाता है और वह ऊँचे का देश दर्जे बदर्जे विशेष सुख और आनंद का भंडार है और जीव की बैठक से नीचे के देश में और बाहर की तरफ़ उस क़दर सुख और आनंद नहीं है यानी दर्जे बदर्जे कम

१—हिस्सा।

होता गया है और दुख और तकलीफ़ का मसाला और सामान उस नीचे के देश में बढ़ता गया है। फिर जिस किसी को कि अभ्यास के बल से ताक़त सुरत और मन के मुख मोड़ने और चढ़ाने की हासिल है, वह जब चाहे अपने इख़्तियार से ऊँचे देश में चढ़ कर विशेष आनंद ले सकता है और दुख और तकलीफ़ के मुक़ाम से हट सकता है।

१३—अब समझना चाहिये कि यह बात किस क़दर भारी फ़ायदे की है कि एक ही काम करने से एक ही वक़्त में दुख और तकलीफ़ और चिन्ता और फ़िक्र घट जावे या बिलकुल हट जावे और सुख और आनंद उसी बक़्त ज़्यादा से ज़्यादा मिलता जावे।

१४—ऐसी जुगत हर एक को, चाहे औरत होवे या मर्द, इस दुनियाँ में जानना बहुत ज़रूर और मुनासिब मालूम होता है, क्योंकि इस देश में दुख और सुख दोनों का चक्कर चल रहा है और जीव उनके भोगने में लाचार हैं। फिर जिन जीवों को संतों की जुगत सुरत शब्द योग की मालूम है और वह उसका नित्य अभ्यास करते रहते हैं और जिन्होंने घट का भेद और सच्चे मालिक का पता और निशान राधास्वामी मत का उपदेश लेकर मालूम कर लिया है और उस सच्चे मालिक की सच्ची सरन हृदय से दृढ़[1] करके ले ली है, उनको किस क़दर आसानी के साथ मदद हर वक़्त अपने घट में कुल मालिक की दया से

१—पक्की।

मिल सकती है और दुख सुख की हालत में किस क़दर शान्ति और ताक़त अपने अंतर में जब चाहें जब हासिल कर सकते हैं।

१५—जब कोई सख़्त तकलीफ़ या चिंता पैदा होती है, उस वक़्त कोई जीव किसी की मदद नहीं कर सकता और न धन और सम्पति और न हुकूमत कुछ काम दे सकती है। ऐसे कष्ट के समय में सिर्फ़ सच्चा मालिक ही अपनी दया से कष्ट निवारण[1] कर सकता है। सो उस कुल मालिक का पता और भेद और निशान किसी मत में खोल कर नहीं बयान किया है कि जिसको समझ कर जीव दुख की हालत में उस मालिक के चरणों में इस तौर से बिनती और प्रार्थना करे कि जिसकी ख़बर चरणों तक पहुँच सके और वहाँ से दया आवे और उससे थोड़ी बहुत शान्ति उस वक़्त हासिल होवे।

१६—यह भेद सिर्फ़ राधास्वामी मत में खोल कर समझाया जाता है, बल्कि जीव का इसके पिंड में बैठक के स्थान से कुल मालिक के चरणों तक सूत[2] लगा दिया जाता है और कुल मालिक के धाम का निशाना और वहाँ तक अपने मन और सुरत के पहुँचाने की जुगत बतला दी जाती है कि जिससे जब यह चाहे, उसी वक़्त अपने मन और सुरत की धार को चरणों में जोड़ सकता है बल्कि निज धाम तक कुछ रसाई[3] हासिल कर सकता है और इस कार्रवाई का उसी वक़्त फ़ायदा मालूम कर

१—दूर। २—संबंध। ३—पहुँच।

सकता है यानी किसी क़दर ताक़त और शान्ति और सरूर[1] और आनन्द को प्राप्त हो सकता है। यह किस क़दर भारी फ़ायदा है कि किसी को दुनियाँ भर में, सिवाय सच्चे और प्रेमी परमार्थी के जो कि राधास्वामी मत के भेद और अभ्यास से वाक़िफ़[2] है और चरन सरन दृढ़ करके उसकी कमाई कर रहा है, हासिल नहीं है।

१७—अब इस बात को समझ कर जीवों को इख़्तियार है कि अपने हाल और आइंदा के फ़ायदे के वास्ते चाहे राधास्वामी मत के उपदेश को अंगीकार[3] करें या नहीं। यह काम जब्र या ज़बरदस्ती झूठे लालच और आसा से हासिल नहीं हो सकता, लेकिन जो कोई कि सच्चा परमार्थी है यानी जिसके मन में सच्चे मालिक के चरणों में सच्ची प्रीति और प्रतीति है, चाहे वह थोड़ी होवे, वह इस अभ्यास को आहिस्ता आहिस्ता करके उससे ऊपर का लिखा हुआ फ़ायदा उठा सकेगा और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया को अपने हर काम में अंतर और बाहर और परमार्थ और स्वार्थ में दिन दिन परखता जावेगा और तब अपने भागों को सराह कर राधास्वामी दयाल के चरणों में सच्चा शुकराना अदा करके दिन दिन प्रीति और प्रतीति बढ़ाता जावेगा आर एक दिन निज धाम में पहुँच कर दुख सुख यानी माया के देश से न्यारा होकर हमेशा के वास्ते परम आनंद को प्राप्त होगा।

१—आनन्द। २—जानकार। ३—स्वीकार।

बचन— २१

वर्णन रोशन और अँधेरी किरणियों का जो कि पिंड और ब्रह्मांड की रचना में चैतन्य और जड़ की प्रगट अंश हैं और उपदेश वास्ते पहुँचने निर्मल चैतन्य यानी हमेशा नूरानी[1] देश में, जहाँ अँधेरा यानी काल और माया बिलकुल नहीं हैं

१—इस रचना में दो पदार्थ हैं, एक चैतन्य और दूसरा जड़। चैतन्य का ज़हूरा[2] रोशन[3] किरणियाँ हैं, जड़ का अँधेरी किरणियाँ।

२—जोकि यहाँ की रचना स्थूल है और जड़ चैतन्य की मिलौनी से हुई है, इस वास्ते यहाँ रोशनी और अँधेरा दोनों मिलकर कार्रवाई कर रहे हैं यानी कभी रोशनी होती है और कभी अँधेरा हो जाता है।

३—अँधेरा काल स्वरूप है और इसमें हमेशा भूल और भरम पैदा होते हैं। इसी सबब से यहाँ परमार्थ की निस्बत जो कि रोशनी रूप है, भूल और भरम का बहुत ग़लबा[4] रहता है यानी परमार्थी बात जल्दी भूल जाती है और परमार्थी कार्रवाई में अनेक तरह के संशय और भरम पैदा होते हैं कि जिसके सबब से कोई जीव सच्चे मालिक की पहिचान या उसके चरणों में पहुँचने का जतन दुरुस्ती

१—प्रकाशमय। २—प्रकाश। ३—प्रकाश की। ४—ज़ोर।

के साथ नहीं कर सकता है ।

४—जिस किसी को भाग[1] से संत सतगुरु का सतसंग मिल जावे, तो उसके सब संशय और भरम दूर होकर सच्चे मालिक के चरणों में सच्ची प्रीति और प्रतीति पैदा होकर दिन दिन बढ़ सकती है और वही प्रीति और प्रतीति एक दिन उस अभ्यासी को परम आनन्द के देश में सच्चे मालिक के सन्मुख पहुँचा कर हमेशा को जन्म मरण से रहित[2] कर देगी ।

५—इस वास्ते हर एक आदमी को, औरत होवे या मर्द, चाहिये कि अँधेरे और उजेले की मिलौनी के स्थान से जहाँ कि भूल और भरम की कसरत[3] है, हटकर जिस क़दर जल्द मुमकिन होवे, नित्त रोशनी यानी महा विशेष चैतन्य के धाम में पहुँचने का जतन शौक़ और प्रेम के साथ अपने घट में करे और जो ऐसा नहीं करेगा, तो वह हमेशा के वास्ते अँधेरे के मुक़ाम में, जहाँ रोशनी यानी चैतन्य की धार बहुत कम है, पड़ा रहेगा और नीच ऊँच जोनों में जन्म मरण का कष्ट सहता रहेगा और दिन दिन ज़्यादा अँधेरे के देश में उसका उतार होता जावेगा और अज्ञान यानी नादानी[4] और कष्ट और क्लेश बढ़ते जावेंगे ।

६—इस अँधेरे के देश को छोड़ कर ऊपर की तरफ़ यानी नूरानी देश में जाने के वास्ते सिर्फ़ एक ही सच्चा और सहज और क़ुदरती जतन मुक़र्रर है और वह यह

१—ख़ुशक़िस्मती । २—छुटकारा । ३—अधिकता । ४—मूर्खता ।

है कि रोशनी की धार को, जो कि चैतन्य की धार है, पकड़ कर ऊँचे देश की तरफ़ चलना शुरू करे। वह रोशनी और चैतन्य की धार शब्द और रूह यानी जान और अमृत की धार है। सो धुन की डोर पकड़ कर जहाँ से कि शब्द या नूर[१] या जान की धार आती है, उलट कर अपने घट में चलना और चढ़ना चाहिये।

७—जो कोई कहे कि हम रोशनी की धार को पकड़ के स्वरूप के आसरे निर्मल चैतन्य देश में पहुँच जावेंगे, यह बात मुमकिन नहीं है। इस तरकीब के साथ सिर्फ़ एक दर्जा तै[२] होवेगा, लेकिन जब भारी रोशनी नज़र आवेगी, तब उसके मंडल से गुज़रना मुश्किल या नामुमकिन हो जावेगा। और रोशनी में बहुत दर्जे हैं यानी माया के घेर में (जिसमें पिंड और ब्रह्माँड शामिल हैं) बसबब मिलौनी माया के, कमी बेशी होती चली गई है। सो इन दर्जों को तै करके निर्मल चैतन्य देश यानी हमेशा के नूरानी स्थान में पहुँचना, जहाँ अँधेरी किरणें और माया का गुबार[३] बिलकुल नहीं है, बग़ैर भेद रास्ता और स्थानों के स्वरूप के और मदद शब्द के अभ्यास के नामुमकिन है।

८—निर्मल चैतन्य देश हमेशा नूरानी[४] है। वहाँ स्याही यानी अँधेरा अथवा काल और माया का गुबार बिलकुल नहीं है। वह नूर और रोशनी सेत[५] रंग है। उस सेत का वर्णन कुछ नहीं हो सकता है और न इस लफ़्ज़ के कहने से किसी की समझ में उस सेत की कैफ़ियत आ सकती है।

१—प्रकाश। २—पार। ३—अँधेरा। ४—प्रकाशमय।
५—श्वेत, सफ़ेद।

९—महा निर्मल चैतन्य देश में रंग, रूप और रेखा नहीं है। सिर्फ़ नूर ही नूर है। और सत्तलोक से नीचे के देश में नूर थोड़ी बहुत स्याही यानी अँधेरी किरणों से मिला हुआ है।

१०—जितने रंग हैं, सब ब्रह्मांड और पिंड देश यानी दूसरे और तीसरे दर्जे में रचना के हैं और यह चैतन्य और माया यानी नूरानी और अँधेरी किरणों की मिलौनी से ज़ाहिर हुए। पहिले लाल रंग, फिर पीला रंग और फिर नीला रंग यानी श्याम रंग और यही रंग तीनों गुण सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के हैं। और बाक़ी के रंग इन तीनों की कमी और बेशी और मिलौनी से ज़ाहिर हुए। इस देश में जो सेत रंग है, वह किसी क़दर निर्मल है, पर थोड़ी सी श्याम किरणियाँ उसमें भी मिली हुई हैं और सब रंग इसी से प्रगट हुए।

११—रोशनी यानी नूर का इस क़दर तेज है कि इसके आसरे चलना और चढ़ना मुश्किल है और अजान[1] अभ्यासी को इसके दर्जे और कैफ़ियत की पहिचान करना भी मुमकिन नहीं है, लेकिन शब्द की धार को पकड़ के सहज सहज अभ्यासी चल सकता है और रोशनी के मैदानों और स्थानों को पार कर सकता है।

१२—अब ख़्याल करो कि अँधेरा यानी श्याम रंग और श्याम किरणें काल और माया का ज़हूरा[2] हैं। सो जहाँ तक अभ्यासी को अँधेरा और उजाला मिले या जहाँ तक कि श्याम रंग या अँधेरा थोड़ा या बहुत नज़र

१—नावाक़िफ़। २—प्रकाश।

आवे, वहाँ न ठहरे और अपना अभ्यास जारी रखकर ऊँचे देश की तरफ़ अपनी चाल शब्द और स्वरूप के आसरे जारी रखे। यह स्वरूप हर एक स्थान पर वक्त उतार सुरत के क़ुदरती रचा गया है और जब तक कि उस मंडल की रचना क़ायम है बराबर क़ायम रहेगा।

१३–पिंड देश यानी तीसरे दर्जे में प्रलय के वक्त रचना का अभाव[1] यानी सिमटाव हो जाता है। और महा प्रलय का असर जो कभी कभी होती है ब्रह्मांड तक पहुँचता है। महासुन्न के परे किसी क़िस्म की प्रलय का असर नहीं पहुँचता, यानी उसके ऊपर जो कुछ कि रचना है, वह अव्वल दर्जे यानी निर्मल चैतन्य देश में शामिल है और सदा एक रस क़ायम रहती है। और वही देश संतों का है, जहाँ काल क्लेश और जन्म मरण नहीं है।

१४–अँधेरे का ख़वास[2] है कि वह नूरानी[3] किरणों को निगल जाता है। इसी तरह काला कपड़ा या कम्बल रोशनी या बिजली की धार को खींचता है यानी अपने में जल्द जज़्ब कर लेता है या समा लेता है।

१५–सुरत चैतन्य नूरानी है और काल अँधेरा रूप है। इस वास्ते अपनी हद में यह हमेशा उसको निगलता उगलता रहता है, अपना रूप उसको नहीं बना सकता। यानी सुरत का और अँधेरे या काल का जौहर एक नहीं है और न यह दोनों आपस में तद्रूप[4] होकर मिल सकते

१—नाश। २—गुण। ३—प्रकाश की। ४—एक रूप।

हैं। पर अँधेरा सुरत को अपने पेट में धर लेता है। इसी सबब से रचना के तीसरे दर्जे में, जहाँ काल और माया का बहुत ज़ोर है, जन्म मरण जल्द होता है और जीवों को दुख और क्लेश भी ज़्यादा है, क्योंकि अमृत रूपी नूरानी किरणें यहाँ बहुत कम हैं और अँधेरी यानी ज़हरीली किरणियाँ बहुत हैं और यह हमेशा नूरानी किरणियों का आवरण[1] यानी ग़िलाफ़ हो जाती हैं।

१६—संहार[2] शक्ति काल का ख़वास है यानी हर एक चीज़ की सूरत को बदल देना या बिगाड़ देना, और स्वरूप उसका भयानक है। असल में सुरत को काल कुछ नुक़सान नहीं पहुँचा सकता, पर उसके ख़ोल यानी देह को खा जाता है क्योंकि वह उसी मसाले का बना हुआ है। इस सबब से सुरत हमेशा काल से डरती रहती है और यह आम बात है कि अँधेरे में सब को डर लगता है। इस सबब को जब तक कि सुरत अँधेरे के स्थान से यानी काल की हद से बाहर न होगी और संतों के हमेशा के नूरानी देश में नहीं पहुँचेगी, तब तक काल से निर्भय नहीं होगी यानी जन्म मरण का ख़ौफ़ काल की हद में बराबर लगा रहेगा।

१७—संतों ने और ख़ास कर परम पुरुष राधास्वामी दयाल ने मुफ़स्सिल[3] भेद काल और दयाल का मय[4] उसकी हद के बयान किया है। काल की हद में जितने स्थान हैं, वे सब प्रलय या महा प्रलय के समय ज़रूर

१—ढकने वाली। २—नाश करने वाली। ३—विस्तारपूर्वक। ४—साथ।

सिमट जावेंगे, यानी उनकी रचना का अभाव हो जावेगा। इस वास्ते लाज़िम हुआ कि काल की हद के पार ज़रूर जैसे बने तैसे हर एक जीव को जाना चाहिये, नहीं तो जन्म मरण नहीं छूटेगा और नीचे के देश में सुरत सरगरदाँ और परेशान भरमती रहेगी और कहीं विश्राम या सच्चा चैन नहीं मिलेगा।

१८—इस वास्ते राधास्वामी दयाल के मत में शामिल होकर भेद काल और दयाल देश का लेकर, जिस क़दर स्थान कि काल देश में हैं वहाँ से अभ्यास करके पार होकर, दयाल देश में पहुँचना और वहाँ राधास्वामी धाम में विश्राम करना चाहिये। तब कारज पूरा बनेगा, यानी तब सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल होगी।

शब्द १२ बचन ४१ सार बचन नज़्म

निरखो री कोइ उठकर पिछली रतियाँ ॥ टेक ॥

टेक

माया छलन तरँग मन रोकन, घट में कँवल खिलतियाँ।

अर्थ

पिछली चार घड़ी पहिले सूरज के निकलने से, सुबह तक, रात के वक्त अभ्यास करने से माया को छलने और मन की तरंग रोकने की किसी क़दर ताक़त आवेगी और घट में कँवल का भी दर्शन होगा।

कड़ी—१

सीतल सागर मीन मरम जस[1], न्हावत मल मल गतियाँ।

अर्थ

तब सुरत मछली की तरह सीतल सागर में स्नान

१—मरम जस—तरह।

करके सफ़ाई हासिल करेगी।

कड़ी—२

सिला उठाय कँवल दल फोड़त, तोड़त द्वार सुनत जहाँ बतियाँ।

अर्थ

पहिले परदे को उठाकर और श्याम कँवल का दल फोड़ कर यानी तीसरे तिल के अंदर सुरत ने धस कर शब्द की आवाज़ सुनी।

कड़ी—३

चमक जोत धारा धुन झकियाँ, मन माया कूटत जहाँ छतियाँ।

अर्थ

जोति की चमक और वहाँ की धुन की धार मालूम हुई और मन और माया वहाँ पर छाती कूटने लगे कि यह अभ्यासी सुरत हमारी हद से निकल गई।

कड़ी—४

हरख हरख धावत पद उत्तम, तम संसार सकल बिनसतियाँ।

अर्थ

और खुश होकर सुरत वहाँ से आगे को बढ़ती चली और संसार यानी त्रिलोकी की माया का अँधेरा दूर हुआ।

कड़ी—५

मौज निहार पुरुष घर पावत, धावत सुरत निरतियाँ।

अर्थ

राधास्वामी दयाल की मौज के अनुसार सुरत और निरत सत्तलोक की तरफ़ को दौड़ने लगीं।

कड़ी—६

पीवत अमी झकोल कँवल पद, केल करत सत मतियाँ।

अर्थ

सुरत ऊपर को चढ़कर और दसवें द्वार में अमी का रस लेती हुई और वहाँ से आगे बढ़कर सत्त शब्द के

साथ बिलास करती हुई चलती है।

कड़ी—७

को कह सके नाम की महिमा, संत बतावत जो गति पतियाँ।

अर्थ

संतों के नाम की महिमा कोई नहीं कर सकता है। वे आप ही उसकी गत और पत वर्णन करते हैं।

कड़ी—८

राधास्वामी कहत सुनाई, मूल मिलो चढ़ हटियाँ।

अर्थ

राधास्वामी दयाल समझा कर फ़रमाते हैं कि मूल पद[1] से मिलना चाहिये, रास्ते के मुक़ामात तै करके।

बचन— २२

चैतन्य को विशेष चैतन्य और महा चैतन्य से मेल करना चाहिये, न कि सामान्य चैतन्य और जड़ से

कड़ी नंबर ४ शब्द नंबर १० बचन १४ पोथी सार बचन (नज़्म)

कड़ी

"तू चेतन यह जड़ सब मिथ्या, क्योंकर मेल मिलानी"

१—इस लोक की रचना में मनुष्य सबमें श्रेष्ठ और विशेष चैतन्य है और हरचंद थोड़े फ़ायदे या कुछ काम लेने के लिये अपने से कम चैतन्य वालों से व्यवहार या बरतावा करता है, पर चाह उसकी हमेशा यही रहती है कि अपने से बढ़ कर या बराबर वालों से व्यवहार और बरतावा

१—राधास्वामी धाम।

करे, बल्कि जो कोई सबसे बढ़कर है, उससे मिलने और बरतावा करने की चाह सबके मन में बहुत ज़बर बनी रहती है।

२—कुल मनुष्य अपने से कम के साथ मिलना और बरतावा करना सिर्फ़ कोई काम लेने या कुछ धन और पदार्थ के फ़ायदे के लिये करते हैं। जैसे चौपायों के साथ दूध पीने और सवारी लेने या बोझा लादने या और कोई मेहनत और मशक़्क़त का काम लेने की नज़र से बरतावा किया जाता है और इसी तरह परिन्दों[1] को उनकी ख़ूबसूरती देखने या ख़ुश आवाज़ सुनने या और कोई क़िस्म का खेल या उनकी आपस में लड़ाई का तमाशा देखने के लिये पालते हैं। और ऐसे ही कीड़े मकोड़े वग़ैरह भी वास्ते तमाशा दिखाने या उनकी ख़ूबसूरती देखने और दिखाने की नज़र से पकड़ कर रक्खे जाते हैं और फल और फूल वाले और उम्दा लकड़ी के दरख़्तों की परवरिश[2] और निगहबानी[3] फल खाने और ख़ुशबू लेने और ख़ूबसूरती देखने और लकड़ी काम में लाने के लिये की जाती है और अनेक जड़ पदार्थों की और उनका खानों की निगहबानी और हिफ़ाज़त यानी रक्षा, उनकी पैदावार को अपने काम में लाने और बेच कर उससे धन पैदा करने की नज़र से की जाती है।

३—खुलासा यह है कि जितने चैतन्य यानी जानदारों और जड़ पदार्थों से, जिनका ज़िक्र ऊपर लिखा गया, जो

१—पक्षियों। २—पालन पोषण। ३—देख रेख।

कोई मनुष्य मेल करता है, वह सिर्फ़ कुछ काम लेने या धन पैदा करने के निमित्त[1] है और जितना जिससे फ़ायदा होता है, उसी क़दर उसके पालन या निगहदाश्त[2] में तवज्जह और धन ख़र्च करता है। इससे ज़्यादा मेल करने की ख़्वाहिश या और किसी क़िस्म की आशा उन जानवरों या जड़ पदार्थों से नहीं रखता।

४—लेकिन जो कोई आदमी कोई ख़ास गुण या जौहर रखता है या किसी गुण में सबसे ज़बर[3] है या विशेष धनवान या हुकूमतवान या अमीर या राजा है या विशेष ख़ूबसूरत है, तो उसके देखने और उससे मिलने की चाह सब मनुष्यों के दिलों में पैदा होती है और ऐसों से मिलकर निहायत ख़ुशी दिल में पैदा होती है और अपनी ख़ुश-नसीबी[4] समझी जाती है। और ख़ास कर राजों और अमीरों से मिल कर अपने तईं बड़ा आदमी ख़्याल करते हैं और इस मेल के हासिल करने के वास्ते तन, मन, धन उमंग के साथ ख़र्च करते हैं।

५—जो कुछ कि ऊपर लिखा गया है, यह सब दुनियावी कार्रवाई में दाख़िल है और जो कुछ कि इसमें फ़ायदा या ख़ुशी हासिल होती है, वह भी दुनियावी है। और मालूम होवे कि दुनियाँ के जितने फ़ायदे या ख़ुशी के काम हैं, वह सब परमार्थ के मुक़ाबले में तुच्छ और नाशमान हैं।

६—परमार्थी लाभ यानी फ़ायदा और परमार्थी ख़ुशी का इस क़दर भारी दर्जा है कि जिस किसी को यह सच्चा

१—लिए। २—देख रेख। ३—बढ़कर। ४—ख़ुशक़िस्मती।

सच्चा और पूरा हासिल होवे, तो फिर उसको किसी चीज़ की चाह बाक़ी नहीं रहेगी और सब रस और सुख और ख़ुशी दुनियाँ की उसकी नज़र में फीके मालूम होंगे। और वह मरतबा[1] और दर्जा सच्चे और पूरे परमार्थी को हासिल होता है कि जिसकी बराबरी कुल रचना में कोई नहीं कर सकता, यानी न तो इस लोक के भोग विलास और पदार्थ और राज और हुकूमत वग़ैरह सच्चे परमार्थी को लुभा सकते हैं और न ऊँचे लोकों के भोग और राज उसकी तवज्जह को अपनी तरफ़ खींच सकते हैं।

७—सच्चा और पूरा परमार्थी नाम सच्चे और कुल मालिक के आशिक़[2] यानी भक्त का है, सो उसकी नज़र में सिवाय अपने प्रीतम कुल मालिक के दूसरा नहीं ठहर सकता। वह भक्त अपने माशूक़[3] सच्चे मालिक के सिवाय दूसरे से मिलना या प्रीति भाव का बरताव करना भी नहीं चाहता, क्योंकि इस लायक़ उसकी नज़र में सिवाय सच्चे गुरू के, जिनकी मेहर और मदद से अपने प्रीतम का भेद और निशान और उससे मिलने का रास्ता और तरीक़ा मालूम हुआ है, और कोई नहीं मालूम होता। इस वास्ते उसकी प्रीति पहिले सतगुरु में और फिर सच्चे मालिक में, जो सतगुरु का निज रूप है, क़ायम होती है और दिन दिन बढ़ती जाती है, जब तक कि निज धाम में पहुँच कर सच्चे मालिक का दर्शन न पावे। और वहाँ पहुँचकर परम आनंद को प्राप्त होता है। और जहाँ किसी क़िस्म के कष्ट

१—ऊँची अवस्था। २—प्रेमी। ३—प्रीतम।

और क्लेश और दुख और धन्धा[1] और चिन्ता और फ़िक्र का नाम और निशान भी नहीं है, ऐसा भारी फल सच्चे परमार्थी को सच्चे परमार्थ की कमाई से मिलता है।

८—अब ख़्याल करो कि दुनियाँ में कोई मनुष्य किसी से नहीं मिलता है, जब तक कि थोड़ा बहुत अपना फ़ायदा और काम निकलता न देखे और न अपना तन, मन, धन वहाँ ख़र्च करता है। तो फिर किस क़दर अचरज और अफ़सास की बात है कि परमार्थ के हासिल करने के वास्ते जीव जड़ पदार्थों के सन्मुख दीन होवें या वहाँ तन, मन, धन लगावें, जैसे धातु या पाषाण[2] की बनी हुई मूर्त्ति या पिछले महात्माओं के किसी निशान या पोथी और ग्रन्थ या मकान या दरिया वग़ैरह की यात्रा[3] और पूजा करना या कोई दरख़्त या किसी और जानदार को (जो कि मनुष्य से बहुत नीचे दर्जे पर हैं) परमार्थी फ़ायदा उठाने की नज़र से बड़ा मान कर उसकी पूजा या यात्रा करना।

९—जब कि कुल दुनियाँ में लोग अपने से बड़े की मिलने की चाह रखते हैं और उसके लिए मेहनत और जतन बल्कि रुपये ख़र्च करते हैं, फिर परमार्थ में कुल मालिक से मिलने और उसको प्रसन्न करने की चाह ज़बर मन में होनी चाहिये। किस तरह लोग जड़ यानी बेजान चीज़ों या जानवरों की पूजा करना पसंद करते हैं कि जहाँ से कोई क़िस्म का जवाब रज़ामन्दी या ग़ैर रज़ामन्दी का नहीं मिल सकता है और न किसी तरह की

१—कारबार। २—पत्थर। ३—ज़ियारत।

हिदायत या उपदेश निस्बत कार्रवाई के होना मुमकिन है ?

१०—यह चाल आम तौर पर सब क़ौमों और मुल्कों में जारी है और कोई भी इस चाल को नापसंद नहीं करता या यह कि उसको नामुनासिब नहीं कहता, बल्कि और उसके जारी रहने में मदद देते हैं।

११—इससे मालूम होता है कि आम तौर पर जीवों के दिल में सच्चे और कुल मालिक के मिलने की सच्ची चाह नहीं है और जो कुछ कि लोग कार्रवाई करते नज़र आते हैं, वह या तो पैरवी[1] ख़ानदानी रस्म[2] की है या यह कि ऐसा ख़ौफ़ दिल में पैदा हुआ है कि पुरानी रस्म के मौक़ूफ़[3] करने में दुनियावी नुक़सान या किसी तरह का हर्ज न हो जावे।

१२—बल्कि बहुत सी क़ौमों और मुल्कों में ऐसा ख़्याल जम गया है कि सच्चे मालिक को कोई जान और पहिचान नहीं सकता और न उसके चरणों तक किसी की पहुँच हो सकती है। इस वास्ते सबकी तवज्जह का झुकाव कर्म और धर्म की तरफ़ या जीवों के उपकार के कामों में हो गया है और मालिक का खोज और उसके मिलने के रास्ते की तलाश किसी क़दर बंद हो गई।

१३—और जो किसी क़ौम में भेद और मुक़ाम मालिक का ज़ाहिर किया है तो उसके मिलने का रास्ता और जुगत ऐसी कठिन और ख़तरनाक बयान की है कि जिसकी कार्रवाई गृहस्थियों से नामुमकिन और विरक्तों से

१—अनुसरण। २—रिवाज। ३—बंद।

निहायत मुश्किल नज़र आती है, जैसे प्राणों का रोकना और चढ़ाना वग़ैरह। इस सबब से भी आम तौर पर खोज और तलाश सच्चे मालिक और उसके मिलने के तरीक़े का बंद हो गया।

१४—इस वास्ते बजाय सच्चे मालिक के, औतारों और महात्माओं और पैग़म्बरों और वलियों के निशान और मकान और तसवीरों और नक़्ल वग़ैरह की पूजा सब देशों में जारी हो गई और आम लोग उतनी ही ज़ाहिरी कार्रवाई करके तृप्त[1] हो गये।

१५—पर जो कोई कि सच्चा खोजी है और दर्द परमार्थ का यानी शौक़ मिलने अपने मालिक का मन में रखता है और इस दुनियाँ के हाल और चाल को देख कर चित्त उसका उदास हुआ है, वह कभी इस क़िस्म की पूजाओं में, जिनका ज़िक्र ऊपर लिखा गया, राज़ी नहीं होगा और जो कुछ कि कार्रवाई परमार्थ की उसको करनी मंज़ूर होगी, वह चैतन्य पुरुष की, जो परमार्थ में अपने से बढ़कर होगा, करेगा और वहाँ से उपदेश और हिदायत लेता हुआ अपना काम बनावेगा यानी रास्ता तै करके एक दिन सच्चे मालिक के दरबार में पहुँच कर अपना जन्म सुफल करेगा।

१६—जो इस क़िस्म के सच्चे परमार्थी जीव हैं, उन्हीं के वास्ते यह बचन कहा गया है। और जो कि भूल या भरम या अनजानता के सबब से आम लोगों के साथ

१—संतुष्ट।

परमार्थी कार्रवाई में शामिल हो गये हैं पर जिनके मन में सच्चा दर्द है, वे भी सच्चे अधिकारी हैं। वह इस बचन को सुन कर ग़फ़लत की नींद से जाग उठेंगे और सच्चे परमार्थ का तरीक़ा और चाल दरियाफ़्त करके उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई शुरू करेंगे। इन्हीं जीवों से यह कहा जाता है कि अपने से बढ़ कर चैतन्य पुरुष ढूंढ़ो और वह चैतन्य पुरुष वक़्त के सच्चे गुरू हैं। उनका सतसंग करके महा चैतन्य पुरुष का जो कि कुल मालिक है, पता और भेद लेकर उसकी प्राप्ति का जतन शुरू कर दो और कुल मालिक और सतगुरु की मेहर और दया को अपने अंतर और बाहर परखते हुए और प्रीति और प्रतीति चरणों में बढ़ाते हुए रास्ता तै करते जाओ। रफ़्ता रफ़्ता एक दिन काम पूरा बन जावेगा।

१७—और उन्हीं सच्चे परमार्थी जीवों को यह समझाया जाता है कि तुम चैतन्य हो और महा चैतन्य पुरुष अविनाशी[1] की अंश हो यानी उसका और तुम्हारा जोहर एक ही है और माया के रचे हुए भोग और पदार्थ, जिनका रस इन्द्रियों के वसीले से लेते हो, सब जड़ हैं और नाशमान। फिर तुम्हारा उनसे असली मेल नहीं है, इस वास्ते उनमें अपना बरतावा होशियारी के साथ रक्खो।

१८—उन भोगों से देह और इन्द्री और किसी क़दर मन को अहार यानी ताक़त मिलती है, पर सुरत यानी रूह को उनसे कुछ मदद या फ़ायदा हासिल नहीं होता।

१—अजर अमर।

बल्कि जो कोई ज़्यादातर बरताव इन भोगों में करेगा, तो उसकी सुरत और मन शिथिल[1] और गदले हो जावेंगे यानी उनकी सफ़ाई में बहुत ख़लल पड़ जावेगा और सुस्ती और तमोगुण यानी माया का नशा दिन दिन बढ़ता जावेगा और नतीजा उसका यह होगा कि वह शख़्स नीचे के दर्जे की रचना में गिरता जावेगा।

१६—इस वास्ते कुल मालिक दयाल और संत सतगुरु अपने सच्चे परमार्थी जीवों को यानी प्रेमी जन और भक्तों को होशियार करते हैं कि तुम चैतन्य हो और महा चैतन्य कुल मालिक की अंश हो। सो तुमको चाहिये कि अपने माता पिता महा चैतन्य से नाता जोड़ो और गहरा मेल पैदा करो, यहाँ तक कि उसके धाम यानी निर्मल चैतन्य और निर्माया[2] देश में पहुँच कर उसके दर्शनों का विलास और आनन्द हासिल करो।

और जड़ पदार्थों यानी माया रचित[3] भोगों से दिन दिन अपनी तवज्जह हटाते जाओ और सिर्फ़ ज़रूरत मात्र उनमें बरताव रक्खो, यानी इस क़दर कि जिसमें औसत दर्जे पर देह का गुज़ारा हो जावे और फ़ज़ूलियों[4] को जिस क़दर बन सके, कम और दूर करते जाओ।

२०—सिवाय सच्चे परमार्थी जीवों के बाक़ी कुल जीवों को, जो थोड़ा बहुत भी सोच विचार करके अपने नफ़े और नुक़सान की कार्रवाई की जाँच कर सकते हैं, कहा जाता है कि जब कि तुम सब कामों में अपना नफ़ा और

१—ढीले। २—माया से रहित। ३—बनाए हुए। ४—निरर्थक बातों को।

फ़ायदा सरीह[1] देख कर कार्रवाई करते हो और हमेशा अपने से बढ़कर बल्कि सबसे बढ़कर लोगों से मेल और बरताव करना चाहते हो, तो फिर परमार्थी कामों में क्यों ऐसी बेपरवाही और ढीलमढाल के तौर पर कार्रवाई करते हो कि ज़रा भी अपना नफ़ा हाल[2] या आइंदा का नहीं देखते और अंधाधुंध नादानों के साथ शामिल होकर अपना तन, मन, धन फ़ज़ूल और बेफ़ायदा ख़र्च करते हो।

तुमको मुनासिब है कि ऐसे का संग करो कि जिस के दर्शन और बचन से तुम्हारे मन और बुद्धि साफ़ होवें और हृदय की आँख दिन दिन खुलती जावे कि जिससे असली हाल और कैफ़ियत इस दुनियाँ की और भी बड़ाई और भारी नफ़ा सच्चे परमार्थ का नज़र में आता जावे और सत्य वस्तु को ग्रहण करते जाओ और धोखा देने वाले और नाशमान पदार्थों से हटते जाओ कि जिससे अख़ीर वक़्त पर पछताना न पड़े, क्योंकि उस वक़्त का अफ़सोस कुछ फ़ायदा न देगा। जो कुछ बने इसी ज़िंदगी में बनाओ, बल्कि जवानी के वक़्त से कार्रवाई सच्चे परमार्थ की शुरू कर दो और बुढ़ापे के वक़्त इसी ज़िंदगी में उसका फल थोड़ा बहुत देख लो जिससे अपने मरने के पीछे के फ़ायदे का हाल जीते जी मालूम हो जावे और कोई संदेह बाक़ी न रहे।

२१—यह बचन संत सतगुरु दया करते सुनाते हैं।

१—स्पष्ट। २—इस वक़्त का।

जिनका जल्द उद्धार होने वाला है, वे इसको शौक़ और ख़ुशी के साथ मानेंगे और जिनका अभी चक्कर जन्म मरण का बाक़ी है, वे नहीं मानेंगे, पर उनके हृदय में भी बीजा सच्चे परमार्थ का पड़ जावेगा और आइन्दा किसी वक़्त पर शाख़ और बर्ग[1] यानी डाल पत्ते पैदा करके रफ़्ता रफ़्ता फूल और फल देगा, यानी वे जीव भी एक दिन संतों के परमार्थ के भागी[2] हो जावेंगे।

बचन—२३

ध्यान में आसानी अभ्यास की और भजन में किसी क़दर कठिनता का वर्णन

१—अकसर अभ्यासी लोग शिकायत इस बात की करते हैं कि भजन में मन कम लगता है और गुनावन और ख़्यालात तरह तरह के बहुत उठा करते हैं। सबब इसका यह है कि मन अभी जैसा चाहिये साफ़ नहीं हुआ है यानी उसमें दुनियाँ की ख़्वाहिशें अनेक तरह के भोगों की धरी हुई हैं। जब भजन में बैठ कर तवज्जह शब्द की धार की तरफ़, जो ऊपर से नीचे को उतरती है, की जाती है, उस वक़्त जो ख़्यालात या चाहें ज़बर हैं, उन्हीं की गुनावन पैदा होती है और उस गुनावन के साथ सुरत की धार, बजाय आवाज़ को पकड़ के ऊपर की तरफ़ चढ़ने के, ज़बर तरंग के साथ नीचे को उतर आती है और उस ख़्याल में इस क़दर लिपट जाती है कि अभ्यासी को

१—पत्ते। २—अधिकारी।

अकसर ख़बर भी नहीं रहती कि मैं क्या कर रहा हूँ।

२—इलाज उसका यह है कि सतसंग चेत कर करे और बचनों को बिचार कर सोचे और समझे और मन में से फ़ज़ूल ख़्वाहिशें भोग बिलास की घटाता और हटाता जावे और सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की प्रीति और प्रतीति दिन दिन बढ़ाता जावे। जिस क़दर शौक़ तरक़्क़ी अभ्यास और प्राप्ति दर्शन का बढ़ाता जावेगा और संसार और भोगों की तरफ़ से तबीयत किसी क़दर हटती जावेगी, उसी क़दर सफ़ाई मन और सुरत की होती जावेगी और जब वक़्त अभ्यास के माया और काल मन और सुरत को अपनी तरफ़ भोगों का ललचाव[1] देकर खींचेंगे, तो निर्मल मन और निर्मल सुरत उस वक़्त होशियार होकर, भोगों की तरंग[2] और ख़्यालों को हटा कर बदस्तूर अपनी तवज्जह शब्द की धुन में रख कर चढ़ते रहेंगे।

३—जोकि ऐसी सफ़ाई के हासिल होने के लिये यानी मन से ख़्वाहिश भोगों की घटने या दूर होने के वास्ते निरंतर यानी बराबर अभ्यास शौक़ के साथ कुछ अरसे तक करना ज़रूर है और फिर भी कोई न कोई इन्द्री या पाँचों में से कोई न कोई दूत[3] बहुत ज़बर बना रहता है और ज़ोर उसका आहिस्ता आहिस्ता बहुत देर में घटता है, इस वास्ते मुनासिब और बेहतर मालूम होता है कि अभ्यास ऐसी हालत में कि जब भजन के वक़्त तरंगें काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार वग़ैरह या या किसी इन्द्री के विषय की ज़बर उठती होवें तब

१—लालच। २—लहर। ३—काम, क्रोध, लोभ इत्यादि।

अभ्यासी ध्यान पर ज़्यादा ज़ोर देवे यानी उसको ज़्यादा अरसे तक करे और भजन थोड़ी देर करे, यानी जिस क़दर थोड़ी बहुत सफ़ाई के साथ बन पड़े उतना ही करे और बाक़ी वक़्त अपने अभ्यास का सुमिरन और ध्यान में लगावे।

४—भजन के अभ्यास में मन और सुरत को शब्द की धार के आसरे, जो ऊपर से नीचे को आती है, चढ़ाना पड़ता है और इस सबब से जब कोई तरंग उठती है और उसका रुख़[1] नीचे की तरफ़ को है, तो शब्द की धार ज़बर तरंग के साथ, मन और सुरत को नीचे की तरफ़ रुजू होने[2] में मदद देती है और इस सबब से अभ्यासी को अपनी सम्हाल रखना कठिन हो जाता है।

५—लेकिन ध्यान के अभ्यास में जिस क़दर कि शौक़ और प्रेम है, उसी मुआफ़िक़ मन और सुरत की धार हृदय के मुक़ाम से उठ कर, अपने प्रीतम से मिलने या उसका दर्शन करने या उसके चरणों को स्पर्श करने के लिये, ऊपर को उस मुक़ाम की तरफ़, जहाँ कि ध्यान जमाया गया है, चढ़ती है। इस हालत में दूसरी क़िस्म की तरंग का पैदा होना और नीचे की तरफ़ को उसका झुकाव बन नहीं सकता, जब तक कि अभ्यासी आप ही ध्यान को छोड़ कर दूसरा ख़्याल न उठावे। और जो ऐसा करेगा तो उसका ध्यान और शौक़ प्रीतम से मिलने का ग़लत हो जावेगा।

१—रुझान। २—रुजू होने—उतरने।

६—खुलासा यह कि भजन के समय जो कोई ज़बर ख़्वाहिश मन में धरी हुई है, उसको शब्द की धार जगा[1] देती है और ध्यान के समय शौक़ और प्रेम की धार, जो अभ्यासी के हृदय से उठती है, वह और ख़्वाहिशों की तरंग को नहीं उठने देती यानी दबाये और सुलाये रखती है और जिस क़दर कि प्रेम ज़्यादा होगा, उसी क़दर और तरंगें ज़ईफ़[2] और कमज़ोर होती जावेंगी। इस सबब से ध्यान में अभ्यासी को आसानी से कार्रवाई करने का मौक़ा मिलता है और भजन में बग़ैर तीव्र[3] यानी ज़बर वैराग्य के भोगों की ज़बर ख़्वाहिश का रोकना और हटाना मुश्किल हो जाता है।

७—मतलब यह है कि ध्यान में अभ्यासी जिस क़दर कि प्रेम और शौक़ उसके दिल में है, उसी से थोड़ी बहुत कार्रवाई बग़ैर मुक़ाबला विरोधी[4] ख़्वाहिशों के कर सकता है और भजन में विरोधी ख़्वाहिशें जल्द जाग उठती हैं और ताक़त पैदा करके अभ्यासी के मन और सुरत की धार को जल्द नीचे की तरफ़ गिरा देती हैं।

८—सबब इसका यह है कि शब्द ज़्यादा सफ़ाई चाहता है और जब तक कि अभ्यासी के मन और सुरत में भोगों की चाह की मलीनता[5] धरी हुई है, वह उसको फ़ौरन् प्रगट करके मन और सुरत की मलीन धार को नीचे को गिरा देता है, यानी अपने सन्मुख से हटा देता है।

और ध्यान में इस क़दर फ़ायदा है कि शौक़ और

१—तेज़ कर। २—कमज़ोर। ३—तेज़। ४—विपरीत। ५—मैल।

प्रेम की धार, जो अभ्यासी के हृदय से उठकर ऊपर को रवाँ[1] होती है, वह अभ्यासी के मन और सुरत की धार को, जो प्रेम की धार के संग चलती है, निर्मल और साफ़ करती हुई ऊपर की तरफ़ को खींचती है और स्वरूप उस प्रेम की धार को ताक़त देता है और मिलने के शौक़ को बढ़ाता जाता है। और जिस क़दर कि वह प्रेम और शौक़ की धार ऊपर को चढ़ती जाती है, उसी क़दर ऊँचे देश का रस और आनन्द मिलता जाता है और शान्ति और शीतलता आती जाती है कि जिसके सबब से मलीन ख़्वाहिशें कमज़ोर होती जाती हैं और अभ्यास दिन दिन बढ़ता जाता है यानी एक धाम[2] से दूसरे और दूसरे से तीसरे और इसी तरह सत्तलोक तक ध्यान के वसीले से अभ्यासी अपनी सुरत की धार को गौण[3] अंग करके पहुँचा सकता है।

६-हरचंद कि ध्यान में किसी क़दर आसानी है, पर जो शौक़ चढ़ाई का और स्वरूप में थोड़ा बहुत प्रेम नहीं है या सुरत और मन किसी क़दर ऊँचे चढ़कर रस और आनन्द नहीं लेते, तो इस अभ्यास में भी गुनावन और ख़्यालात तरह तरह के उठते हैं और जब तक कि अभ्यासी के चित्त में किसी क़दर सच्चा वैराग्य[4] दुनियाँ की तरफ़ से और सच्चा अनुराग[5] सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और सतगुरु के चरणों में न होगा, तब तक उसके सुरत और मन गुनावन और ख़्यालात के संग

१—जारी। २—लोक। ३—अप्रधान रूप से। ४—संसार से उदासीनता। ५—प्रेम।

लिपट कर नीचे उतर आवेंगे और ध्यान दुरुस्त नहीं बनेगा और न कुछ रस और आनन्द आवेगा। इस वास्ते हर हालत में थोड़ा बहुत वैराग्य भोगों से और अनुराग चरणों में ज़रूर दरकार[१] है, तब अभ्यास दुरुस्त बन पड़ेगा और कुछ आनन्द भी प्राप्त होगा और तब आहिस्ता आहिस्ता तरक्क़ी भी होती जावेगी। और यह वैराग्य और अनुराग सतगुरु या साध के संग से आवेगा और साध से मुराद[२] सच्चे और प्रेमी अभ्यासी से है।

१०—ध्यान में इस क़दर आसानी है कि यह अभ्यास स्वरूप के आसरे किया जाता है और स्वरूप में प्रेम जल्द आ सकता है, चाहे वह स्वरूप मुक़ामी[३] है या गुरू का। और ज़ाहिर है कि जिस स्वरूप या जिस चीज़ में प्यार होता है, तो उसकी तरफ़ मन और सुरत की धार जल्द उठकर रवाँ[४] होती है। और भजन में शब्द की धार को पकड़ के शब्दी[५] की तरफ़ चलना बग़ैर सफ़ाई और गहरे प्रेम के मुश्किल है।

११—अंतरी यानी मुक़ामी स्वरूप का जब कभी मौज से अभ्यास के वक़्त दर्शन हो जाता है, तो फिर चाहे वह हर रोज़ प्रगट न होवे, उसका ख़्याल करके थोड़ा बहुत प्यार हृदय में पैदा हो सकता है। और गुरु स्वरूप का तो साक्षात्[६] दर्शन बाहर होता है, तो जो कोई उसका तसव्वर यानी ध्यान अंतर में करे और वह कभी कभी प्रगट हो जावे, तो उसमें विशेष प्यार जल्द आ सकता

१—आवश्यक। २—प्रयोजन। ३—किसी विशेष लोक का। ४—जारी। ५—शब्द के भंडार। ६—प्रत्यक्ष।

है। और जब कभी प्रगट न होवे तो उसका ख़्याल करने से भी (अगर मन में सच्चा प्यार और भाव है) किसी क़दर प्रेम हृदय में पैदा हो सकता है। और मालूम होवे कि जो स्वरूप गुरू का अंतर में प्रगट होता है, वह हाड़ मांस का नहीं है, बल्कि ऐन[1] चैतन्य है, क्योंकि चैतन्य मंडल में अंतरजामी पुरुष अपने प्रेमी और भक्तजन के निमित्त[2] गुरु स्वरूप का आकार[3] धारण करता है और वह चैतन्य आकारी[4] स्वरूप बराबर अभ्यासी के संग अगुवे[5] के तौर पर मदद देता जावेगा और जिस क़दर कि अभ्यासी ऊँचे मुक़ाम पर ध्यान करेगा, उसी क़दर वह स्वरूप भी ऊँचे देश में ज़्यादा निर्मल यानी सूक्ष्म और लतीफ़ और ज़्यादा नूरानी[6] होता जावेगा। ख़ुलासा यह कि गुरू का आकारी स्वरूप अभ्यासी के संग बराबर सत्तलोक तक रहेगा और रास्ते में मन और सुरत के सिमटाव और चढ़ाई में बराबर मदद देता जावेगा।

१२—यह गुरु स्वरूप चैतन्य और अविनाशी और देखने में आकार[7] सहित, पर असल में निराकार[8] है और जो अभ्यासी सेवक का गुरु स्वरूप में सच्चा प्यार और भाव है, तो यह स्वरूप हमेशा उसके संग रहेगा। और ज़ाहिर है कि इस स्वरूप के सामने कोई विघ्न मन और माया का ठहर नहीं सकता, बल्कि जब तक कि अभ्यासी के मन और सुरत इस स्वरूप के ध्यान या ख़्याल में लगे रहेंगे, तब तक दूसरा ख़्याल और किसी क़िस्म का पैदा

१—पूर्ण रूप से। २—लिए। ३—रूप। ४—गुरु के स्वरूप से मिलता हुआ रूप रेखा वाला। ५—पथप्रदर्शक। ६—प्रकाशमय। ७—रूप रंग रेखा। ८—बिना रूप रंग रेखा के।

नहीं हो सकता। इस तौर से माया और मन और काल और कर्म के विघ्न ध्यानी[1] अभ्यासी से दूर रहते हैं।

१३—जो सच्चा परमार्थी है, वह जिस वक़्त कि सतसंग में गुरू के सन्मुख जाता है, फ़ौरन् उसकी हालत बदल जाती है यानी दर्शन करते ही प्रेम हृदय में उमँगता है और दुनियाँ के ख़्याल उसी वक़्त दूर हट जाते हैं। और जिस क़दर देर तक कि गुरू के सन्मुख हाज़िरी रहती है, मन और सुरत दर्शन और बचन में सिमट कर लगे रहते हैं और अंतर में आहिस्ता आहिस्ता उनका खिचाव ऊँची तरफ़ को होता रहता है। फिर जब ऐसा अभ्यासी अपने अंतर में ध्यान या भजन के समय गुरु स्वरूप का ध्यान या ख़्याल करेगा, तब वही हालत उसकी जो बाहर गुरू के सन्मुख होती है अंतर में हो जावेगी यानी प्रेम उमँगेगा और संसारी ख़्याल और चाहें दूर हो जावेंगी। फिर ऐसी हालत में ध्यान का रस और आनन्द निर्विघ्न[2] मिलेगा और शब्द भी, जो कि अंतर में हर वक़्त मौजूद है, आसानी से प्रगट होकर गुंजारने लगेगा और उस वक़्त अभ्यासी को इख़्तियार होगा कि चाहे धुन में लग जावे या स्वरूप का रस लेवे या दोनों कामों यानी भजन और ध्यान को मिला कर उनका रस लेवे।

१४—संतों ने और राधास्वामी दयाल ने ख़ासकर अपनी बानी में प्रेम पर ज़्यादा ज़ोर दिया है। मतलब उसका यह है कि प्रेम की मदद से काम जल्द और

१—ध्यान करने वाले। २—बिना किसी विघ्न के।

आसानी से बन सकता है और निरे वैराग्य से इस क़दर फ़ायदा हासिल नहीं हो सकता और न निरी[1] समझ बूझ मत की ऐसा फ़ायदा दे सकती है।

कुल काम दुनियाँ के शौक़ और मुहब्बत से चल रहे हैं और जहाँ किसी का शौक़ और प्यार नहीं है, वहाँ उससे कुछ कार्रवाई नहीं हो सकती। इस वास्ते सब जीवों को चाहिये कि सच्चे और पूरे परमार्थ के हासिल करने के लिये सच्चे मालिक के चरणों में सच्चा प्रेम लावें। और जोकि कुल मालिक अरूप[2] है और किसी को दर्शन उसका पहिले हो नहीं सकता, इस सबब से उसमें प्रेम करना मुश्किल है। लेकिन जो कोई पहिले गुरु स्वरूप में प्यार लावे और फिर गुरू के निज स्वरूप से मिलने का जतन करना शुरू करे, तो उसका प्यार अरूप पद में आहिस्ता आहिस्ता पैदा होता और बढ़ता जावेगा। और सच्चे गुरू उपदेश के वक़्त भेद उस निज रूप का देंगे जो कि अकह[3] और अपार और रूप रंग रेखा से न्यारा है और उनका और सेवक का और कुल रचना का वही निज रूप है। तब इस तौर पर भेद को समझ कर और रास्ते की मंज़िलें और ठेके[4] दरियाफ़्त करके अभ्यासी चलना शुरू करेगा और जो प्रेम उसे गुरु स्वरूप में आया है, वह उलट कर उनके निज स्वरूप में लगता और बढ़ता जावेगा और इस तरह एक दिन कारज उसका पूरा बन जावेगा।

१५—कुल मतों में जो कि दुनियाँ में जारी हैं, यही

१—सिर्फ़। २—निराकार। ३—अवर्णनीय। ४—रुकने के स्थान।

कसर नज़र आती है कि या तो नक़्ली और जड़ रूप में मिस्ल[1] मूरत और तसवीर और निशान और ग्रन्थ वग़ैरह के अटक गये और असल का खोज न किया और या अरूप का थोड़ा बहुत भेद सुन कर और बुद्धि से समझ कर और आप को वही लक्ष्य[2] स्वरूप मान कर तृप्त हो गये और उस अरूप के देश की ख़बर और मिलने की जुगत न पाकर इस माया के देश के समान[3] चैतन्य को व्यापक ठहरा कर उसके साथ एकता कर बैठे[4]। और इस तरह दोनों गिरोह ने भारी धोखा खाया कि न इधर के हुए न उधर के, यानी सच्चे मालिक का पता और भेद न पाकर उससे मिलने का जतन न करके परम और अमर आनन्द को प्राप्त न हुए और इस दुनियाँ में भी अपनी मनमुखी करतूत के सबब से सुख और चैन न पाया यानी चौरासी की भरमना न मिटी।

१६—यह लोग गुरू की महिमा ज़बानी करते हैं और पुराने आचार्य्यों ने अपने ग्रन्थों में साफ़ साफ़ और खोलकर ज़ोर के साथ लिखी है, पर यह लोग ब-सबब न मिलने सच्चे गुरू के, उस महिमा के मुआफ़िक़ कार्रवाई नहीं करते और इसी सबब से प्रेम से ख़ाली फिरते हैं और सिद्धान्त[5] पद की पहुँच और प्राप्ति नहीं होती।

१७—इख़्लाक़[6] और धर्म और परोपकार और सच बोलने वग़ैरह की चाहे जिस क़दर बड़ाई बयान की जावे, पर उसके मुआफ़िक़ बरताव करना और रहनी रहना बग़ैर

१—मानिन्द। २—आराध्य। ३—सामान्य, साधारण। ४—एकता कर बैठे—बराबर समझने लगे। ५—इष्ट। ६—सदाचार।

अंतरमुख अभ्यास के कि जिससे मन और सुरत इन्द्रियों के घाट से हट कर प्रेम और ज्ञान के स्थान पर अंतर में पहुँचें, किसी सूरत और किसी शक़्ल से ज्यों का त्यों मुमकिन नहीं है। एक वक़्त में चाहे जैसा त्याग और वैराग्य कोई दिखला देवे, पर वह हालत जब तक कि अंतर में घाट नहीं बदलेगा, कभी एक रस[1] क़ायम नहीं रह सकती। इस वास्ते बजाय धर्म और इख़लाक़ और पर-उपकार वग़ैरह पर ज़ोर देने के मुनासिब है कि वह जतन किया जावे कि जिससे प्रेम मालिक के चरणों में पैदा होवे और उससे मिलने की चाह, निर्माया[2] देश में कुल रचना के परे, प्रगट होकर उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई शुरू की जावे, तो आहिस्ता आहिस्ता यह गुण भी यानी धर्म और इख़लाक़ वग़ैरह ऐसे अभ्यासी में आपही आप बरतने लगेंगे। और प्रेम, जो कि कुल रचना की जान है और महा निर्मल देश में जिसका असली बासा है, प्रगट होकर कुल[3] सफ़ाई कर देगा और सब विकारों[4] को हटा देगा और ऐसा प्रेमी निज देश में, जो कुल मालिक का धाम है, बासा पाकर परम आनन्द को प्राप्त होगा।

१८—इस बचन से ऐसा नहीं समझना चाहिये कि भजन करना मना[5] है या ओछा काम है, बल्कि उसको दुरुस्ती से करने के वास्ते मन में सफ़ाई और प्रेम पैदा करना चाहिये। इस क़दर समझ इस बचन से लेनी चाहिये कि जब कभी भजन में नापाक[6] गुनावन और बुरे

१—एक रस—एक समान। २—माया से रहित। ३—पूरी ४—दोषों। ५—रोका गया। ६—अपवित्र।

ख़्याल या अपवित्र और पाप की भरी हुई तरंगें बारम्बार उठें, तो ऐसी हालत में भजन कम कर देना चाहिये और बजाय उसके ध्यान का अभ्यास ज़्यादा करना चाहिये और संत संग्रह भाग पहिले में से काम, क्रोध और मन, माया और साध और मृतक का अंग पढ़ कर और उसके मतलब को विचार कर अपने मन को धिक्कार देकर समझाना चाहिए कि आइंदा अपवित्र और नामुनासिब तरंगें न उठावे और राधास्वामी दयाल और सतगुरु की अप्रसन्नता और पाप कर्मों के दुखदाई फल का डर दिला कर, मन को होशियार और सफ़ाई की तरफ़ रुजू करना[1] चाहिये। जब मन सफ़ाई और प्रेम के साथ कार्रवाई करने लगे, तब भजन का वक़्त जिस क़दर मुनासिब हो बढ़ा दिया जावे, नहीं तो ध्यान का अभ्यास बदस्तूर ज़्यादा किया जावे और उसके बाद थोड़ी देर के वास्ते भजन का अभ्यास भी जारी रहे।

१६—जिस किसी की ऐसी हालत है कि जब भजन में बैठे, तब ही नाक़िस[2] और नामुनासिब तरंगें उसके मन में प्रगट होकर उसके भजन को ख़राब करती हैं और शब्द का रस नहीं लेने देतीं और वह शख़्स उन तरंगों को अपने बल से नहीं रोक सकता या विषयों[3] के ख़्याल के आधीन होकर उन तरंगों को रोकना नहीं चाहता, तो उसको चाहिये कि भजन बिलकुल मौक़ूफ़[4] कर दे या सिर्फ़ दस मिनट करे और मन और माया और काम, क्रोध

१—रुजू करना—झुकाना। २—ख़राब। ३—भोगों। ४—बंद।

वग़ैरह के अंगों का पाठ समझ समझ कर, संत संग्रह भाग पहिले में से रोज़मर्रह[1] करे, और भी शब्द हुक्मनामे को– "चेतो मेरे प्यारे तेरे भले को कहूँ" रोज़ दो मरतबा पढ़े और सिर्फ़ सुमिरन और ध्यान करता रहे। और जब तक इस अभ्यास से मन और सुरत उसके किसी क़दर निर्मल और साफ़ न होवें, तब तक शब्द का अभ्यास यानी भजन मुल्तवी[2] रक्खे और संसार में और परमार्थ में बहुत होशियारी और डर के साथ बरताव करे कि जिसमें पाप कर्म उससे न बने और न उनके ख़्याल अंतर में उठें, नहीं तो भारी हर्ज उसके परमार्थ की कमाई में होगा।

बचन– २४

वर्णन निर्मल और कपट या लपेट की भक्ति का

१–निर्मल भक्ति उस सच्चे प्रेम को कहते हैं जो सच्चे मालिक के चरणों में उसके दर्शनों की प्राप्ति के निमित्त[3] सच्चे दर्दी परमार्थी के मन में पैदा होवे और सतगुरु और साधगुरू और साध यानी प्रेमी जन का संग करके दिन दिन बढ़ता जावे।

२–कपट और लपेट की भक्ति उसको कहते हैं कि जो किसी दुनियाँ के मतलब के हासिल होने के निमित्त या सिद्धि और शक्ति की प्राप्ति की आस धर कर या किसी के दबाव से या किसी की नाराज़गी या किसी क़िस्म के

१—हर रोज़। २—कुछ समय के लिये बंद। ३—लिए।

नुक़सान के डर से या किसी की ख़ातिरदारी और ख़ुशामद या उसको अपनी तरफ़ मुतवज्जह[1] करने की ग़रज़ से संत सतगुरु या मालिक के चरणों में की जावे। ऐसी भक्ति जब कोई मतलब पूरा हो जावेगा या जब कि दबाव और डर नहीं रहेगा, तब घट जावेगी या बिलकुल जाती रहेगी।

३—निर्मल भक्ति, चाहे थोड़ी हो या कच्ची हो, वह सतगुरु और प्रेमी जन के सतसंग और अंतर अभ्यास की मदद से दिन दिन बढ़ती और पकती जावेगी और सच्चे मालिक और सतगुरु की दया उस भक्त पर दिन दिन विशेष होती जावेगी और उसका असर अंतर और बाहर वह सच्चा भक्त देखता जावेगा, यानी अभ्यास में रस और आनन्द और परचे[2] मिलते जावेंगे और अंतर और बाहर रक्षा और सम्हाल होती हुई उसको मालूम होती जावेगी।

४—कपट और लपेट की भक्ति करने वाला अंतर अभ्यास बहुत कम करेगा, लेकिन बाहर की कार्रवाई में बड़े शौक़ और जोश के साथ शामिल होवेगा और अपने मतलब के थोड़ा बहुत हासिल हो जाने को ही दया समझ कर आइन्दा को कार्रवाई ढीली या बंद कर देगा।

५—संतों के सतसंग में सिर्फ़ कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की महिमा और उनके दर्शन और धाम की प्राप्ति के निमित्त जो जतन कि मुक़र्रर किया गया है उसी का वर्णन किया जाता है और उस सतसंग की रक्षा कुल मालिक आप करते हैं। इस सबब से जो जीव कि

१—आकर्षित। २—तजरुबे।

सच्ची और निर्मल भक्ति करते हैं, उनको मदद और तरक्क़ी दिन दिन मिलती जाती है और जो कि कपट और लपेट की भक्ति करते हैं उनको सतसंग में बराबर ठहराने की मौज नहीं होती है क्योंकि सतसंग को गदला[1] करना मंज़ूर नहीं है। लेकिन ऐसे जीवों के हृदय में सच्चे परमार्थ का बीजा डालना मंज़ूर है और इस वास्ते जब तक कि वे लपेट की भक्ति के आसरे सतसंग में शामिल रहें, तब तक उनको बचन सुना कर बहुत कुछ गढ़त[2] उनके मन और बुद्धि की की जाती है और जो थोड़ा बहुत भी भाग्यवान् परमार्थ का है, तो जहाँ तक मुमकिन होता है संत सतगुरु अपनी मेहर और दया से कपट और लपेट को हटा कर उसकी भक्ति निर्मल कर देते हैं और फिर वह भी सच्चे और निर्मल प्रेमियों में शामिल होकर अपने घट में अभ्यास का रस और आनन्द लेकर और निर्मल परमार्थ की क़दर और महिमा जान कर और अपनी पिछली हालत पर शरमा कर और पछता कर सच्ची भक्ति में दिल और जान से क़दम रखता है और अपने सच्चे मालिक और सतगुरु को रिझाने[3] और अपने ऊपर मुतवज्जह करने का शौक़ दिन दिन उसके दिल में बढ़ता जाता है।

६—इस वास्ते भक्तों की चार क़िस्म मुक़र्रर करी हैं—पहिला गुरुमुख कि जिसको सतगुरु की किसी क़दर पहिचान और परख आई और तन मन धन से पूरी भक्ति कर रहा है, दूसरा खोजी परमार्थी कि जो सच्ची और

१—मैला। २—दुरुस्ती। ३—प्रसन्न करने।

निर्मल चाह परमार्थ की लेकर सतगुरु के चरणों में आया और सतसंग करके दिन दिन अपनी समझ बूझ और प्रेम और अभ्यास को बढ़ाता जाता है, तीसरा आरती[१] जो कोई तकलीफ़ या बीमारी या किसी क़िस्म के दुख और क्लेश से निहायत दुखी होकर चरणों में आया और वास्ते दूर होने दुख के दया माँगता है और हित चित से सतगुरु का दर्शन करता है और बचन सुनता है और जब मौज से उसकी तकलीफ़ या रोग दूर हो गया तब परमार्थ की महिमा समझ कर निर्मल भक्ति करने लगा और फिर वह भी सच्चे परमार्थियों के ग़ोल[२] में दाख़िल हो गया और चौथा स्वार्थी जो कि दुनियाँ के कोई मतलब या काम बनाने के इरादे से संतों के सतसंग में आया और होशियारी से बचन सुनता रहा और सच्चे भक्तों के साथ भक्ति के सर्व[३] अंगों में शौक़ के साथ बरताव करता रहा और जब मेहर और दया से वह काम उसका थोड़ा बहुत बन गया, तब उमंग के साथ सच्चा और निर्मल परमार्थ कमाने लगा और दुनियाँ के मतलब और कामों को तुच्छ और ओछा देख कर अपनी पिछली सकाम[४] भक्ति की हालत पर अफ़सोस करके आइन्दा को निर्मल भक्ति करने लगा और सच्चे प्रेमी और भक्तों के ग़ोल में दाख़िल हो गया।

७—आरती और स्वार्थी जीवों को भक्तों को ज़ैल[५] में इस सबब से दाख़िल किया कि इनमें से बाज़े सच्ची

१—आर्त्त, दुखी। २—गिरोह। ३—सभी। ४—संसारी वासना के अधीन। ५—श्रेणी।

और निर्मल भक्ति में शामिल हो जाते हैं और बहुतेरे अपनी आशा पूरन होने पर सतसंग छोड़ कर चले जाते हैं। जो सतसंग से अलहदा हो गये, उनके भी बीजा पड़ जाता है और कुछ अरसे बाद इसी जन्म में उनको सच्चा परमार्थी बना कर सतसंग में मिला देता है और नहीं तो दूसरे जन्म में ज़रूर सच्चे परमार्थी बन कर और सतसंग में सतगुरु के शामिल होकर कमाई करेंगे।

८—जीवों को मुनासिब है कि अपने मन की हालत दरियाफ़्त करके जहाँ तक मुमकिन होवे सच्ची और निर्मल भक्ति कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरणों में करें यानी दाता[1] से दाता ही को माँगें, और[2] दात[3] पर सिवाय इस क़दर के कि जो वास्ते औसत[4] दर्जे की गुज़रान[5] के ज़रूरी है, ज़्यादा तवज्जह न करें, तो मन और सुरत उनके निर्मल होते हुए अंतर में चरणों की तरफ़ चलेंगे और एक दिन माया के घेर से निकल कर निर्मल चैतन्य यानी निर्माया पद में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होंगे। और जो आशा सिर्फ़ दात की रही और वह दात माया के पदार्थ हैं और हमेशा क़ायम नहीं रह सकते, तो जो थोड़ी बहुत दात मिली भी तो वह ठहराऊ न होगी और न उसका भोग सदा एक रस प्राप्त होगा। और आख़िर को नतीजा यह होगा कि जिसने दात चाही और दाता का निरादर[6] किया, तो उसको न दाता मिला और न दात का पूरा पूरा सुख मिला

१—मालिक। २—दूसरी। ३—बख़्शिश। ४—साधारण। ५—निर्वाह। ६—अनादर।

और लपेट की भक्ति की कमाई मुफ़्त बरबाद गई।

९—अब समझना चाहिये कि जितने भोग मन और इन्द्रियों के हैं, वह सब जड़ और नाशमान हैं और माया देश की रचना में शामिल हैं। फिर जो कोई उनकी प्राप्ति के लिये जतन करेगा या तरंग उठावेगा, वह भी माया देश में रहेगा। इस सबब से देहियों के दुख सुख और जन्म मरण की तकलीफ़ से उसकी रिहाई[1] हरगिज़ नहीं होगी। इस वास्ते कुल जीवों को मुनासिब और लाज़िम है कि संसार के भोगों की चाह ज़रूरत के मुआफ़िक़ उठावें और ज़रूरत के मुआफ़िक़ उनकी सम्हाल और रक्षा करें और उनकी असली हालत और कैफ़ियत को समझ कर उनमें ऐसा भरोसा और चित्त का बंधन पैदा न करें कि जिससे उन्हीं की प्राप्ति के निमित्त[2] चाह उठाना और जतन करना फ़र्ज़ समझें और वही आशा सतसंग में और मालिक के चरणों में हर दम पेश करें, क्योंकि जो उनके मन और बुद्धि की ऐसी हालत रही तो उनकी सुरत माया के संग लिपटी रहेगी और भूल और भरम दिन दिन बढ़ते जावेंगे और परमार्थ की महिमा और उसकी क़दर उनके चित्त में कभी नहीं समावेगी और इसमें बहुत भारी हर्ज और नुक़सान उनके परमार्थ का होगा।

१०—जो जीव कि इस बचन को मान कर उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई शुरू कर देंगे, तो वे अलबत्ता सच्चे परमार्थ की दौलत पावेंगे और उन्हीं को सच्चा परमार्थी

१—छुटकारा। २ लिए।

समझना चाहिये। और बाक़ी के जीव जो जगत की आसा नहीं छोड़ना चाहते हैं और संसारी पदार्थों और भोगों में आसक्त[1] रहते हैं, उन्हीं का नाम दुंनियादार है और जब तक वे संतों के बचन के मुआफ़िक़ कार्रवाई नहीं करेंगे, तब तक वे मन और माया के जाल में फँसे रहेंगे और उनका उद्धार नहीं होगा।

बचन—२५

सच्चे परमार्थ की कमाई के वास्ते सच्ची और निर्मल चाह और प्यार और ख़ौफ़ ज़रूर है और जो यह बातें न होंगी तो जो कुछ कार्रवाई परमार्थ की की जावेगी, वह कर्म में दाखिल होगी, प्रेम और भक्ति की तरक़्क़ी नहीं होगी

१—दुनियाँ में विचित्र रचना हर एक खान[2] की यानी क़िस्म २ के जीव और बनस्पति वग़ैरह को देखकर, सोच और ग़ौर करने वाले मनुष्य को, बहुत भारी तमाशा कुल मालिक की क़ुदरत का नज़र आवेगा और ऐसे ही आसमानी रचना सूरज और चाँद और तारागण की और उनका दौरा कि जो सैकड़ों और हज़ारों वर्षों में ख़त्म होता है और चाल जो कि क़ायदा मुक़र्ररह[3] पर बराबर बेशुमार वर्षों से चली आई है और जारी रहेगी, देखकर भारी अचरज और रोब[4] और दबदबा कुल मालिक की महा बड़ाई और महा कारीगरी और महा शक्ति का दिल

१—बंधे। २—पैदायश की एक एक क़िस्म। ३—निश्चित। ४—शान।

में पैदा होगा। ऐसी भारी क़ुदरत और ताक़त और ऐसे ऊँचे दर्जे की रोशनी नज़र आवेगी कि उसको देखकर अक़्ल हैरान होगी और दृष्टि की ताक़त नहीं कि अदना[1] दर्जे के नूर[2] और रोशनी को भी बरदाश्त कर सके। ऐसी कैफ़ियत और हालत रंग बरंग रचना को देखकर, दिल बहुत जोश और शौक़ के साथ चाहेगा कि उस क़ुदरत का तमाशा नज़दीक से नज़दीक पहुँचकर देखे और रात दिन उसी की सैर करता रहे और उस सच्चे कुल कर्त्तार यानी मालिक के सन्मुख पहुँचकर दर्शन का बिलास और आनन्द हासिल करे।

२—और जब ऐसा सोच और विचार वाला मनुष्य दुनियाँ के सामान की नाशमानता और दूसरे हाल पर नज़र करेगा, तो उसका दिल एकाएक ख़ौफ़ लाकर ठंडा होकर भिच[3] जावेगा और यहाँ के सामान और कारख़ाने को दिल लगाने के लायक़ न देखकर खोज और तलाश इस बात की शुरू करेगा कि उस कुल मालिक का देश कहाँ है और वह मालिक कैसा है और कैसे मिले और जन्म मरण और दुख सुख के घेरे से निकलकर कैसे पार पहुँचे और अमर और परम आनन्द देश को कैसे प्राप्त होवे।

३—जब ऐसा शौक़ देखने सैर मालिक की क़ुदरत का और उसके दर्शनों का भी और ऐसा ख़ौफ़ इस संसार की हालत और कार्रवाई दुख सुख और जन्म मरण की कैफ़ियत को देखकर मन में पैदा होवे, उसको सच्चा खोज

१—घटिया। २—प्रकाश। ३—दब।

और दर्द परमार्थ का कहते हैं। ऐसे सच्चे खोजी को अबेर सबेर[1] यानी जल्द या थोड़े अरसे के बाद ज़रूर संत सतगुरु, जो कुल मालिक और उसके भेद से वाक़िफ़ हैं और नित्य उसके धाम में जाकर दर्शन का रस और आनन्द लेते हैं, मिलेंगे और भेद रास्ते का और जुगत चलने की बता कर अपनी मेहर और दया से उसको सब कैफ़ियत क़ुदरत की दिखलाते हुए एक दिन निज घर में पहुँचा देंगे। जिसके दिल में ख़ौफ़ और शौक़ इस क़िस्म का, जैसा कि ऊपर ज़िक्र हुआ, पैदा हुआ है, वही सच्चा खोज सच्चे मालिक का करेगा और कुल मालिक की दया और सतगुरु की मदद से रास्ता उसका जारी हो जावेगा।

४—ऐसे खोजी को जिस वक़्त संत सतगुरु भेद के बचन सुनावेंगे और जुगत चलने की समझावेंगे, तब उस खोजी को ज़रूर अंतर और बाहर एक क़िस्म का रस और आनन्द प्राप्त होगा और उस रस और आनन्द की चाट[2] पाकर दिन दिन वही ख़ौफ़ और शौक़ बढ़ता जावेगा और उस खोजी से कमाई यानी अभ्यास ज़्यादा कराता जावेगा और थोड़े अरसे में वह अभ्यासी अपनी हालत अंतर और बाहर बदलती हुई देखकर मगन[3] होता जावेगा।

५—जब तक इस क़िस्म का शौक़ और ख़ौफ़ या दोनों में से एक किसी के दिल में पैदा न होगा, तब तक उसको सतसंग में रस नहीं आवेगा और न उसका मन अभ्यास की तरफ़ तवज्जह करेगा, बल्कि इस संसार को ही

१—आगे पीछे। २—मजा। ३—प्रसन्न।

अपना देश और देह ख़ाकी[1] को अपना स्वरूप समझ कर भोगों में उसका झुकाव रहेगा और दुनियाँ प्यारी लगेगी और इस सबब से देह के संबंधी दुख सुख और जन्म मरण की तकलीफ़ उसको हमेशा भोगनी पड़ेगी।

६—अब समझना चाहिये कि यह संसार और उसके सब पदार्थ और भोग और यह देह और इन्द्रियाँ वग़ैरह सब नाशमान हैं, यानी हमेशा इनका रंग और रूप बदलता रहता है। और इसमें दुख और क्लेश विशेष[2] और सुख थोड़ा है। और चाहे किसी राजा और महाराजा और सेठ या साहूकार को सर्व भोग और सर्व पदार्थ इस संसार में हासिल भी हो जावें, तो भी वक़्त मौत के एक दम ज़बरदस्ती छोड़ने पड़ेंगे और उस वक़्त भारी दुख उनके वियोग[3] का सहना पड़ेगा और आइन्दा कर्मों के मुआफ़िक़ नीच ऊँच जोनों में भरमना और नाक़िस[4] करनी का फल भोगना पड़ेगा और वहाँ ऐसी हालत में कोई उसका सहाई और मददगार न होगा।

७—इस वास्ते कुल जीवों को, चाहे औरत होवे या मर्द, मुनासिब और लाज़िम है कि थोड़ा बहुत ख़ौफ़ और शौक़ कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों का अपने जीव के कल्याण के निमित्त[5] अपने दिल में पैदा करें और संत मत के मुआफ़िक़ प्यार और डर के साथ थोड़ी बहुत कार्रवाई सुरत और मन को आकाश में और उसके परे चढ़ाने की करें। इससे उन जीवों पर सच्चे और कुल

१—स्थूल। २—अधिक। ३—जुदाई। ४—ख़राब। ५—लिए।

मालिक राधास्वामी दयाल की दया आवेगी और आहिस्ता आहिस्ता उनके जीव का कारज बनना शुरू हो जावेगा और एक दिन धुर धाम में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त हो जायँगे।

८—जिस किसी के मन में थोड़ा भी प्रेम और भाव सतगुरु और मालिक के चरणों में आवेगा, तो सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल उसको आहिस्ता आहिस्ता अपनी दया से बढ़ाते जावेंगे और जब वह प्रेम और भक्ति गहरे हो जावेंगे, तब वह जीव विशेष दया का अधिकारी हो कर रफ़्ता रफ़्ता एक दिन परम पद में पहुँच जावेगा।

९—ऐसा प्यार और भाव और ख़ौफ़ कुल मालिक और सतगुरु और सतसंग की महिमा सुन कर और उस सतसंग में शामिल होकर आवेगा, क्योंकि वहाँ पर हर क़िस्म के बचन सुनने और समझने में आवेंगे और उनके असर से मन और चित्त की मलीनता[1] दूर होती जावेगी और घट में सफ़ाई और रोशनी बढ़ती जावेगी और नामुनासिब जगह या पदार्थों में उसकी प्रीति दिन दिन घटती जावेगी।

१०—जो सच्चा ख़ौफ़ या सच्चा प्रेम मालिक के चरणों में या सतगुरु की तरफ़ दिल में नहीं पैदा हुआ है, तो न सतसंग दुरुस्ती से बनेगा और न अभ्यास में मन लगेगा और इस वास्ते जो यह करतूत की भी जावेगी, तो वह नेम मात्र[2] या दिखलावे के लिये या कोई और

१—गंदगी। २—नेम मात्र—सिर्फ़ नियम पालन के लिये।

मतलब से की जावेगी और उसमें परमार्थी फ़ायदा बहुत कम मिलेगा, क्योंकि वह कर्म में दाख़िल होगी, भक्ति और प्रेम में शुमार नहीं हो सकती है।

११—भक्ति और प्रेम अंग के साथ जो काम किया जावे और उसमें कोई बासना या आसा संसारी मतलब की न होवे, तो वह करतूत मालिक के दरबार में क़बूल और मंज़ूर होती है और उसके एवज़[1] में दया और मेहर आती है कि जो दिन दिन प्रेम और भक्ति को बढ़ाती है और संसार और उसके पदार्थों की तरफ़ से सहज में चित्त उदास होता जाता है।

१२—लेकिन जो करतूत परमार्थी संसारी कामना लेकर या दिखावे या नेम[2] के तौर पर की जावे, तो उस में सुरत और मन शामिल नहीं होंगे या यह कि वह करतूत भक्ति अंग से ख़ाली होगी और इस वास्ते सिर्फ़ कर्म का फल उसमें मिलेगा।

१३—हर एक परमार्थी को मुनासिब है कि अपनी चाह और प्यार की जाँच करता रहे कि यह कोई संसारी मतलब के सबब से तो पैदा नहीं हुए हैं या उसकी वजह से इनमें कमी और ज़्यादती तो नहीं हुई है।

जब कभी ऐसा शक गुज़रे या थोड़ी बहुत मिलौनी मालूम पड़े, तो फ़ौरन् अपने मन की सफ़ाई करे यानी संसारी अंग को परमार्थ की चाह और प्यार से निकाल देवे, नहीं तो उसका परमार्थ गदला रहेगा और जैसी

१—बदले। २—नियम।

चाहिये तरक़्क़ी नहीं होगी, यानी सच्चे मालिक और सतगुरु का ख़ास प्यार और दया उस पर नहीं आवेगी। और यह भारी नुक़सान की बात है।

१४—ख़ौफ़ चाहे किसी सबब से पैदा हुआ होवे, जो वह जीव को परमार्थ की तरफ़ मुतवज्जह करे, तो उस हालत में जो परमार्थी करतूत, जैसे सतसंग और सेवा और ध्यान और भजन और सुमिरन और पाठ वग़ैरह बन पड़ेगा, वह सब सच्ची भक्ति में दाख़िल होगा यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल और सतगुरु उस करतूत को सच्ची परमार्थी कार्रवाई में दाख़िल फ़रमा कर उसके एवज़ में प्रीति और प्रतीति की दात बख़्शेंगे और यह दात[1] जीव को सच्चा परमार्थी बनावेगी और उसकी परमार्थी कार्रवाई को दिन दिन बढ़ावेगी और कुल मालिक और सतगुरु के चरणों में सच्चा प्यार और भाव उसके हृदय में पैदा कर देगी। इस वास्ते जो ख़ौफ़ कि जीव को परमार्थ में लगावे, चाहे वह किसी क़िस्म का है, हमेशा मुबारक[2] है और जिस किसी के दिल में वह पैदा होवे, वही बड़भागी जीव है और उसी का परमार्थी कारज एक दिन दुरुस्त बन जावेगा।

१५—यह कड़ी इस जगह मुनासिब और ज़रूर मालूम होती है—

"डर करनी डर परम गुरु, डर पारस[3] डर सार[4]।
डरत रहे सो ऊबरे, ग़ाफ़िल खाई मार॥"

इस कड़ी के अर्थ यह हैं कि डर जिस किसी के दिल

१—बख़िशश। २—शुभ। ३—पारस पत्थर की तरह। ४—उत्तम पदार्थ।

में आया, वह करनी का फल देगा यानी ज़रूर जीव से परमार्थी करनी करावेगा और नाक़िस[1] कामों से बचावेगा। इस वास्ते वह डर ऐन[2] करनी रूप है और वही डर गुरु स्वरूप है कि हृदय में जीव के बैठ कर उससे भलाई और बुराई की तमीज़[3] कराके, भलाई के कामों में लगावेगा और कुल मालिक के चरणों में दिलोजान से सेवा करावेगा और दिन दिन प्यार और भाव पैदा करके बढ़ावेगा। और फिर वही डर हृदय की सफ़ाई करता हुआ उसको लोहे से कंचन[4] बनावेगा और फिर वही डर सार यानी कुल का खुलासा और जौहर है। जिसके हृदय में वह बैठा, उस को सर्व अंग से निर्मल करके, जौहर कुल[5] से मिला देगा।

जिस किसी के दिल में ऐसा डर पैदा हुआ, वही माया के घेर के पार जावेगा और उसी का सच्चा उबार समझना चाहिये कि निर्मल चैतन्य यानी निर्माया[6] देश में पहुँच कर अपने सच्चे माता पिता कुल मालिक राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर परम आनंद को प्राप्त होगा।

और जिस किसी के दिल में किसी क़िस्म का ख़ौफ़ नहीं पैदा हुआ, वह बेहोश और ग़ाफ़िल रहेगा यानी जो करतूत कि अपने फ़ायदे के वास्ते उसको करना चाहिये, वह नहीं करेगा और इस सबब से नुक़सान उठावेगा और अपने पाप कर्मों का फल दंड भोगेगा।

१६—ख़ौफ़ में भी दर्जे हैं। पहिले बालकपन में माता पिता का डर जीव को फ़ायदे की तरफ़ मुतवज्जह

१—ख़राब। २—पूर्ण रूप से। ३—पहिचान। ४—सोना। ५—जौहर कुल—मालिक। ६—माया से परे के।

करेगा और नुक़सान से बचावेगा। इससे ज़्यादा उम्र में उस्ताद का डर जीव के हक़ में[१] मुफ़ीद[२] होगा, यानी उसकी बुद्धि को रोशन करेगा और समझ बूझ और नेक और बद[३] की तमीज़ को जगावेगा[४]। और जब विद्या और बुद्धि हासिल हो गई, तब हाकिम और बिरादरी का डर जीव को संसार और व्यवहार में सीधे रास्ते पर चलावेगा, यानी वाजिबी तौर पर कार्रवाई करना सिखावेगा। और जब दुनियाँ का हाल और उसकी नापायदारी[५] और पदार्थों की तुच्छ कैफ़ियत की थोड़ी बहुत ख़बर हुई, तब सतगुरु का उपदेश और ख़ौफ़ जीव को परमार्थ की तरफ़ लगावेगा और संसार और भोगों की तरफ़ से हटाता जावेगा और जब थोड़ा बहुत अंतरी अभ्यास बन आवेगा तब कुल मालिक का ख़ौफ़ इसकी तवज्जह को चरणों की तरफ़ खींचेगा और संसार और उसके सामान की तरफ़ से (जो कि एक दिन ज़रूर छोड़ना पड़ेगा) इसके चित्त को उदासीन और बेपरवाह कर देगा और तब इसका परमार्थी काम सब तरह दुरुस्त हो जावेगा और तब वह कुल[६] से सच्चा निडर हो जावेगा।

१७—जो कोई दर्जे बदर्जे इन ख़ौफ़ों में, जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ, नहीं बरता और जिसकी चाल ढाल निडर के तौर पर रही है, वह गुरू और मालिक का भी ख़ौफ़ नहीं मानेगा और इन दोनों जगह निडरताई के साथ बरताव करने में उसका सरासर नुक़सान होगा, नहीं

१—हक़ में—लिये। २—लाभदायक। ३—बुरा। ४—उत्पन्न करेगा। ५—नाशमानता। ६—सभी बातों।

तो जिस किसी के दिल में सच्चा ख़ौफ़ गुरू और मालिक का आया, वह उनकी दया के प्रताप से एक दिन तमाम रचना से निडर हो जावेगा।

माँ बाप और उस्ताद और हाकिम और बिरादरी का डर संसारी है और दुनियाँ कि कार्रवाई दुरुस्ती के साथ कराने के वास्ते ज़रूर दरकार[1] है, लेकिन परमार्थ में सिर्फ़ गुरू और मालिक का डर काफ़ी है। वह सब काम बना देगा और उनके मुक़ाबले में संसारी डर को पेश करना या उसके सबब से परमार्थी कार्रवाई में या गुरू और मालिक के हुक्म के बरताव में कसर करना या उनको छोड़ देना निहायत नामुनासिब और नादुरुस्त है और ऐसे संसारी डर के मानने वाले का भारी नुक़सान परमार्थ का होता है। इस जगह पर इस क़दर बयान करना ज़रूर है कि इस बचन में जहाँ कहीं लफ़्ज़ परमार्थ और गुरू का आया है, वहाँ मतलब सच्चे और पूरे परमार्थ और सच्चे और पूरे गुरू से है और ऐसा परमार्थ और ऐसे गुरू सिर्फ़ संत मत में, कि वही कुल रचना में सत्त[2] मत है, मिल सकते हैं।

बचन—२६

सतसंग अंतर और बाहर सम्हाल कर करना चाहिये, तब फल और फ़ायदा उसका प्रगट होगा

१—सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि सतसंग

१—आवश्यक। २—सच्चा।

होशियारी से करे, तब उसका फ़ायदा उसको प्रत्यक्ष मालूम होगा।

२—जब बाहर के सतसंग में शामिल होवे, तब चाहिये कि अपने नेत्रों से गुरू या साध के नेत्रों को (जो सतसंग के अधिष्ठाता यानी अफ़सर हैं) दृष्टि जोड़ कर ताकता रहे, चाहे वे उसकी तरफ़ देखें या नहीं और फिर चंद मिनट बाद मध्य में दोनों आँखों के यानी तीसरे तिल का ख़्याल करके दृष्टि को जमावे। जो इस तरह अभ्यास करने में आँखें पूरी पूरी खुली न रहें तो कुछ हर्ज नहीं।

३—इस तरह दृष्टि जोड़ के बैठने में दर्शन का भी रस आवेगा और बचन भी कुछ कैफ़ियत के साथ सुनने में आवेंगे यानी उनके अर्थ साफ़ और गहरे समझ में आवेंगे या यह कि उनके अर्थ का असर दिल पर ज़्यादा होगा और वह प्यारे लगेंगे।

४—इस तरह की बैठक ध्यान के अभ्यास में शुमार की जाती है और इस क़दर एहतियात[1] चाहिये कि कोई दूसरा ख़्याल किसी क़िस्म का दिल में न आवे, बल्कि जैसा कि बचन सुनता जावे, उसको उसी वक़्त अपने ऊपर घटा[2] कर अपने मन की हालत की जाँच करता जावे यानी विचार करे कि कौन अंग नामुनासिब उसके मन में धरा[3] है या बरताव में आता है और उसका नुक़सान उसी वक़्त समझ कर उसको सच्चे मन से त्याग करे। और जो अंग बेहतर और माक़ूल[4], बचनों से, मालूम होवे, उसकी बड़ाई

१—होशियारी। २—लगा। ३—रक्खा। ४—अच्छा।

अपने अंतर में उसी वक़्त तौल[1] कर सच्ची ख़्वाहिश के साथ ग्रहण करता जावे।

५—इस तौर पर इस अभ्यास की हालत में नाक़िस अंग के छोड़ने की ख़्वाहिश और माक़ूल यानी बेहतर अंग के ग्रहण करने की सच्ची चाह का असर दिल पर बहुत मज़बूत होता है, पर शर्त यह है कि इसी तरह पर मनन और विचार बचनों का, जो वक़्त सतसंग के सुनने में आवें, हर रोज़ जारी रहे, तो कोई दिन में बहुत सफ़ाई मन की हासिल होवेगी और अपने हाल की निरख और परख की ताक़त बचन सुनते सुनते आती जावेगी। और उसका यह फ़ायदा होगा कि सिवाय सतसंग के और वक़्तों में भी अपने मन की चाल की ख़बर और उसकी सम्हाल थोड़ा बहुत होती रहेगी और रफ़्ता रफ़्ता इस अभ्यास से होशियारी और सम्हाल की ताक़त बढ़ती जावेगी और ग़फ़लत और भूल घटती जावेगी।

६—जब कोई दिन इस तौर पर बाहर का सतसंग जारी रहेगा, तो अंतर का सतसंग भी किसी क़दर दुरुस्त हो जावेगा यानी ध्यान के वक़्त मन और सुरत चंचलता छोड़ कर स्वरूप और नाम में और वक़्त भजन के शब्द में एकाग्र होकर थोड़ी देर को जमने[2] लगेंगे और जब कोई गुनावन या किसी क़िस्म के ख़्यालात पैदा होंगे, तो अभ्यासी को जल्द उनकी ख़बर हो जावेगी और अपनी सम्हाल थोड़ी सी कोशिश से कर सकेगा, यानी उन

१—जाँच। २—स्थिर होने।

ख़्यालों को आसानी से दूर कर सकेगा। इसी तरह रफ़्ता रफ़्ता ध्यान और भजन का रस थोड़ा थोड़ा मिलना शुरू हो जावेगा और आइंदा को तरक़्क़ी होती जावेगी।

७—और जोकि ऐसे अभ्यासी को घंटे दो घंटे बाहर के सतसंग में बैठ कर मन और सुरत के सिमटाव और जमाव[1] का रस लेने की आदत हो जावेगी, तो जब सतसंग से अलहदा होगा तब उसी वक़्त जो वह ध्यान और भजन करेगा, तो ज़रूर उसके मन और सुरत आदत के मुआफ़िक़ अंतर में थोड़े बहुत निश्चल होकर अभ्यास का रस हासिल करेंगे। और यही अभ्यास और आदत रस और आनन्द के आसरे आहिस्ता आहिस्ता बढ़ती जावेगी और दिन दिन हालत भी बदलती जावेगी।

८—मालूम होवे कि अंतर के सतसंग में अभ्यासी को इस क़दर एहतियात और होशियारी दरकार[2] है कि भजन के वक़्त मन और सुरत, जिस क़दर मुमकिन होवे, धुन का रस लेते रहें और ध्यान के वक़्त नाम और स्वरूप में स्थिर होकर सिमट जावें और थोड़ा बहुत सिमटाव और जमाव का रस पावें। लेकिन यह हालत अंतर के सतसंग की उस वक़्त हासिल होगी कि जब अभ्यासी गुनावन और ख़्यालों को छोड़ कर धुन और रूप में लगेगा।

जो शौक़ तेज़ है और भोगों की तरफ़ से किसी क़दर चित्त में वैराग्य[3] है, तो मन और सुरत जल्द सिमट कर काम में लग जावेंगे, नहीं तो बाहर का सतसंग जो

१—एकाग्र होने। २—ज़रूरी। ३—संसार से उदासीनता।

इस तरकीब से कि जो ऊपर लिखी गई किया जावेगा, उससे बहुत मदद अंतर के सतसंग के वास्ते एकाग्र करने मन और सुरत के मिलेगी, यानी अंतर का सतसंग या अभ्यास किसी क़दर दुरुस्ती से बन पड़ेगा और आइन्दा आहिस्ता आहिस्ता तरक़्क़ी भी होती जावेगी।

९—और जो सच्चे परमार्थी जीव शौक़ भी तेज़ रखते हैं और किसी क़दर दुनियाँ से वैराग्य भी उनके चित्त में है और मौक़ा पाकर बाहर का सतसंग ऊपर की लिखी हुई तरकीब के मुआफ़िक़ करेंगे, तो उनको दोनों सतसंग में, यानी अंतर और बाहर, ज़्यादा रस मिलेगा और मन और सुरत उनके जल्द उमंग के साथ अभ्यास में लगेंगे और तरक़्क़ी भी ज़्यादा होती जावेगी।

१०—ऊपर की तरकीब के मुआफ़िक़ जो कोई परमार्थी जीव सतसंग करेंगे, उनकी हालत ज़रूर बदलती जावेगी यानी उन पर सतसंग का रंग चढ़ता जावेगा और नतीजा उसका यह होगा कि दिन दिन सतगुरु और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ती जावेगी और दुनियाँ और उसके सामान और उसका कारख़ाना दिन दिन उनकी नज़र में फीका पड़ता जावेगा और उस तरफ़ से तवज्जह हटती जावेगी, यानी ज़रूरत के मुआफ़िक़ कि जिसमें दुनियाँ में गुज़ारा औसत[1] दर्जे पर हो जावे, तवज्जह दुनियाँ के कारोबार में रहेगी और फ़ज़ूल चाह और फ़ज़ूल कोशिश उसके कामों में दूर हो जावेगी।

१—साधारण।

११—इसी तरह दिन दिन ऐसे परमार्थियों की मालिक के चरणों में नज़दीकी और मन और इन्द्रियों के घाट से (यानी दुनियाँ से) अंतर में किसी क़दर दूरी होती जावेगी।

यही मतलब सतसंग या परमार्थ की कमाई का है और सच्चे परमार्थियों को यह कैफ़ियत सच्चे मालिक की दया से ज़रूर हासिल होती जावेगी। इसकी परख वे आप बख़ूबी[1] कर सकेंगे और कुछ थोड़ी सी उन लोगों को भी, जो रात दिन शुरू से उनके संग रहते हैं, ख़बर पड़ेगी।

मालिक के चरणों में प्रेम की तरक़्क़ी का हाल निकटवर्ती[2] लोगों को ठीक नहीं मालूम हो सकेगा, लेकिन दुनियाँ और उनकी तरफ़ से अभ्यासी के चित्त के हटाव का हाल उनको थोड़ा बहुत ज़रूर मालूम हो जावेगा।

जो वे भी थोड़े बहुत परमार्थी हैं, तो ऐसी हालत अपने प्यारे रिश्तेदार की देखकर ख़ुश होंगे और उसमें प्यार और भाव ज़्यादा लावेंगे। और जो वे संसारी हैं तो ऐसी हालत देखकर अपने रिश्तेदार से नाराज़ होवेंगे और उसके परमार्थ की शिकायत करेंगे और आप उसके साथी न होंगे।

१२—जो लोग कि सतसंग करते हैं, पर न तो दर्शन में चित्त लगाते हैं और न बचन चेत कर सुनते हैं, उनकी हालत बहुत सुस्ती के साथ देर में बदलेगी। जब जब कोई बचन सुनने में आ जावेगा और उसका थोड़ा बहुत असर दिल पर होवेगा, तो थोड़े अरसे के लिये तवज्जह और

१—अच्छी तरह। २—पास रहने वाले।

मेहनत के साथ अभ्यास करेंगे और कुछ फ़ायदा भी हासिल होगा, लेकिन जब उस बचन का असर कम हो जावेगा, तब करनी में भी ढीले होते जावेंगे। फिर कोई दिन बाद जब, बसबब हुजूम[1] और शामिल होने बड़े आदमियों के, सतसंग में कोई बचन चित्त देकर सुनेंगे, फिर शौक़ के साथ करनी शुरू करेंगे और थोड़े दिन बाद फिर ढीले हो जावेंगे, लेकिन जो मौज से सतसंग कभी कभी ज़ोर शोर के साथ होता रहा, तो यह लोग भी होशियार होते रहेंगे और रफ़्ता रफ़्ता बराबर कार्वाई दुरुस्ती से करने लगेंगे। और तब उनकी भी हालत बदल जावेगी यानी परमार्थ का रंग चढ़ता जावेगा।

१३–कोई कोई ऐसे जीव भी सतसंग में आते हैं कि वे बचनों के वक़्त या तो गुनावन करते रहते हैं या दूसरे से आहिस्ता आहिस्ता बातें करते रहते हैं और जो यह काम न करें तो सो जाते हैं। इन जीवों की हालत ज़्यादा देर के बाद बदलेगी, यानी पहिले उनका चित्त कोई दिन में दर्शन और बचन में लगना शुरू होगा और फिर आहिस्ता आहिस्ता शौक़ और प्रेम बढ़ता जावेगा और करनी दुरुस्त होती जावेगी। तब हालत भी सच्ची बदलती जावेगी।

१४–खुलासा यह है कि जब तक जीव सच्चा होकर तवज्जह के साथ सतसंग नहीं करेगा, तब तक उसके मन और बुद्धि और इन्द्रियों की गढ़त[2] दुरुस्ती से[3] नहीं होगी

१—भीड़। २—दुरुस्ती। ३—दुरुस्ती से—ठीक तरह।

और न अंतर सतसंग यानी अभ्यास उससे दुरुस्ती से बन पड़ेगा और इस वास्ते उसकी पुरानी चाल ढाल भी नहीं बदलेगी। लेकिन इस क़िस्म के जीव भी कि जो हर रोज़ सतसंग में नेम से शामिल होते हैं पर अभी पूरी तवज्जह के साथ बचन नहीं सुनते, दुनियादारों से बेहतर हैं कि यह रफ़्ता रफ़्ता एक दिन प्रेमी हो जावेंगे और फिर दुरुस्ती के साथ करनी करके अपना काम सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया से बनवा लेंगे और संसारी लोग जो कभी सतसंग का दर्शन भी नहीं करते, दिन दिन माया के चक्कर में फँसकर नीचे के दर्जों में गिरते चले जावेंगे।

१५—सच्चे और पूरे गुरू यानी संत सतगुरु और उनके सतसंग की महिमा बहुत भारी है। जो कोई थोड़े बहुत भाव[1] के साथ कोई दिन भी उनके सतसंग में जैसे तैसे शामिल होगा, उसके भी उद्धार का रास्ता दया से जारी हो जावेगा, बल्कि जो कोई भाव से एक दिन भी सतसंग में शामिल होकर बचन सुनेगा, उसके भी किसी क़दर कर्म कटेंगे और सच्चे परमार्थ का बीजा उसके हृदय में बो दिया जावेगा और वह आइन्दा किसी न किसी वक़्त पर फले फूलेगा यानी संत सतगुरु के सतसंग में शामिल होकर भक्ति करके अपने जीव का कारज करा लेगा।

१६—इस वास्ते कुल जीवों को मुनासिब और लाज़िम[2] है कि जहाँ कहीं संत सतगुरु का सतसंग जारी होवे, वहाँ जैसे बने तैसे शामिल होकर अपने परमार्थ का भाग

१—श्रद्धा। २—ज़रूरी।

बढ़ावें। जो जीव कि थोड़े बहुत संस्कारी या अधिकारी परमार्थ के होंगे, उनको फ़ौरन् असर उसका मालूम होगा और शौक़ के साथ भक्ति में शामिल हो जावेंगे। और जो अधिकारी नहीं हैं, उनके हृदय में संत सतगुरु अपनी दया से बीजा परमार्थ का डाल देंगे कि वह आइन्दा उन जीवों को भक्ति में शामिल करके उनका कारज बनावेंगे।

१७—संतों की महिमा और दया का क्या वर्णन किया जावे कि अपने निंदकों[1] को भी दया से भक्ति दान बख़्शते हैं और अबेर सबेर यानी इसी जन्म में, ख़्वाह[2] आइन्दा के जन्म में, उनको भी सतसंग में शामिल करके और भक्ति और अभ्यास कराके मुक्ति पद या परम धाम में पहुँचाते हैं।

१८—सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल को ऐसी दया है कि जो कोई सच्चे मन से उनकी सरन में आया और भक्ति और अभ्यास सुरत शब्द मार्ग का करने लगा और प्रीति और प्रतीति चरणों में दिन दिन बढ़ाता जाता है, तो सिर्फ़ उसी का नहीं बल्कि उसके निज रिश्तेदार और प्यार वालों का जैसे माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई और भतीजों का भी उद्धार अपनी दया से फ़रमावेंगे। जो इनमें से कोई भक्ति में शामिल हो गया तो वह अपने वास्ते आप कमाई करने लगा और ख़ास दया का अधिकारी हो गया और जो कोई शामिल नहीं हुआ, तो उसके ऊपर राधास्वामी

१—बुराई करने वालों। २—या।

दयाल इस वजह करके कि वह उनके सच्चे प्रेमी भक्त की सेवा और दर्शन करता रहा और कभी कभी परमार्थी काम में मदद भी देता रहा है, अपनी तरफ़ से दया करके उसके उद्धार का रास्ता जारी फ़रमावेंगे।

१६—जिस क़दर जिस किसी को राधास्वामी दयाल के चरणों में भक्ति ज़बर है और सरन पक्की और मज़बूत है, उसी क़दर उसके कुटुम्बी और रिश्तेदारों पर बल्कि नौकरों पर भी दर्जे बदर्जे दया, वास्ते उनके उद्धार के, राधास्वामी दयाल फ़रमावेंगे।

२०—और जिस किसी की भक्ति बहुत ज़बर है, उसके दूर तक के रिश्तेदारों पर भी दया का असर, वास्ते उनके जीव के सुख और कल्याण के, पहुँचेगा। और जो कोई उसके ख़ास रिश्तेदारों में से जैसे माता, पिता, स्त्री, पुत्र, बहन, भाई और दादा और नाना, नानी और सास, ससुर में किसी का चोला[1] भी छूट गया है, तो जहाँ कहीं उसकी सुरत होगी, वहीं उसको दया का असर और फ़ायदा पहुँचेगा।

२१—और जिस किसी की भक्ति सर्व अंग करके पूरी और निहायत ज़बर है, तो आप तरन तारन हो जावेगा यानी उसको साध या संत गति जीते जी हासिल हो जावेगी और वह आप राधास्वामी दयाल की दया से जिस क़दर जीवों को चाहेगा उनका उद्धार कर देगा।

१—शरीर।

बचन— २७

जीवों को वास्ते बचाव तकलीफ़ और दुखों से और प्राप्ति सच्चे और अमर सुख और आनंद के, अपने घट में संतों की जुगत के मुआफ़िक़ स्वरूप का ध्यान और शब्द के सुनने का थोड़ा बहुत अभ्यास ज़रूर करना चाहिये

१—कुल जीव सुख और आराम चाहते हैं और दुक्खों से डरते और घबराते हैं और जो कोई किसी क़िस्म का जतन[१] वास्ते प्राप्ति सुख और घटने और दूर होने दुख के बताता है, तो उसको ख़ुशी से करने को तैयार होते हैं।

२—दुनियाँ में अनेक तरह के सुख हैं, लेकिन वह या तो इन्द्रियों के भोग हैं या मन को ताक़त और ख़ुशी देने वाले हैं, जैसे धन और मान बड़ाई और हुकूमत वग़ैरह। और यह सब नाशमान हैं और हमेशा कम और ज़्यादा होते रहते हैं और जीव का इनमें से कोई संगी और सच्चा मददगार नहीं है, यानी तकलीफ़ और भारी दुख और क्लेश और मौत के वक़्त में इनसे बहुत कम मदद और सहारा मिलता है। पर जीव मन और इंद्रियों के रस लेने में ऐसे ग़ाफ़िल हो जाते हैं कि उन सुक्खों को अपनी जिंदगी भर का संगी और आराम देनेवाला समझ कर सच्चे और अविनाशी[२] सुख की तलाश और

१—उपाय। २—हमेशा रहने वाले।

क़दर नहीं करते और बारम्बार धोखा खाकर आख़िर को हाथ मलते और पछताते रह जाते हैं।

३—इसी तरह दुख और क्लेश और मुसीबत भी तरह तरह की जीवों को सताती है। किसी किसी का थोड़ा बहुत उपाय या इलाज बन जाता है, पर बहुत से दुख और आफ़तें ऐसी हैं कि उनमें कोई जतन या तदबीर काम नहीं देती और आदमी निहायत लाचार होकर उनको भोगता है और बेइख़्तियारी[1] में रोता और चिल्लाता है।

४—संत दयाल ऐसी हालत जीवों की देखकर निहायत दया करके समझाते हैं कि यह दुनियाँ धोखे की जगह है और यहाँ के भोग और सुख तुच्छ और नाशमान और जीव को लुभा कर जड़ पदार्थों में फँसाने वाले हैं। इनसे होशियार रह कर सच्चे और परम आनन्द का खोज करके उसकी प्राप्ति के निमित्त[2] थोड़ा बहुत जतन इस ज़िन्दगी में अपने जीव के सच्चे कल्याण के वास्ते ज़रूर करना चाहिये। उसका फ़ायदा इसी ज़िंदगी में इस क़दर मालूम हो सकता है कि जब वह आनन्द (जोकि घट घट में भरपूर है) अपने इख़्तियार से कोई दिन के अभ्यास के बाद एक छिन में अपने अंतर में मिल सकता है, तो उसके रूबरू[3] कुल भोग संसार के (जो कि मन और इंद्रियों के विषय यानी रस देने वाले हैं) किसी क़दर फीके और तुच्छ नज़र आवेंगे और तबीयत उनकी तरफ़ तवज्जह कम करेगी और दिन दिन उस सच्चे और परम आनन्द के

१—बेबसी। २—लिए। ३—सामने।

बढ़ाने के वास्ते ज़्यादा कोशिश करेगी। और भारी तकलीफ़ और दुख के वक्त वह आनन्द बहुत सहारा देगा और मौत के वक्त ज़्यादा से ज़्यादा या पूरा हासिल होकर जीव को निहाल[1] कर देगा कि उसकी बराबर कोई खुशी इस दुनियाँ में नहीं है और न हो सकती है।

५—इस आनन्द का भंडार हर एक जीव के घट में मौजूद है और उसकी धारा भी पिंड की तरफ़ जारी है, पर जीव उससे बिलकुल बेख़बर हैं। इस सबब से वह निर्मल और गहरा रस नहीं ले सकते और तुच्छ और नाशमान रस के वास्ते, जो कि भोगों और अनेक जड़ पदार्थों से इन्द्री द्वारे किसी क़दर हासिल होता है, निहायत मेहनत और कोशिश करते हैं।

६—ज़ाहिर है कि जिस क़दर सुख और रस और आनन्द जीव को हासिल होता है, वह असल में सुरत चैतन्य की धार में है। तो उस भंडार में जहाँ से यह धारें निकली हैं, किस क़दर गहरा और विशेष रस और आनन्द होना चाहिये और उसके थोड़ा बहुत हासिल करने के वास्ते, हर एक जीव को, औरत होवे या मर्द, किसी क़दर तवज्जह और कोशिश करना ज़रूर और उसके हक़ में मुफ़ीद[2] मालूम होता है।

७—और जो कोई अपने घट में वास्ते प्राप्ति परम आनन्द के जतन नहीं करेंगे या संतों के बचन की प्रतीति न करके, सारी तवज्जह अपनी संसार के सुख और

१—पूर्ण संतुष्ट। २—लाभदायक।

आराम की प्राप्ति में लगावेंगे, तो उन जीवों को भारी तकलीफ़ और मौत के वक्त अपनी कार्रवाई की ख़बर पड़ेगी कि कैसा धोखा खाया और जमदूतों के हाथ से अनेक तरह के कष्ट और क्लेश सहने पड़ेंगे।

८—ऐसी भारी भूल इस दुनियाँ में पड़ी हुई है कि जीव इसी ज़िन्दगी में अपने प्यारों और भरोसे वालों के हाथ से धोखा खाते हैं और ख़ूब उनको जाँच हो जाती है कि कोई उनका सच्चा मददगार नहीं है कि जो आराम और तकलीफ़ के वक्त में एकसाँ बरते। फिर भी उनका झुकाव और खिंचाव उन्हीं लोगों की तरफ़ रहता है और इस सबब से बारम्बार अपनी कार्रवाई का फल भोगते हैं और उसमें दुखी सुखी होते हैं और अपनी कार्रवाई पर पछताते हैं और अफ़सोस करते हैं।

९—जो किसी को अंतर में विशेष सुख और आनन्द के मौजूद होने का यक़ीन न आवे और उसके लिये जतन करने को मन नहीं चाहे, तो सिर्फ़ इसी मतलब से कि दुख और क्लेश के वक्त सहारा और मदद मिले और आख़ीर यानी मौत के वक्त की तकलीफ़ न व्यापे[1] वह जुगत कि जो संतों ने, वास्ते छुड़ाने संसारी घाट के और चढ़ाने मन और सुरत के ऊँचे से ऊँचे देश यानी कुल मालिक के चरणों की तरफ़ की, बताई है, उसका अभ्यास ख़ौफ़ और शौक़ के साथ ज़रूर करे, क्योंकि दुक्खों से सब जीव डरते हैं और जहाँ तक मुमकिन होवे उनसे बचना या उनको दूर हटाना

१—होवे।

चाहते हैं ।

जो इस तरह कार्रवाई अंतर अभ्यास की थोड़ी बहुत बन पड़ेगी, तो फिर सुरत और मन अभ्यास करते करते अन्तर में रस और आनन्द ज़रूर पावेंगे और उस आनंद की थोड़ी बहुत चाट[1] पैदा होकर दिन दिन करनी ज़्यादा कराती जावेगी और ज़्यादा से ज़्यादा आनन्द पाकर पूरी पूरी प्रतीति संतों के बचन की आ जावेगी । तब वह जीव अपने भागों को सराहेंगे और संतों की दया और मेहर का शुकराना करेंगे ।

१०—संतों ने जो जुगत कि बताई है वह यह है कि शब्द यानी आवाज़ को (जो घट घट में भरपूर है) सुनते हुए और स्वरूप का ध्यान करते हुए अपने सुरत और मन को निज घट में ऊपर की तरफ़ थोड़ा बहुत चढ़ाना चाहिये और यह अभ्यास नित्त जारी रखना चाहिये । इसकी बरकत से[2] दिन दिन सफ़ाई होती जावेगी और मालिक के चरणों में प्रीति बढ़ती जावेगी और उसके साथ ही आनन्द भी दिन दिन ज़्यादा मिलता जावेगा और वह आनन्द सुरत को एक दिन उसके निज घर में पहुँचा कर छोड़ेगा और वहाँ पहुँच कर सच्चे मालिक का, जो कुल रचना का माता पिता है, दर्शन पावेगा और महा आनन्द को प्राप्त होवेगा और तब अपनी नर देही और संतों की भारी दया की महिमा जान पड़ेगी ।

११—धुर मुक़ाम या दयाल देश में पहुँचना तो

१—चस्का । २—बरकत से—फल स्वरूप ।

आहिस्ता आहिस्ता ज़्यादा अरसे में होगा, पर जिस क़दर जिस किसी के मन और सुरत अंतर में चढ़ेंगे, उसी क़दर वह संसार और उसके सामान से अलहदा होता जावेगा और मालिक के से ख़वास[1] उसमें आते जावेंगे और रस और आनन्द मिलता जावेगा और चिंता, फ़िक्र और ग़ोफ़ और तकलीफ़ और दुख वग़ैरह का असर दिन दिन कम और दूर होता जावेगा और एक दिन सच्चा निर्भय और अचिन्त[2] कर देगा कि जहाँ संसारी दुख सुख का असर नहीं पहुँचता है।

१२—यह संतों का अभ्यास इस क़िस्म का है कि जब जो कोई संसार के दुक्खों से डर कर अपने अंतर में ऊपर की तरफ़ को चलेगा, तो फ़ौरन् उसको थोड़ा बहुत सहारा मिलेगा, यानी जैसे कि बालक डर कर या कोई चोट खाकर अपने माता पिता की गोद की तरफ़ भागता है और वहाँ पहुँचते ही उसको सच्ची पनाह[3] और सहारा मिल जाता है, इसी तरह कुल मालिक के चरणों से अंतर में सुरत मिल कर, ताक़त और रस और सहारा और पनाह पा सकती है। इस वास्ते हर एक जीव को अपने आराम और कल्याण के वास्ते मुनासिब और लाज़िम है कि इस आसरे और मदद के ठिकाने को अपने अंतर में नित्त खोजते और उसका रास्ता काटते रहें, तो एक दिन संसार की तकलीफ़ और दुक्खों और जन्म मरण की आफ़त से बचकर परम और अमर आनन्द को प्राप्त होंगे।

१—गुण। २—चिन्ता रहित। ३—रक्षा का स्थान।

१३—जो किसी हालत में मन और सुरत शब्द में दुरुस्ती से न लग सकें, तो चित्त से स्वरूप का ध्यान ऊँचे स्थान पर करना चाहिये या अपने ख़्याल को उस मुक़ाम पर पहुँचा कर जमाना चाहिये। इस तरह तवज्जह ऊँचे की तरफ़ करने से ज़रूर थोड़ा बहुत सहारा अंतर में दया का मिलेगा।

बचन—२८

साध के संग की महिमा और उसका फ़ायदा, जो सच्ची दीनता और प्रेम के साथ संग किया जावे।

१—ऐसा कहा है कि साध के संग से कोटि[1] जन्म के पाप एक छिन में कट जाते हैं। यह बात ज़ाहिरा मुश्किल मालूम होती है, लेकिन जब ग़ौर किया जावे तब मालूम होवेगा कि यह कुछ अचरज की बात नहीं है, क्योंकि साध ने साधना[2] करके परम तत्त्व[3] को जाना और पहिचाना और पाया है और उसके आनन्द में मगन रहता है। जो कोई भाव के साथ उसके सन्मुख जावे, तो उसको दया करके थोड़ी चर्चा में वह जुगत समझा देता है कि जिससे कोई दिन के अभ्यास में जीव का सच्चा कल्याण होता हुआ मालूम पड़ता है। फिर जो यह जुगत किसी अधिकारी के अच्छी तरह समझ में आगई और वह उसकी कमाई करने को तैयार हो गया, तो करोड़ों जन्म के पाप जिनके सबब से संसार में बारम्बार देह धरता और भरमता

१—करोड़। २—अभ्यास। ३—परम तत्त्व—मालिक।

रहा है, उसी वक्त नष्ट हो गये यानी जब से कि साध के बचन का निश्चय करके अभ्यास शुरू कर दिया, उसी वक्त से चौरासी का फेरा[1] मिट गया और दिन दिन घर जाने का रास्ता खुलता और साफ़ होता चला। इस तरह वह अभ्यास उस जीव के कुल पाप कर्मों के नष्ट होने का कारण हुआ। ऐसी महिमा साध के संग की है।

२—साध उन्हीं का नाम है जिन्होंने साधना करके अपना काम पूरा बनाया है। जो कोई सच्ची दीनता और प्रेम के साथ उनका संग करे, उसको वह ऐसी सहज जुगत बता सकते हैं कि जिसकी कमाई से वह भी एक दिन उनके मुआफ़िक़ साध गति को प्राप्त हो जावे, पर संग निष्कपट[2] और हित[3] के साथ होना चाहिये यानी जैसे साध हिदायत करें उसी के मुआफ़िक़ कार्रवाई की जावे और शक और सन्देह और बेपरतीती को दख़ल न दिया जावे। जैसा सोना या चाँदी या राँगा पिघला कर जिस साँचे में डाला जावे वह उसी का रूप बन जाता है, इसी तरह जो जीव सच्ची दीनता और प्रेम के साथ निष्कपट होकर साध का संग करे, वह भी उनकी दया से साध बन जाता है।

३—सच्ची दीनता से मतलब यह है कि खोजी दर्दी सच्चे परमार्थ का ऐसा ग़रज़मंद होवे, जैसे बीमार हकीम और दवाई का मुहताज[4] है। जैसे हकीम कहता है, उसी मुआफ़िक़ दवा खाता पीता है और परहेज़ करता है।

१—चक्कर। २—बिना कपट के। ३—प्रेम। ४—अधीन।

या जैसे नौकरी का चाहने वाला हाकिम के सामने सच्चा दीन अधीन होता है यानी जो हाकिम हुक्म करे और काम सुपुर्द करे, उसको दिल और जान से दुरुस्ती के साथ अंजाम देता[१] है और हाकिम को राज़ी करने के वास्ते अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ पूरी मेहनत और कोशिश करता है। ऐसी सच्ची ग़रज़ जिस किसी के मन में पैदा हुई, वह सच्चे और पूरे परमार्थ के हासिल करने के लिये सर्व अंग से साध या संत के बचन को सुनेगा और मानेगा और तन मन से उसकी कार्रवाई यानी अभ्यास दुरुस्ती से करेगा। तब उनकी मेहर और दया से उसकी ताक़त बढ़ती जावेगी और दिन दिन उसका काम बनता जावेगा और वे उसको एक दिन अपने मुआफ़िक़ बना लेवेंगे।

४—इस वास्ते हर एक जीव को, जिसके मन में सच्ची और पूरी चाह अपने जीव के कल्याण की पैदा हुई है, मुनासिब है कि पहिले सच्चे और पूरे संत या साध का खोज करके उनके सन्मुख प्रेम भाव और दीनता के साथ जावे और चित्त देकर उनके बचन सुने और सिर्फ़ बचन से उनकी परख करे, यानी जो उनके दर्शन और बचन से इसके मन में सच्चे मालिक के चरणों में प्यार और भाव पैदा होवे और संसार और उसके पदार्थों की तरफ़ से किसी क़दर नफ़रत यानी उदासीनता चित्त में आवे और सच्चे मालिक के दर्शनों का चाव[२] दिन दिन बढ़ता जावे और जो जुगत कि वे बतावें, उसके अभ्यास से दिन

१—अंजाम देता—करता। २—शौक़।

दिन मन और सुरत पिंड और संसार की तरफ़ से हट कर ऊँचे देश की तरफ़ घट में चलते और चढ़ते जावें और थोड़ा बहुत इस कार्रवाई का रस मिलता जावे और मालिक के चरणों में अनुराग[1] और संसार से वैराग्य बढ़ता जावे, तो यही निशान और सबूत इस बात का है कि जिनके संग से ऐसी हालत पैदा हुई, वे ज़रूर सच्चे और पूरे संत या साध हैं और उनके संग और उनकी जुगत की कमाई से ज़रूर एक दिन काम पूरा बन जावेगा। इसी क़दर पहिचान शुरू में (जो एक, दो या तीन महीने के संग से थोड़ी बहुत हासिल हो सकती है) काफ़ी है। फिर ज़्यादा संग और अंतर में अभ्यास करने से यही पहिचान बढ़ती जावेगी और उनकी गति मति[2] और दया और मेहर की थोड़ी बहुत परख और प्रतीति होती जावेगी और फिर यही परख और प्रतीति दिन दिन बढ़ती जावेगी और उसके साथ प्रेम भी बढ़ता जावेगा और उनके चरणों की सरन पकती[3] जावेगी। इस तरह तरक़्क़ी होते होते एक दिन काम पूरा बन जावेगा।

५—सच्चे परमार्थी को, जो ऊपर लिखे के मुआफ़िक़ कार्रवाई करता है, मुनासिब है कि अपने परमार्थी और संसारी व्यवहार और चाल चलन की अच्छी तरह सम्हाल रक्खे कि जिससे उसकी परमार्थी कार्रवाई और उसकी तरक़्क़ी में ख़लल[4] न पड़े, यानी परमार्थी शुभ कर्म की दिन दिन कार्रवाई बढ़ती जावे और परमार्थी अशुभ कर्म में

१—प्रेम। २—गति मति—समर्थता व ज्ञान। ३—मज़बूत होती। ४—विघ्न।

ज़रूरत के मुआफ़िक़ और मुनासिब और वाजिबी तौर पर बरताव करे और व्यवहारी शुभ कर्म को कार्रवाई जहाँ तक बन सके जारी रक्खे लेकिन अशुभ कर्म से बिलकुल परहेज़ करे।

६—परमार्थी शुभ अशुभ कर्मों की तफ़सील[1] यह है—परमार्थी शुभ कर्म उसको कहते हैं कि जिससे मन और सुरत और इन्द्रियों की धार को इधर यानी बाहर और नीचे की तरफ़ से रोक कर मुआफ़िक़ उस भेद और जुगत के जो संत सतगुरु या साधगुरू ने उपदेश किया है, उलटा कर बारम्बार शब्द और स्वरूप के आसरे घट में ऊँचे मुक़ाम पर चढ़ाता और जमाता रहे। और परमार्थी अशुभ कर्म यह है कि मन और सुरत और इन्द्रियों की धार नीचे की तरफ़ पिंड में और बाहर की तरफ़ दुनियाँ और देह के कारोबार में रवाँ[2] होवे।

(१) इस कार्रवाई में इस क़दर एहतियात[3] चाहिये कि जो कारोबार घर के और अपने कुटुम्ब परिवार के और भी अपने रोज़गार और पेशे के होवें, उनको दुरुस्ती से करना चाहिये और इसी तरह अपनी देह के सब काम वक़्त वक़्त पर करने मुनासिब हैं और इन सबकी निस्बत ज़रूरी फ़िक्र और ख़्याल करना भी जायज़[4] और दुरुस्त है।

(२) फ़ज़ूल कामों में या फ़ज़ूल बातचीत में, जिनका ख़ास तअल्लुक़ अपने या अपने कुटुम्ब के साथ नहीं है या जिसमें अपने तईं ख़्याल और फ़िक्र करना या शामिल होना फ़ज़ूल है, उस कार्रवाई से परहेज़ करना वाजिब है।

१—विस्तारपूर्वक वर्णन। २—जारी। ३—होशियारी। ४—मुनासिब।

(३) ग़ैरों के कामों में दख़ल देना या संसारी लोगों से बिला ज़रूरत बेफ़ायदा बातचीत में अपना वक़्त ख़र्च करना नामुनासिब है।

(४) ग़ैरवाजिब और नामुनासिब कामों की तरंगें उठाना या उनके मुआफ़िक़ जतन सोचना और उसका अमलदरामद[1] करना नहीं चाहिये, क्योंकि इसमें परमार्थी जीव का नुक़सान होता है।

(५) इसी तरह भोगों की चाह उठाना और उनके हासिल करने के लिये जतन करना, जहाँ तक मुमकिन होवे, नहीं करना चाहिये, लेकिन जो भोग कि अनिच्छित[2] [यानी बग़ैर चाह उठाने के प्राप्त होवें] या पर-इच्छित[3] यानी कोई दूसरा शख़्स प्यार और ख़ुशी से उनको लावे या सन्मुख रक्खे, तो उनमें एहतियात और होशियारी के साथ बरताव करे यानी उनका ज़्यादा भोग न करे और न उनका रस और स्वाद पाकर अपनी चाह उठावे कि फिर वही भोग उसके वास्ते तैयार किये जावें।

(६) ग़ैरवाजिब और नामुनासिब भोगों और पदार्थों से, चाहे वह अनिच्छित या पर-इच्छित प्राप्त होवें, संत सतगुरु की दया का आसरा लेकर परहेज़ करे।

(७) जब कभी माया और उसके पदार्थ विशेष करके प्राप्त होवें, तो एहतियात रक्खे कि अपनी परमार्थी कार्रवाई में जहाँ तक मुमकिन होवे ख़लल न पड़े और अहंकार और मद[4] न आने पावे और न ग़फ़लत और भूल अपना

१—अमल करना। २—बिना इच्छा किए। ३—दूसरे की इच्छा से।
४—अभिमान।

असर करने पावे।

(८) जहाँ तक मुमकिन होवे किसी से लड़ाई झगड़ा या तकरार न करे। अगर थोड़ा सा रुपया ख़र्च करने से या थोड़ा अपना हक़ छोड़ देने से लड़ाई और झगड़ा दूर हो सकता होवे, तो ऐसे ख़र्च करने या हक़ के छोड़ने में ताम्मुल[1] न करे और जहाँ तक बने आपस में मिलकर फ़ैसला कर लेवे, ताकि अदालत तक नौबत न पहुँचे, क्योंकि ऐसे झगड़ों में पीछे करके बहुत ख़र्च बेफ़ायदा होता है और तकलीफ़ और चिंता बेफ़ायदा उठानी पड़ती है कि जिससे परमार्थी के अभ्यास में बहुत ख़लल पड़ता है।

(९) परमार्थ और अपने मत के मुआमले में भी मूर्खों के साथ बहस और हुज्जत[2] बेफ़ायदा न करे। जो कोई न माने तो उस पर किसी तरह का ज़ोर और दबाव न डाले और लड़ाई झगड़ा न करे, बल्कि ऐसे लोगों से अपने मत और अभ्यास को गुप्त रक्खे।

(१०) बिरादरी और दोस्त और आश्ना[3] और पड़ोसी लोगों की तान[4] और मलामत[5] का ख़्याल करके अपनी परमार्थी कार्रवाई में ढीला न होवे। यह सब मूर्ख हैं और इनकी परमार्थी अक़्ल और समझ बालकों के मुआफ़िक़ है। फिर इनकी बातचीत पर ख़्याल करना अक़्लमंदों का (जो कि परमार्थ की समझ दुरुस्त रखते हैं) काम नहीं है। जहाँ तक बने ऐसे लोगों से अपना बचाव करके दूर रहना या ज़्यादा हेल मेल न करना मुनासिब है और उनके हक़

१—देर। २—झगड़ा। ३—मित्र। ४—आक्षेप। ५—लानत।

को इस वजह से कि वे परमार्थ में विघ्न डालते हैं, रोकना या बंद करना मुनासिब नहीं है। परमार्थी शख़्स को क्षमा और बरदाश्त करना चाहिये।

११—जो कोई परमार्थी कार्रवाई में ख़लल डाले या उलटी सलाह बतलावे, उसकी बात नहीं माननी चाहिये, लेकिन उसके साथ हुज्जत[१] या तकरार करना या अपनी समझौती देना नामुनासिब है।

७—व्यवहारी या संसारी शुभ अशुभ कर्म की तफ़सील[२] यह है :—

(१) शुभ कर्म यह है कि, जहाँ तक मुमकिन होवे, मन से, बचन से और कर्म करके सबको सुख पहुँचाना और जो सुख न पहुँचा सके, तो दुख भी न देना। जो तन और धन थोड़ा बहुत इस काम में लगे और अपने परमार्थ में किसी तरह का ख़लल[३] न पड़ता होवे, तो उसके लगाने में दरेग़[४] न करे।

(२) अशुभ कर्म यह है कि ख़ास अपने या किसी अपने अज़ीज़[५] के मतलब के लिये किसी को मन से, बचन से या कर्म करके दुख पहुँचाना। जहाँ तक मुमकिन होवे इस मुआमले में परमार्थी को एहतियात[६] और परहेज़ करना मुनासिब है।

लेकिन जो लोग ब-सबब परमार्थी कार्रवाई के दुखी होवें, यानी जो वे उलटी सलाहें देवें और यह उनकी बात न माने और समझौती न लेवे और इस सबब से वे नाराज़

१—झगड़ा। २—विवरण। ३—विघ्न। ४—सोच। ५—नज़दीकी रिश्तेदार। ६—होशियारी।

होवें या उसके साथ अदावत[1] करें और अपने चित्त में दुखी रहें, तो जहाँ तक मुमकिन होवे उनको मुहब्बत और दिलदारी[2] के साथ सच्चे परमार्थ की समझौती देकर उनका दुख दूर करने में कोशिश करे पर जो वे अपनी नादानी[3] और हठ के सबब से न मानें और बेफ़ायदा तकलीफ़ और दर्द अपने ऊपर आप उठावें तो उसका ज़्यादा सोच न करे बल्कि यह समझे कि उनके मन की गढ़त[4] इसी तरह से होने वाली है। थोड़ा दुख पाकर उनकी आइंदा थोड़ी बहुत सफ़ाई होगी और शायद रफ़्ता रफ़्ता परमार्थ की क़दर उनके चित्त में थोड़ी बहुत समावे।

८—खुलासा यह है कि सच्चे परमार्थी को किसी सबब से अपनी भक्ति और अभ्यास में ढीला होना नहीं चाहिए, क्योंकि जिस काम से गुरू और मालिक राज़ी होते हैं, वह काम ज़रूर करना लाज़िम है, चाहे दुनियाँ के लोग (जोकि मनमुखी हैं और परमार्थ से बिलकुल बेख़बर) राज़ी होवें या नहीं। इस मुआमले में उनके डर या ख़ातिरदारी[5] का ख़्याल नहीं करना चाहिये। इसमें परमार्थी का और उन लोगों का फ़ायदा भी (नहीं तो दोनों का नुक़सान) होगा।

दुनियाँ के लोगों की नज़र हमेशा अपने मतलब यानी स्वार्थ पर रहती है और परमार्थी नफ़ा और नुक़सान यानी जीव के कल्याण या अकल्याण का उनको बिलकुल ख़्याल नहीं है। फिर ऐसे लोगों का परमार्थ में संग देना

१—दुश्मनी। २—उदारता। ३—मूर्खता। ४—दुरुस्ती। ५—प्रसन्न रखने का।

या उनकी सलाह मानना नामुनासिब है। अलबत्ता दुनियाँ के कामों में उनकी सलाह के मुआफ़िक़ काम करना वाजिब[१] है, बल्कि दुनियाँ के कामों को उन्हीं की राय पर छोड़ देना बेहतर होगा कि इसमें वे राज़ी[२] रहेंगे और परमार्थी के कारोबार में कम दख़ल देंगे।

६—जो कोई विद्यावान् या बुद्धिवान् ऐसी तान मारें[३] कि परमार्थी शख़्स को संस्कृत या और कोई इल्म और विद्या पढ़नी ज़रूर है और बग़ैर विद्या के या बग़ैर पढ़ने संस्कृत के परमार्थ हासिल नहीं हो सकता, यह कहना उन लोगों का बिलकुल ग़लत है क्योंकि सच्ची विद्या गुरू का उपदेश है। जो पूरे गुरू हैं, उन्होंने अपने अभ्यास के बल से कुल क़ुदरत का भेद मालूम करके मक्खन निकाल लिया है और एक नुक्ते में जीव का परमार्थ बना सकते हैं। फिर वे थोड़े से उपदेश में कुल दुनियाँ और दीन[४] की पूरी समझौती दे सकते हैं कि जो विद्यावान् हज़ारों किताबों को पढ़कर भी हासिल नहीं कर सकते, क्योंकि वह प्रेम विद्या यानी मालिक का भेद और उसके मिलने का रास्ता और जुगत सीना-ब-सीना[५] मालूम होती चली आई है। किताबों में वह भेद नहीं है और न लिखने में आ सकता है। फिर जो कोई ऐसे पूरे गुरुओं का सच्चे मन और सच्ची दीनता और भाव के साथ संग करेगा, वे उसको थोड़े अरसे में वह छँटी हुई बातें और जुगती, जो कि कुल का मक्खन है, अपनी मेहर और दया से समझा कर और

१—मुनासिब। २—प्रसन्न। ३—तान मारें—आक्षेप करें। ४—परमार्थ। ५—एक से दूसरे को।

अंतर में अभ्यास करा कर सब कारख़ाना क़ुदरत का दिखला देंगे। फिर विद्यावान् की क्या ताक़त कि ऐसे परमार्थी अभ्यासी का मुक़ाबला करे या उसके साथ परमार्थ की बातचीत कर सके, क्योंकि वह लिखी पढ़ी बातें तोते की तरह बना सकता है और अंतर के क़ुदरत के भेद से बिलकुल बेख़बर है और अभ्यासी परमार्थी असल हाल क़ुदरत का अंतर दृष्टि के साथ देख कर कहता है। इस वास्ते इन दोनों में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है यानी विद्यावान् मन और इंद्रियों के घाट पर बैठा हुआ अक़्ली बातें अंधों के मुआफ़िक़ करता है और अभ्यासी रूहानी यानी सुरत की दृष्टि से देख कर भेद कहता है। वह विद्यावान् मंज़िल[1] पर कभी नहीं पहुँचेगा और जन्म मरण की फाँसी उसकी कमी नहीं काटी जावेगी और यह प्रेमी परमार्थी एक दिन अपने निज घर में पहुँच कर, सच्चे मालिक का दर्शन पाकर और जन्म मरण से रहित हो कर[2] परम आनन्द को प्राप्त होगा।

बचन—२८

वर्णन महिमा सुरत शब्द मार्ग और संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और दया का कि जिससे सहज में जीवों का सच्चा उद्धार होता है

१—इस दुनियाँ में आम तौर पर और ख़ास कर इस

१—परम पद। २—रहित हो कर—छूट कर।

ज़माने में दुख ज़्यादा है और आराम कम और सब जीव आराम की प्राप्ति और दुख की निवृत्ति[१] के लिये, अपनी ताक़त के मुआफ़िक़, जैसा कि दुनियाँ में दस्तूर[२] है, जतन करते हैं, पर निर्मल और ठहराऊ सुख और आनंद किसी को हासिल नहीं है। और जो कोई ज़्यादा सुखी नज़र आता है, वह भी दुख से ख़ाली नहीं है, क्योंकि रोग[३] और सोग[४] सब जीवों के साथ लगे हुए हैं और उनके मुतल्लक़[५] दूर करने का जतन किसी के इख़्तियार[६] में नहीं है।

२—ऐसा सुख और आनंद कि जो हमेशा क़ायम रहे और महा निर्मल होवे, सिर्फ़ संतों की जुगत की कमाई से हासिल हो सकता है। और वह अभ्यास रूहानी है यानी सुरत को अन्तर में चढ़ाने से हासिल होता है।

३—कुल दुक्खों का इलाज, चाहे वह कैसे ही सख़्त होवें, वही रूहानी अभ्यास है कि जिसके वसीले से सुरत यानी रूह और मन की धार घट में ऊँचे देश की तरफ़ चढ़ाई जाती है और जिस क़दर वह ऊँचे चढ़ती है, उसी क़दर मन और सुरत का बंधन देह और दुनियाँ से ढीला होता जाता है और इसी सबब से देह और संसार का दुख सुख भी कम व्यापता[७] है।

४—मालूम होवे कि कुल रचना का कोई सर्व समर्थ और सर्व जानकार[८] कर्त्ता ज़रूर है और संतों ने उसका राधास्वामी नाम प्रगट किया है और यह नाम किसी का

१—छुटकारे। २—रिवाज। ३—बीमारी। ४—शोक, दुःख। ५—क़तई। ६—वश। ७—मालूम होता। ८—ज्ञानी।

रक्खा हुआ नहीं है। इस नाम की धुन बग़ैर वसीले[1] ज़बान या बाजे के आप ही आप कुल ऊँचे देश यानी मंडलों में हर एक जीव के घट में हो रही है और उसी सर्व समर्थ कुल मालिक के चरणों से, रूह की धार उतर कर और रास्ते में कई जगह ठहरती हुई इस पिंड में दोनों आँखों के मध्य[2] में अन्तर की तरफ़ बैठ कर कुल कार्रवाई इस देह की अपनी धारों के वसीले से (जो जा-ब-जा[3] पिंड में फैली हुई हैं) कर रही है और वहाँ से ब-वसीले[4] दो धारों के, जो कि दोनों आँखों के तिल में ठहरी हैं, दुनियाँ के कारोबार करती है। और मन और इन्द्रियों का संग करके अनेक पदार्थों और ख़्वाहिशों और कुटुम्ब परिवार में इस रूह का ज़बर[5] बंधन हो गया है और उनकी हालत के बदलने में या ख़्वाहिश और आशा के पूरे होने और न होने में इसकी भी हालत बदल जाती है यानी दुख सुख भोगना पड़ता है।

असली रूप रूह या सुरत का आनन्द स्वरूप है, पर बन्धनों और ख़्वाहिशों की वजह से इसकी हालत बदलती रहती है। सो कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने संत सतगुरु रूप धारण करके निहायत दया के साथ ऐसी सहज जुगत मय भेद अपने देश के बतलाई कि जिससे जीव अपने बंधनों को आहिस्ता आहिस्ता ढीला और कम करके दुनियाँ के दुख सुख की हालत से बच सकते हैं और अपने परम आनन्द स्वरूप का थोड़ा बहुत

१—ज़रिये। २—बीच। ३—हर जगह। ४—ज़रिये से। ५—बहुत।

रस लेकर मगन हो सकते हैं ।

५—जो कोई संत बचन अथवा कुल मालिक राधास्वामी दयाल के उपदेश की प्रतीति[1] करके सुरत शब्द मार्ग की कमाई करना शुरू करे, तो अंतर में थोड़ा बहुत रस पाकर, दिन दिन उसकी प्रीति और प्रतीति चरणों में बढ़ती जावेगी और उसी क़दर मन और सुरत स्वरूप और शब्द के वसीले से ऊपर को चढ़ते जावेंगे । और जिस क़दर चढ़ाई होवेगी उसी क़दर पिंड देश से न्यारे होते जावेंगे और फिर उसी मुआफ़िक़ देह और दुनियाँ का दुख सुख कम व्यापेगा और घट में निर्मल आनन्द बढ़ता जावेगा ।

६—जो कोई यह काम नहीं करेगा तो वह हमेशा देह धर कर दुख सुख सहता रहेगा और जिस क़दर उसकी आसक्ति[2] और बंधन जीवों और पदार्थों में होगा, उसी क़दर कर्म करेगा और उसका फल दुख सुख भोगेगा और फिर उसी स्वभाव और भोगों की आसा के सबब से बारम्बार ऊँचे नीचे देश में देह धरता रहेगा यानी जन्म मरण के चक्कर से उसका बचाव नहीं होगा और सख़्त दुक्खों में कोई उसकी सहायता[3] नहीं कर सकेगा ।

७—इस वास्ते ब-नज़र[4] बचाव जन्म मरण और दुक्खों के, जो कर्मों के सबब से भोगना पड़ता है, हर एक जीव को लाज़िम और मुनासिब है कि राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति लाकर अपने जीव के कल्याण के वास्ते थोड़ा बहुत अभ्यास सुरत शब्द मार्ग

१—विश्वास । २—पकड़ । ३—मदद । ४—ख्याल से ।

का और ध्यान संत सतगुरु का करें।

८—दुनियाँ में सब जीव सुख के कारण और दुख के निवारण[१] के वास्ते हर एक तरह का जतन और मेहनत कर रहे हैं। और यह सुख तुच्छ और नाशमान हैं और चाहे जैसे भोग और पदार्थ हासिल हो जावें, लेकिन वह एक दिन मृत्यु के समय छोड़ने पड़ेंगे और उनके छोड़ने का भारी दुख सहना पड़ेगा। फिर किस क़दर जीवों पर फ़र्ज़ और लाज़िम है कि वास्ते हासिल करने निर्मल और ठहराऊ आनन्द और दूर होने तकलीफ़ और दुक्खों के थोड़ी मेहनत अभ्यास की, जो कि निहायत[२] सहज है और जिसमें थोड़ा सा वक्त़ ख़र्च करने से भारी फ़ायदा मिल सकता है, गवारा करें[३]।

९—कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और दया का और भी बड़ाई उनकी जुगत यानी सुरत शब्द मार्ग का वर्णन किस तरह किया जावे कि ऐसी दया जीवों पर आज तक किसी ने नहीं की और न ऐसी सहज जुक्ति कि जो गृहस्थ और विरक्त और औरत और मर्द और जवान और बूढ़ा आसानी के साथ कमा सके, कभी प्रगट हुई। इस अभ्यास से जीवों का उद्धार सहज में होना मुमकिन है। और पिछले ज़माने में महा कठिन अभ्यास ऋषीश्वर[४] और मुनीश्वर[५] और जोगी और जोगेश्वरों और औलियाओं[६] ने जारी किये कि जो विरक्तों से मुश्किल से बन पड़ते थे और फिर भी उसमें ख़तरे बहुत थे। और

१—दूर करने। २—अत्यन्त। ३—गवारा करें—करना मंज़ूर करें। ४—बड़े ऋषियों। ५—बड़े मुनियों। ६—फ़क़ीरों।

गृहस्थियों से और ख़ास कर औरतों से बिल्कुल नहीं बन सकते थे और इस सबब से यह सब कोई कमाई अपने जीव के कल्याण के वास्ते न कर सके। अलबत्ता शुभ कर्म कोई कोई जीवों से बन पड़े और उसका फल उन्होंने कोई दिन के वास्ते दुनियाँ में या स्वर्ग लोक में पाया, यानी कुछ अरसे तक सुख भोगा और फिर मृत्यु लोक में जन्म लिया, यानी उनका आवागमन[1] न छूटा।

१०—अब जो जुगत यानी अभ्यास कि राधास्वामी दयाल ने जारी फ़रमाया, उसकी ऐसी भारी महिमा है कि जो वह किसी जीव से, मत[2] को समझ कर, शौक़ के साथ तीन दिन भी बन पड़ा, तो भी उसके उद्धार का सिलसिला जारी हो गया और चार पाँच जन्म में सतगुरु का संग पाकर और उस जुगती की कमाई करके सत्तलोक यानी संत देश में पहुँच कर अजर अमर हो गया और परम आनन्द को प्राप्त हुआ कि जहाँ काल क्लेश और आवागमन का चक्कर नहीं है।

११—सबूत इस बात का यह है कि जो कोई एक मरतबा जुल्लाब लेता है या फ़स्द खुलवाता है या जोंक लगवाता है, तो उसी मौसम में वर्ष या छः महीने बाद माद्दा[3] और ख़ून की रुजू[4] उसी तरफ़ को वास्ते निकलने के होती है। जब कि माद्दा और ख़ून में, जो कि बमुक़ाबिले सुरत यानी रूह के निहायत जड़ हैं, ऐसा ख़वास[5] पाया जाता है कि एक मरतबा उनकी रुजू एक तरफ़ को हो जावे,

१—जन्म मरण। २—राधास्वामी मत। ३—मैला। ४—झुकाव। ५—गुण।

तो फिर बारम्बार वक्त मुक़र्ररा पर उसी तरफ़ को दौड़ते हैं, फिर सुरत चैतन्य जिसका देश सबसे ऊँचा है, जो शौक़ के साथ तीन दिन अपने घर की तरफ़ को रुजू करके चलने लगे तो वह उसी ख़वास के मुआफ़िक़ बारम्बार उसी तरफ़ को वक्त वक्त पर दौड़ेगी और नीचे के देश की तरफ़, जो चौरासी का घर है, कमतर[1] रुजू करेगी। और जब कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु, जिनकी सरन में आकर मत को अच्छी तरह समझा और उसकी प्रतीति लाकर अभ्यास शुरू किया, उसके सहाई हुए, तब उनको मेहर और दया से चौरासी का चक्कर ज़रूर बंद हो जावेगा और जब तक कि सत्तलोक में पहुँचना न होगा, तब तक वे उसको ऊँचे देश में बासा देते जावेंगे और उसकी प्रीति और प्रतीति बढ़ा कर और नर देही में जन्म देकर और हर जन्म में आप मिलकर उससे सतसंग और अभ्यास बराबर कराते जावेंगे और एक दिन अपने धाम[2] में पहुँचा कर उसको अमर आनन्द बख़्श देंगे।

१२—सुरत शब्द मार्ग के अभ्यास की ऐसी महिमा है कि जिस किसी ने इसकी कमाई शुरू कर दी और जिस क़दर कि उससे एक जन्म में बन पड़ी, वह दूसरे जन्म में संत सतगुरु का उपदेश लेते ही और अभ्यास शुरू करते ही फ़ौरन् फुर आवेगी यानी जिस क़दर रास्ता तै करके जिस मुक़ाम तक उसकी सुरत पहुँची है, उस

१—कम। २—लोक।

मुक़ाम पर फ़ौरन् चढ़ जावेगी और उसके आगे कमाई यानी चलना और चढ़ना शुरू कर देगी। इसी तरह से हर जन्म में कमाई और चढ़ाई बढ़ती जावेगी, जब तक कि संत सतगुरु के देश में पहुँच कर निश्चिंत[1] न होगी और फिर जन्म नहीं होगा और अपने सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के दर्शनों का आनन्द और बिलास पाकर हमेशा को मगन हो जावेगी।

१३—संत सतगुरु दयाल की मेहर और दया की क्या महिमा वर्णन की जावे कि जो जीव सच्ची दीनता और भाव के साथ एक मरतबा उनकी सरन में आया और सतसंग करके उनके मत और भेद को समझ कर और उपदेश लेकर चंद[2] रोज़ भी उनके अभ्यास की कमाई करी, तो मृत्यु के समय (जब कि सुरत का अंतर में ऊपर की तरफ़ को खिंचाव क़ुदरती तौर पर शुरू होता है) उस वक़्त वे आप मेहर और दया से उसको तीसरे तिल के मुक़ाम पर अपना दर्शन देकर और चरणों में उसकी सुरत को लपेट कर ऊँचे देश में ले जाते हैं और उसकी लगन[3] और कमाई के मुआफ़िक़ जहाँ मुनासिब समझते हैं उसको बासा देकर और अपने अमृत रूपी बचन सुना कर, उसकी प्रीति और प्रतीति को बढ़ाते रहते हैं। और फिर जब संत सतगुरु संसार में आवें और सतसंग खड़ा करें, तब उस सुरत को नर देही में जन्म देकर और अपनी दया से खींच कर सतसंग में शामिल करते हैं

१—बेफ़िक्र। २—कुछ। ३—प्रेम।

और दिन दिन उसकी प्रीति और प्रतीति बढ़ा कर और सुरत शब्द मार्ग का अभ्यास करा कर उसको चढ़ाते चले जाते हैं। और जोकि मंज़िल[1] दूर दराज़[2] है, इसी तरह उसको, जब तक कि उनके धाम में न पहुँचे, जन्म देकर और कमाई कराकर रास्ता तै कराते जाते हैं और जब जब देह छूटे, तब उसको ऊँचे से ऊँचे देश में उसकी कमाई के मुआफ़िक़ पहुँचा कर बासा देते हैं। और जिस जन्म में निज धाम में पहुँच गया, तब ही काम पूरा हो गया और फिर जन्म लेने की ज़रूरत नहीं रही।

१४—खुलासा यह है कि संत सतगुरु ऐसे दयाल हैं कि जब तक उनका जीव निज धाम में न पहुँचे, तब तक उसको जन्म देकर और हर जन्म में कमाई करा कर मृत्यु के समय आप उसके अंतर में प्रगट होकर उसको अपने संग ऊँचे देश में ले जाकर बासा देते हैं और वहाँ भी उसकी ख़बरगीरी और सम्हाल करते रहते हैं, यानी बचन सुना कर उसकी प्रीति और प्रतीति को बढ़ाते रहते हैं कि वही ताक़त लेकर जीव दूसरे जन्म में ज़्यादा से ज़्यादा कमाई करता चला जाता है और इस तरह एक दिन निज धाम में पहुँच कर निश्चिंत हो जाता है।

१५—संत सतगुरु की दया ज़्यादा से ज़्यादा है, उसकी महिमा कहन सुनन से ज़्यादा है। ऐसी दया कभी किसी ने नहीं करी और न कोई कर सकता है, यानी जो जीव कि उनकी सरन में आये और तन, मन, धन से उनकी

१—धुर पद। २—बहुत दूर।

भक्ति करी, तो सिर्फ़ उनका ही उद्धार नहीं बल्कि उनके कुटुम्बियों तक का उद्धार फ़रमाते हैं यानी जिस क़दर जिसकी भक्ति है, उसी क़दर उसकी और उसके कुटुम्ब की रक्षा और सम्हाल और उद्धार करते हैं यानी तीन कुल[1] और सात कुल और जो सबसे बढ़ कर भक्ति होवे तो बेशुमार जीवों का उद्धार उसके वसीले[2] से हो जाता है।

१६—कुलों की तफ़सील[3] यह है कि तीन कुल में एक अपने माँ बाप का, एक ननसाल का और एक ससुराल का और सात कुल में तीन पुश्त भक्त की, दो ननसाल और दो ससुराल की, यानी भक्त के (१) माँ बाप और (२) दादा दादी और (३) भक्त की औलाद और (४) नाना नानी और (५) मामा मामी और (६) सास ससुर और (७) साला और सलहज का उद्धार होता है।

१७—अब ग़ौर करना चाहिये कि किस क़दर महिमा सुरत शब्द मार्ग की है कि जिससे बढ़ कर अभ्यास कोई रचना भर में नहीं है यानी शब्द की धार पर, जो कि रूह और जान की धार है, अभ्यासी सवार होकर निज घर को जाता है। प्राण की धार सुरत की धार से चैतन्य है और कुल धारें (जो कि माया के घेर से निकली हैं) सुरत की धार से ताक़त लेती हैं। फिर सुरत यानी जान की धार से बढ़ कर कोई धार नहीं रची गई। इस वास्ते सुरत शब्द मार्ग से बढ़ कर कोई अभ्यास नहीं हो सकता। अब इसके आसान और निर्विघ्न[4] होने की क्या सिफ़त[5] की

१—खान्दान। २—जरिये। ३—वर्णन। ४—बेरुकावट। ५—तारीफ़।

जावे कि लड़का और जवान और बूढ़ा इस अभ्यास को बग़ैर किसी क़िस्म के ख़तरे के अपने गृहस्थी में बैठे हुए और उद्यम[1] करते हुए, थोड़े शौक़ के साथ संत सतगुरु का बल लेकर कर सकते हैं। ऐसा मार्ग आज तक प्रगट नहीं हुआ, नहीं तो पिछले वक़्त के लोग क्यों हठ योग और प्राणायाम वग़ैरह के साधन[2] में पचते[3] और खपते[3] और फिर भी पूरा फल यानी सच्चा उद्धार हासिल नहीं हुआ।

१८—सिवाय इसके सुरत शब्द मार्ग की एक और भारी सिफ़त यह है कि जो कोई इसका अभ्यास करता है, वह भारी से भारी कष्ट और क्लेश और ख़ौफ़ और चिंता में, थोड़ी तवज्जह अपने अंतर में ऊँचे के देश की तरफ़ करने से, फ़ौरन् थोड़ा बहुत बचाव यानी रफ़ाह[4] हासिल कर सकता है। ऐसे वक़्त में इस दुनियाँ में कोई किसी का मददगार नहीं हो सकता, लेकिन शब्द का अभ्यास फ़ौरन् थोड़ी बहुत उसकी कमाई के मुआफ़िक़ मदद दे सकता है। यह बात इस दुनियाँ में नापैद[5] है, मगर संत सतगुरु की दया से, अदने[6] से अदने जीव को, जो उनकी सरन में आया, सहज में प्राप्त हो सकती है। यह महिमा इस अभ्यास की सबसे भारी है।

१६—इसी तरह संत सतगुरु की दया और मेहर की बड़ाई का ख़याल करो कि जो जीव सच्चे मन से सरन में आया, उसका उद्धार और उसके कुटुम्ब का उद्धार अपनी दया से आप करते हैं, यानी अपनी मेहर का बल देकर और

१—परिश्रम। २—अभ्यास। ३—परेशान होते। ४—आराम, सहूलियत। ५—अप्राप्त। ६—तुच्छ।

थोड़ा बहुत अभ्यास कराकर उसको ऊँचे देश में आप ले जाते हैं और फिर तीन चार जन्म देकर और हर जन्म में ज़्यादा कमाई करा कर निज घर में पहुँचा कर, सच्चा और पूरा उद्धार फ़रमाते हैं। ऐसी दया न कभी हुई और न सिवाय संत सतगुरु के और कोई कर सकता है। पिछले ज़माने में हज़ारों और सैकड़ों वर्ष लोगों ने जप तप वग़ैरह बड़ी मेहनत और तकलीफ़ के साथ किये, पर सिवाय शुभ कर्म के और फल नहीं मिला और न उनका सच्चा उद्धार हुआ।

२०—अब सुरत शब्द मार्ग और संत सतगुरु की दया की ऐसी महिमा सुन कर जो जीवों को प्रतीति न आवे और उनके हृदय में प्रीति और शौक़ न जागे तो जानना चाहिये कि वे महा अभागी हैं और काल और माया के साथ उनका संजोग[1] लगा हुआ है कि जिसके सबब से वे उन्हीं के घेर और जाल में फँसे रह कर बारम्बार जन्मेंगे और मरेंगे और ऊँची नीची जोनों में भरम कर दुख सुख सहते रहेंगे और कोई उनकी सहायता नहीं करेगा।

संत सतगुरु बचन से जीवों को समझाते बुझाते हैं और जो कोई न माने तो उस पर किसी तरह का ज़ोर और दबाव नहीं डालते, यानी जीवों की आज़ादगी[2] में, जो मौज से हर एक को दी गई है, दख़ल नहीं देते। जो उनके बचन की प्रतीति लाकर उनकी जुक्ति का अभ्यास करेगा, वह परम पद को पावेगा और जो नहीं मानेगा, वह काल देश में भरमता रहेगा।

१—संबंध। २—स्वतंत्रता।

बचन—३०

क़ुदरती सबूत इस बात का कि सिर्फ़ राधास्वामी मत में असल भेद सच्चे मालिक और उसकी क़ुदरत का और सच्चा और पूरा तरीक़ा जीव यानी सुरत के सच्चे और पूरे उद्धार का वर्णन किया है और जिसके समझने और अभ्यास करने के वास्ते कुछ ख़ास ज़रूरत विद्या के पढ़ने की नहीं है यानी राधास्वामी मत के भेद और जुगत को मर्द और औरत, पढ़े लिखे और अनपढ़, सब आसानी से समझ सकते हैं और उसका अभ्यास मेहर और दया से बेख़तरे और निर्विघ्न कर सकते हैं

१—संत सतगुरु राधास्वामी दयाल फ़रमाते हैं कि कुल रचना में तीन दर्जे हैं। एक निर्मल चैतन्य देश जहाँ चैतन्य ही चैतन्य है और माया की मिलौनी नहीं है और यही देश संत देश और दयाल देश कहलाता है और इसी देश के ऊपर की तरफ़ कुल मालिक का धाम[1] है और वह अपार और अनंत है और यहीं से आदि शब्द की धार प्रगट हुई, जिसने किसी क़दर फ़ासले पर

१—लोक।

ठहर कर अगम लोक और अलख लोक और सत्तलोक की रचना करी।

२—दूसरा दर्जा ब्रह्मांड कहलाता है। इसमें निर्मल माया प्रगट हुई और चैतन्य से मिलकर इस देश में रचना हुई और वह रचना जोति निरंजन ने (जोकि दो कला सत्तलोक से निकस[1] कर नीचे आई) करी।

३—तीसरा दर्जा निर्मल चैतन्य और मलीन माया देश है, जहाँ देवता और मनुष्य और असुर[2] और बाक़ी चारों खान[3] के जीव, पशु और परिंद[4] और कीड़े मकोड़े और बनस्पति[5] वग़ैरह पैदा हुए।

४—इसी देश में मनुष्य स्थूल देह में बैठ कर अनेक पदार्थों यानी इन्द्रियों के भोगों में और कुटुम्ब परिवार के संग बँध गये हैं। अब जो कोई कि आप छूटा हुआ है या छूटे हुए का संग करके अपने छूटने का सच्चा होकर जतन कर रहा है और थोड़े अरसे में जो धुर मंज़िल पर पहुँचने वाला है, वह बँधे हुए जीवों के बंधन काट कर निज घर में ले जा सकता है, लेकिन शर्त यह है कि जीव उसके बचन को मानें यानी उसकी हिदायत के मुआफ़िक़ अभ्यास करें और जो हालत कि सच्चे अभ्यासियों पर गुज़रती है, वह जीते जी देखते जावें। और उस हालत के मुआफ़िक़ उनकी रहनी दिन दिन बदलती जावेगी।

५—संतों ने फ़रमाया है कि कुल रचना धारों की है और वह धारें सूक्ष्म देश में सूक्ष्म हैं और स्थूल देश में

१—निकल। २—राक्षस। ३—पृथ्वी पर पैदायश की चार क़िस्में। ४—पक्षी। ५—पौदे।

स्थूल हो गई हैं। इस वास्ते जिस धार के साथ सुरत नीचे उतर कर आई, वह उसी धार को पकड़ के अपने निज देश को लौट सकती है। यही धार नूर[1] और जान और शब्द की धार है। सो शब्द की धुन को पकड़ के स्थान स्थान पर चढ़ना और चलना चाहिये, क्योंकि शब्द की बराबर कोई सच्चा और पूरा गुरू नहीं है और शब्द ही अँधेरे में प्रकाश करने वाला और रास्ता दिखा कर धुर पद में पहुँचाने वाला है।

६—बच्चे की पैदायश और उसके जिस्म के बढ़ाव से और मौत के वक्त भी रूह के खिंचाव की हालत को देख कर साफ़ ज़ाहिर होता है कि सुरत रूह की धार मस्तक से उतर कर जाबजा[2] पिंड में फैली है। और जाग्रत के समय निज बैठक उसकी आँख के तिल में है, क्योंकि ज़हाँ तिल ज़रा भी ऊपर की तरफ़ को खिंचा फ़ौरन् देह और इन्द्रियाँ वग़ैरह बेकार हो जाती हैं। फिर जो हालत कि सुरत के खिंचाव की अपने भंडार यानी मस्तक की तरफ़ जैसी कि मौत के वक्त होती है, अपने जीते जी यानी इसी ज़िंदगी में अभ्यास की मदद से होती जावे, तो ऐसे अभ्यासी को फ़ौरन् सबूत इस बात का मिल जाता है कि रूह के खिंचाव में आसानी से बंधन अंतर और बाहर के ढीले हो जाते हैं और दुख सुख संसार की हानि और लाभ का और देह और कुटुम्ब परिवार का बहुत कम व्यापता है और अंतर में आनन्द और सरूर[3] थोड़ा बहुत मिलता जाता है।

१—प्रकाश। २—जगह जगह। ३—विशेष आनन्द।

७—संत कहते हैं कि यह दुनियाँ नाशमान है और कोई चीज़ यहाँ थिर[1] नहीं है और भोग और विलास भी यहाँ के तुच्छ हैं, यानी पूरी शान्ति उनसे हासिल नहीं हो सकती। इस वास्ते इस संसार में बरताव ज़रूरत के मुआफ़िक़ और मुनासिब तौर पर चाहिये कि जिसमें गहरा बंधन और गिरफ़्तारी[2] न हो जावे, नहीं तो थोड़े से सुख के साथ दुख और तकलीफ़ भी सहनी पड़ेगी।

८—और हर एक आदमी को, चाहे मर्द होवे या औरत, लाज़िम है कि गहरे और ठहराऊ सुख की प्राप्ति के लिये थोड़ा बहुत जतत ज़रूर करें और वह सुख सिर्फ़ निर्मल चैतन्य देश में जहाँ काल और माया नहीं है प्राप्त हो सकता है। इस वास्ते उस देश में पहुँचने की जुगत संत सतगुरु से दरियाफ़्त करके अपने घट में उसका अभ्यास करना चाहिये, तो थोड़ा बहुत आनन्द अंतर में मिलना शुरू हो जावेगा और वही आनंद रफ़्ता रफ़्ता अभ्यासी की प्रीति और प्रतीति को जगा कर बढ़ता जावेगा और एक दिन निज घर में पहुँचा देगा।

९—अब हर एक आदमी को, चाहे औरत होवे या मर्द, इन बातों पर जो नीचे लिखी जाती हैं और जो रोज़मर्रह[3] उनको नज़र से गुज़रती हैं या जिनका बरताव रोज़मर्रह उनकी देह यानी उनके आपे[4] में जारी है, ग़ौर करके अपने जीव के कल्याण के वास्ते और भी वास्ते फ़ायदे और आराम के इस दुनियाँ में ज़रूर कार्रवाई मुनासिब मुआफ़िक़ हिदायत संतों के करना चाहिये, नहीं

१—स्थिर, ठहराऊ। २—पकड़। ३—हर रोज़। ४—वजूद, हस्ती।

तो यहाँ भी और आइन्दा भी बहुत कष्ट और क्लेश सहना पड़ेगा और फिर उसके दूर करने का जतन बहुत मुश्किल हो जावेगा। और फिर पछताने और अफ़सोस करने से कुछ हासिल न होगा।

१०—और वह बातें यह हैं :—

(१) सुरत रूह कुल मालिक राधास्वामी दयाल की अंश है, जैसे सूरज और सूरज की किरण, क्योंकि कुल कार्रवाई रचना की सुरतों के द्वारे[1] हो रही है और सम्हाल उसकी कुल मालिक, जो सब सुरतों का भंडार है, कर रहा है, यानी एक एक सुरत एक एक पिंड[2] में बैठ कर चाहे वह पिंड ज़मीन पर है या आसमान में, उसकी कार्रवाई कर रही है। और यह बात जिस वक़्त से कि पिंड का ज़हूर[3] और बनाव शुरू होता है और जब तक कि वह पिंड क़ायम रहता है यानी जब तक कि सुरत उसमें ठहरती है, इस दुनियाँ में इन आँखों से दिखलाई देती है। देखो किसी दरख़्त के बीज को, जिस वक़्त कि उसमें से कुला फूटता है यानी सुरत की धार अपना ज़हूर करती है, उसी वक़्त से तमाम शक्तियाँ क़ुदरत की (खेंच शक्ति, हटाव शक्ति, बनाव शक्ति, संहार शक्ति, चुम्बक शक्ति, बिजली की शक्ति और रोशनी की शक्ति वग़ैरह) और पाँच तत्व (आकाश, हवा, अग्नि पानी और पृथ्वी) और तीन गुण (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) जिनका नमूना यहाँ पर आक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन गेस हैं,

१—ज़रिये। २—शरीर। ३—प्रकट होना।

हाज़िर होकर सुरत रूह की ताबेदारी[1] में, आपस में रल मिल कर पिंड के बनाव और बढ़ाव और सम्हाल में मदद देते हैं और जब तक रूह उस पिंड में ठहरी रहे, तब तक बराबर इसी तरह ख़िदमत और सेवा करते हैं। और जिस वक़्त कि रूह पिंड को छोड़ती है, उसी वक़्त आपस में लड़ भिड़ कर उसका रूप और रंग बिगाड़ कर सब हट जाते हैं, सिर्फ़ पृथ्वी तत्व का कारज यानी ख़ाक[2] पड़ी रह जाती है। यही हाल कुल जानदारों का वक़्त पैदायश से और आख़ीर दम तक इन आँखों से जिस क़दर कि मुमकिन है नज़राई देता है। और यही सबूत इस बात का है कि यह सुरत उस कुल मालिक की अंश है, क्योंकि जब इसकी ताक़त ऐसी बड़ी है कि जहाँ यह अपना ज़हूर[3] करे यानी इसकी प्रथम धार प्रगट होवे, उसी जगह और उसी वक़्त से तमाम क़ुदरत की शक्तियाँ और मसाला इसकी ताबेदारी में हाज़िर होकर कार्रवाई करते हैं। फिर वह भंडार कि जिसकी यह सुरत एक ज़र्रा[4] है, कुल का कर्त्ता और कारफ़ारमा[5] यानी सर्व समर्थ हुआ और उसी का नाम सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल है और यह सुरत उसकी अंश साबित हुई।

(२) माया एक पदार्थ गुबार रूप और जड़ है। सुरत चैतन्य की धार के मिलने से इसमें पाँच तत्व और तीन गुण और अनेक शक्तियाँ, जो कि रचना का मसाला और कारकुन[6] हैं, पैदा हुईं। यह माया वक़्त उतार सुरत के

१—मातहती। २—मिट्टी। ३—प्रकाश। ४—छोटे से छोटा अंश। ५—कर्ता धर्ता। ६—काम करने वालीं।

अपने घेर में उसका गिलाफ़[1] होती चली आई यानी तह पर तह उस पर चढ़ते गये, यहाँ तक कि इस लोक में सुरत निहायत स्थूल ग़िलाफ़ यानी पिंड में बैठ कर, उसके औज़ार यानी इन्द्रियों के द्वारे कार्रवाई करती है और इसी तरह सूक्ष्म देह से सूक्ष्म रचना में, जिसको स्वप्न देश और आलमे मलकूत[2] कहते हैं, कार्रवाई करती है। अब जब तक कि सुरत माया के घेर के यानी रचना के तीसरे और दूसरे दर्जे के पार न जावे, तब तक अपने निज देश में पहुँच कर परम सुख को प्राप्त नहीं होगी।

(३) माया के ग़िलाफ़ को देही[3] कहते हैं और इस का जड़ होना इस तरह पर साबित है कि जब आदमी सो जाता है, उस वक्त उसको अपनी देह और दुनियाँ की कुछ ख़बर नहीं रहती या जब डाक्टर लोग क्लोरोफ़ार्म सुँघा देते हैं और उसके सूँघने से रूह की धार आँख के मुक़ाम से (जहाँ कि उसकी जाग्रत अवस्था में बैठक है) हट जाती है, तब बदन काट डालते हैं और उसका कुछ दर्द और दुख नहीं होता या यह कि जाग्रत में कोई दुख या दर्द या तकलीफ़ हो रही है और जब नींद आ गई, फिर वह दुख नहीं व्यापता, बल्कि स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म शरीर से भोग बिलास और ऐश और आराम करता है और स्थूल देह के रोग सोग और चिन्ता का वहाँ ख़्याल भी नहीं रहता। इसी तरह जब गहरी नींद में सो जाता है, तब सूक्ष्म शरीर और उसकी कार्रवाई भी मौक़ूफ़[4] हो

१—खोल। २—हृदय, कंठ व आज्ञा चक्र। ३—शरीर। ४—बंद।

जाती है। इस बयान से इन दोनों शरीरों का यानी स्थूल और सूक्ष्म का ग़िलाफ़ होना साबित हो गया और यह कि सुरत रूह का स्वरूप उनसे बिलकुल जुदा है और उसी की धार से यह चैतन्य हैं और धार के खिंच जाने पर बेकार हो जाते हैं।

(४) जितने भोग बिलास हैं, उनका सुख और रस और स्वाद सुरत की धार के वसीले से मालूम होता है। जो वह धार शामिल न होवे तो कोई स्वाद और रस नहीं आवें। और स्वप्न अवस्था की कार्रवाई का विचार करने से साबित होगा कि सर्व सुख, रस और स्वाद सुरत चैतन्य की धार में हैं, क्योंकि स्वप्न अवस्था में कुल इन्द्रियों के भोग करता है और उस वक़्त वहाँ कोई पदार्थ बाहर मौजूद नहीं होता और न स्थूल इन्द्रियाँ कुछ काम करती हैं। फिर सर्व रस और स्वाद और उनके भोगने की शक्ति का अंतर में सुरत की धार में मौजूद होना साबित हो गया।

अब ग़ौर करो कि जब सुरत की धार में सर्व रस और सुख मौजूद हैं और यह सुरत एक ज़र्रा[1] है उस कुल मालिक की, जिसका रचना के पहिले दर्जे में अथाह सिंध रूप करके बासा है और जहाँ माया की मिलौनी का गदलापन[2] नहीं है, फिर वहाँ के सुख और रस और आनन्द का कौन और कैसे अंदाज़ा कर सकता है ? वह आनन्द बेअंत[3] और अपार है।

१—छोटे से छोटा अंश। २—मलीनता। ३—अनन्त।

(५) यह संसार माया का देश है और सुरत का निज घर पहिले दर्जे यानी राधास्वामी धाम में है। यहाँ शुरू में जोति निरंजन यानी माया ब्रह्म, सुरत को सत्तपुरुष से माँग कर नीचे लाये और फिर इसको तन मन में घेर कर कर्म जाल में फँसाया और तरह तरह की आशा इस संसार की बँधवाई। जिसका नतीजा यह हुआ कि सुरत कर्म और बासना के सबब से देह में बारम्बार आती है और उसके संग यहाँ जड़ पदार्थों और दूसरे जीवों के संग बँध कर दुख सुख भोगती है। और जब देह को छोड़ जाती है और जो इसकी चाह भोगों में रही और देही को अपना रूप और इस संसार को अपना देश जाना, तो बारम्बार उस ज़बर चाह और स्वभाव के मुआफ़िक़ देह धारण करेगी और फिर छोड़ेगी यानी जन्म मरण का चक्कर नहीं हटेगा और जो दुख सुख कि देह के साथ लाज़िमी[1] हैं, ज़रूर भोगने पड़ेंगे और उन सख़्त दुखों में कोई इसका सच्चा और पूरा सहाई और मददगार नहीं हो सकता।

(६) जब तक कि सुरतें इस देश में देहियों के साथ बँध कर सुख भोगती रहीं तब तक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल ने ख़ास तवज्जह उनकी तरफ़ नहीं की, लेकिन जब से कि सुरतों को इस संसार में दुख विशेष होने लगा तब दया करके राधास्वामी दयाल संत सतगुरु रूप धारण करके आप इस संसार में प्रगट हुए और अपने बचन से सुरतों को समझाया कि यह देश काल का है। रास्ते का

१—ज़रूरी।

भेद और जुगत चलने की सुरत शब्द मार्ग से बतला कर, अपनी दया के बल से उनको अंतर में चढ़ाना और आहिस्ता आहिस्ता पिंड से न्यारे करना शुरू किया और ऐसी मौज मेहर और दया से फ़रमाई कि जो कोई उनके चरण की सरन लेकर, उस जुगत की कमाई सच्चे मन से प्रेम अंग लेकर शुरू करे, उसको वे आप दया से मदद देते हुए, काल और कर्म और माया के विघ्नों से बचा कर, घट में एक मुक़ाम से दूसरे और दूसरे से तीसरे और इसी तरह धुर धाम में पहुँचा कर चरणों में बासा[1] देंगे कि जहाँ हमेशा के वास्ते परम आनन्द को प्राप्त होकर, दर्शन के बिलास का सुख और आनन्द लेता रहे। सुरत शब्द मार्ग से मतलब यह है कि जिस धार पर सुरत उतर कर आई, उसी धार को पकड़ कर लौट जावे और वही धार रूह और जान और अमृत और नूर[2] और शब्द की धार है, यानी आवाज़ आसमानी को सुनते हुए, जहाँ से कि वह आवाज़ आती है, उस मुक़ाम पर पहुँचना।

(७) जो जीव कि इस बचन को सुन कर और ऊपर की लिखी हुई बातों का अपने मन में ग़ौर और विचार करके समझेंगे कि जोकि इस देह और देश को छोड़ना ज़रूर पड़ेगा और जो बासना देह और भोगों की रही तो फिर जन्म लेना भी ज़रूर होगा, इस वास्ते जन्म मरण और देह के दुख सुखों से बचने को नज़र से और वास्ते हासिल करने परम आनन्द के, सुरत के

१—निवास। २—प्रकाश।

निज देश में, मुनासिब और ज़रूर है कि आँख के स्थान से सुरत को अंतर में ऊँचे तरफ़ (जहाँ कि सुरत का निज देश है) उलटाने का जतन, जैसा कि राधास्वामी दयाल ने बताया है, किया जावे, तो उनको वक़्त तलाश मौज से ज़रूर पता राधास्वामी दयाल के सतसंग का मिल जावेगा और वहाँ से जुगत अभ्यास की भी मालूम हो जावेगी। और जब वह सच्चे मन से प्रेम के साथ अभ्यास शुरू करेंगे, तब उनको राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से, अंतर और बाहर, मदद करते जावेंगे कि जिसमें उनका रास्ता आहिस्ता आहिस्ता तै होता[1] जावे और एक दिन धुर धाम में पहुँचा देंगे।

और जो जीव कि इस बचन की प्रतीति न करके संसार और उसके भोग बिलास में फँसे रहेंगे, वे बदस्तूर[2] जन्म मरण और देहियों के साथ जो दुख सुख लाज़िमी हैं भोगते रहेंगे और काल के जाल से छुटकारा उनका नहीं होगा, क्योंकि सिवाय संत सतगुरु के और किसी की ताक़त नहीं है कि जीवों को काल के जाल से निकाल कर निज घर में पहुँचावे। रास्ते के यानी तीसरे और दूसरे दर्जे के मुक़ामों में जोगी और जोगेश्वर और दूसरे महात्माओं की की मदद से चाहे कोई पहुँच जावे, पर कुछ अरसे तक सुख भोग कर फिर नीचे उतारा जावेगा यानी जन्म मरण की फाँसी, चाहे जल्द होवे या देर करके, काटी नहीं जावेगी और निज घर में, जो कि माया के घेर के पार है,

१—तै होता—कटता। २—हस्ब मामूल।

बासा नहीं पावेगा।

(८) तीर्थ, व्रत और मूर्त्तिपूजा और जप तप आदिक साधन[१] करने वाले और विद्या के पढ़ने वाले लोगों को इन कामों के करने से सच्ची मुक्ति का फल नहीं मिल सकता, क्योंकि इन कामों का कुछ भी तअल्लुक़[२] सुरत रूह की धार से, जो मस्तक से उतर कर आँखों के मुक़ाम में ठहरी है, नहीं है और न इनका असर कुछ उस पर पहुँचता है। फिर यह काम मुक्ति के साधन कैसे हो सकते हैं? मुक्ति या उद्धार बंधनों से छूटने और निज घर में (जहाँ माया नहीं है) पहुँचने का नाम है और जब कि सुरत बदस्तूर आँखों के मुक़ाम पर तन मन और इन्द्री और जगत में बँधी रही और कुछ भी उसको इस स्थान से तरफ़ अपने निज घर के हरकत[३] नहीं हुई तो बंधन कैसे छूट सकते हैं और सुरत और मन ऊपर की तरफ़ को कैसे चढ़ सकते हैं? इस वास्ते जिस क़दर बाहरमुख कार्रवाई कि कुल मतों में, जो आज कल जारी हैं, हो रही है, वह सब शुभ कर्म का फल यानी थोड़े अरसे के वास्ते सुख दे सकती है। पर सच्चे उद्धार की प्राप्ति के लिए यह कार्रवाई कुछ काम नहीं दे सकती।

(९) इसी तरह जो लोग किसी मत में अंतरमुख कार्रवाई करते हैं यानी मुक़ाम नाफ़[४] या हृदय या किसी और चक्र में (जो छः चक्र में शामिल है) अभ्यास नाम का या ध्यान वग़ैरह या पवन[५] के रोकने या ठहराने का

१—उपाय। २—संबंध। ३—आगे बढ़ना। ४—नाभि। ५—प्राण।

जतन कर रहे हैं और उस कार्रवाई का सिलसिला[१] सुरत की धार से नहीं लगा हुआ है, तो भी संत मत के मुआफ़िक़ बाहरमुखी है। क्योंकि घट दो हैं, एक स्थूल तअल्लुक़ पिंड के, उसमें छः चक्र हैं और दूसरा सूक्ष्म यानी निज घट, जो मस्तक में है। यह दोनों आपस में मुँह मिला कर गर्दन के मुक़ाम पर जमे हुए हैं। एक नीचे का घट सीधा और ऊपर का घट उलटा रक्खा हुआ है। कुल शक्तियाँ और क़ुव्वतें[२] ऊँचे दर्जे की निज घट में हैं और कुल मालिक और सुरत का बासा भी निज घट में है। फिर अभ्यास जिसका कि निज घट तक सिलसिला या असर नहीं पहुँचता है, वह बाहरमुख और ख़ारिज[३] है। उससे रूह सुरत पर कोई असर नहीं पहुँचता और इस वास्ते वह सच्ची मुक्ति का साधन[४] नहीं हो सकता।

(१०) जान की धार से बढ़कर रचना भर में कोई दूसरी धार नहीं है। कुल धारें सुरत यानी जान की धार के आधीन हैं, यानी इस धार से चैतन्य हैं। फिर सुरत शब्द मार्ग से (जिसमें सुरत रूह को उसकी धार से, जो ऊपर से आ रही है, मिला कर ऊपर की तरफ़ चढ़ाया जाता है) बढ़कर कोई दूसरा रास्ता या जतन असल में पैदा नहीं हुआ और न हो सकता है। इस वास्ते कुल जीवों को चाहिये कि अपने जीव के कल्याण के वास्ते सिर्फ़ इसी रास्ते पर चलें, यानी सुरत शब्द योग की जुगती कमावें और दूसरे झगड़ों और बखेड़ों में न पड़ें,

१—संबंध। २—ताक़तें। ३—बेमसरफ़। ४—उपाय।

नहीं तो मुफ़्त तन, मन, धन बरबाद करेंगे और हासिल[1] उसका सिवाय थोड़े अरसे के सुख के और कुछ नहीं होगा। और जब वह पुण्य कर्म जिससे सुख हासिल हुआ, ख़त्म हो जावेगा, फिर जन्म मरण के चक्कर में गिरफ़्तार होकर नीची ऊँची जोनों[2] में चक्कर खावेगा और अपने कर्म और बासना मुआफ़िक़ दुख सुख भोग करेगा।

बचन—३१

वर्णन इस बात का कि संत मत के मुआफ़िक़ राधास्वामी पद कुल का आख़ीर और सिद्धान्त[3] है और यही अपार और अनंत है। इसके परे और कोई पद नहीं है और न हो सकता है।

१—सब सतसंगियों को इस बात का पूरा निश्चय होना चाहिये कि राधास्वामी धाम कुल का आदि और अंत पद है और उसके परे कोई और पद नहीं है और न हो सकता है।

२—कुल रचना में तीन दर्जे हैं। एक निर्मल चैतन्य देश, जहाँ सिवाय चैतन्य के दूसरा नहीं है। दूसरा ब्रह्म और शुद्ध माया देश, जिसको ब्रह्मांड कहते हैं और जहां ब्रह्म (यानी ब्रह्मांडी मन) प्रधान[4] है। तीसरा पिंड यानी जीव और मलीन माया देश, जहाँ माया प्रधान है।

३—इन्हीं तीन देश और उन तीनों देश के प्रधानों के

१—नतीजा। २—योनियों। ३—लक्ष्य। ४—मुख्य।

मुआफ़िक़ कुल रचना में तीन दर्जे हो गये। कुल जिस्मों[१] में, चाहे वह ज़र्रे के मुआफ़िक़ होवें या सूरज के, हर एक में वह तीन दर्जे मौजूद हैं। इन दर्जों को मस्तक,[२] काया[३] और चरण कहते हैं और उसी मुआफ़िक़ यह तीन दर्जे यानी उत्तम, मध्यम और निकृष्ट[४], यानी आला[५], औसत[६] और अदना[७] मुक़र्रर हुए।

४—रचना में मस्तक यानी आला और ऊँचा दर्जा निर्मल और महा विशेष चैतन्य का भंडार है और मध्यम दर्जा यानी काया विशेष चैतन्य यानी ब्रह्मांडी मन का (जिसको ब्रह्म कहते हैं) देश है। इसी के यह फुरना हुई कि मैं सत्तलोक यानी ऊँचे दर्जे के मुआफ़िक़ रचना करूं और एक से अनेक हो जाऊं और पिंडी मन इसी की अंश यानी कारज है। और तीसरा दर्जा जिसको चरण और निकृष्ट करके कहा है, माया का देश है। यहाँ जड़ता यानी तमोगुण विशेष है और देह और उसके औज़ार इन्द्रियां वग़ैरह उसका कारज हैं।

५—अब समझना चाहिये कि कुल रचना में तीन प्रधान हैं और हर एक का ख़ास या निज देश जुदा जुदा है, यानी उस ख़ास देश में उसी को प्रधानता यानी विशेषता है और वह तीनों प्रधान यह हैं। पहिले सुरत चैतन्य जिसका निज देश पहिला दर्जा है और वही सबसे ऊँचा और उत्तम है। दूसरा मन, जिसका निज देश दूसरा दर्जा यानी ब्रह्मांड है। तीसरी माया, जिसका निज देश तीसरा दर्जा यानी पिंड (जो कि निकृष्ट है) समझना

१—शरीरों। २—सिर। ३—शरीर। ४—सबसे ख़राब। ५—उत्तम। ६—बीच का। ७—घटिया।

चाहिये। इन्हीं तीन से कुल रचना दूसरे और तीसरे दर्जे में प्रगट हुई और ठहरी हुई है, लेकिन पहिले दर्जे यानी दयाल देश में निर्मल रूहानी रचना है और वहाँ मन और माया बिलकुल नहीं हैं। वहाँ की रचना का ग़िलाफ़ हुबाबी[1], निहायत[2] लतीफ़[3] और रूहानी है, माया की मिलौनी वहाँ नहीं है। इसी सबब से वह देश महा उत्तम और महा आनंद का भंडार है।

६–अब मालूम होवे कि हर एक दर्जे में दो दो भाग हैं। एक ऊपर का और एक नीचे का। और हर एक भाग में तीन तीन दर्जे हैं, यानी हर एक बड़े दर्जे में छः छोटे दर्जे हुए। चुनांचे पिंड में छः दर्जे यानी चक्र हैं। इसी तरह ब्रह्मांड में भी तीन ऊँचे भाग के दर्जे और तीन दर्जे नीचे के भाग में (जहाँ कि तीनों गुण ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का निजरूप है) हैं और ऐसे ही अव्वल दर्जे में भी छः स्थान का भेद किया है। सबमें ऊँचा दर्जा अपार और अनंत और अथाह और अगाध[4] है और वही कुल मालिक राधास्वामी दयाल का निज धाम है।

७–अब ग़ौर करके समझना चाहिये कि जब कि इस रचना में तीन प्रधान का मौजूद होना साफ़ ज़ाहिर है, यानी हर एक जानदार में (१) सुरत और (२) मन और (३) देह और इन्द्री वग़ैरह मौजूद मालूम होते हैं और इन्हीं तीन के वसीले से कुल कार्रवाई हो रही है यानी सुरत चैतन्य कुल की कर्त्ता और प्रेरक[5] है और मन

१—प्रकाशमय। २—अत्यन्त। ३—सूक्ष्म। ३—अथाह। ५—प्रेरणा करने वाली।

उससे ताक़त लेकर अपनी कार्रवाई करता है यानी संकल्प विकल्प[1] उठाता है या आँकि[2] पहिले उसमें गुस फुरना या हिलोर होती है (यानी तरंग उठती है) और फिर उसी मुआफ़िक़ देह और उसके औज़ार इंद्रियाँ प्रगट कार्रवाई करती हैं। और सिवाय इन तीनों के और कोई कार्य-कर्त्ता या कारज देने वाला नहीं है।

८—और जब कि इन तीनों यानी (१) सुरत कार्य-कर्त्ता और (२) मन और (३) देह इंद्रियों वग़ैरह के सिवाय और कोई नहीं है और इन तीनों का देश जुदा जुदा मुक़र्रर हो गया, तो इन तीन देशों के परे और कोई देश या दर्जा नहीं हो सकता। इस वास्ते जो कोई ऐसा कहे कि राधास्वामी धाम के परे और भी मुक़ाम मुमकिन है, यह कहना उसका महज़[3] ग़लत और नादुरुस्त है और इस वास्ते राधास्वामी धाम ही कुल का अख़ीर और सिद्धान्त पद है और इसके परे[4] दूसरा पद हरगिज़ नहीं हो सकता। वही पद अपार और अनंत और अथाह है। उसमें कोई दर्जा या भाग का होना मुमकिन नहीं है।

९—इस वास्ते कुल जीवों को, जो राधास्वामी मत में शामिल होवें, इस बचन को अच्छी तरह समझ कर, पूरा निश्चय कुल मालिक राधास्वामी का हृदय में धारण करके, उन्हीं के चरणों में पहुँचने की आशा दृढ़ करके जतन में लगना चाहिये और किसी तरह का भरम और सन्देह अपने चित्त में इस क़िस्म का न लाना चाहिये कि

१—संकल्प विकल्प —विचार। २—यह कि। ३—क़तई। ४—आगे।

जब वेद मत के सिद्धान्त के परे संत मत का सिद्धान्त उससे ऊँचे देश में समझा गया, तो शायद आइंदा इसके भी परे कोई दूसरा मत अपना सिद्धान्त पद ज़ाहिर करे, क्योंकि ऊपर के लिखे हुए बचन से साफ़ ज़ाहिर और साबित होता है कि राधास्वामी पद के परे और कोई देश का होना नामुमकिन है। और जो कोई अपने मत की बड़ाई दिखाने को कोई पद अपनी तरफ़ से नया नाम रख कर बयान करे, तो उसका कहना बिलकुल झूठ और नामुमकिन समझना चाहिये। और पहिले तो वह पिंड और ब्रह्मांड और उसके परे संत अथवा दयाल देश का भेद तफ़सील के साथ नहीं बयान कर सकेगा, क्योंकि किसी मत में यह भेद खोल कर जैसा कि संतों ने दया करके फ़रमाया है किसी दर्जे तक का भी नहीं लिखा है। फिर जो कोई कि झूठा दावा करे और थोड़ा बहुत भेद रास्ते का भी बयान करे, तो जानना चाहिये कि वह राधास्वामी मत की किताबों से चोरी करके कहता है और जो उसकी कहन की बग़ौर[1] जाँच की जावेगी, तो ज़रूर उसकी चोरी और नादानी[2] भेद के उलटे पलटे या नीचे ऊपर के बयान में निकल आवेगी।

१०—इस वक़्त में जो रास्ते का भेद इस क़दर खोल करके कहा गया है, यह कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने आप संत रूप धर कर प्रगट किया है। किसी पिछले संत ने भी इस तरह सफ़ाई और आसानी के साथ नहीं

१—ध्यान पूर्वक। २—मूर्खता।

खोला। फिर किसी जीव की क्या ताक़त कि जो इस क़िस्म का भेद कह सके, सिवाय उस हालत के कि उसने ख़ुद संत सतगुरु से सीखा और समझा होवे। अब संशय और भरम छोड़कर पूरा और पक्का निश्चय राधास्वामी के बचन का मन में धारण करके, सच्ची और पक्की आशा उनके चरणों में पहुँचने की बाँधकर, सुरत शब्द मार्ग का अभ्यास शुरू करना चाहिये और उनकी दया का बल लेकर आहिस्ता आहिस्ता रास्ता तै करना चाहिये। संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की मेहर से एक दिन धुर पद[1] में पहुँच कर परम आनंद को प्राप्त होगा और वहीं बिश्राम पावेगा। और मालूम होवे कि राधास्वामी मत के अभ्यासी को कुल मतों का सिद्धान्त[2] और फिर वेद मत का सिद्धान्त पद रास्ते में मिलेगा और वहाँ की सैर करके अभ्यासी की सुरत ऊपर चढ़ कर, राधास्वामी के निज धाम में पहुँच कर परम आनंद को प्राप्त होवेगी।

बचन—३२

शब्द द्वारे सुरत अपने निज घर में (जो कि राधास्वामी धाम है) पहुँच सकती है। और द्वारों से धुर मंज़िल तक नहीं पहुँचेगी, कहीं न कहीं रास्ते में अटक रहेगी और कारज पूरा नहीं बनेगा।

१—जितने द्वारे पिंड में हैं, उन सब पर रूह की

१—अंतिम पद। २—लक्ष्य।

धार उतर कर भोग बिलास और संसार का कारज करती है। सो इन सब द्वारों से सुरत के सिमटाव का जतन मुमकिन है यानी चाहे जिस द्वारे से जो कोई सुरत को उलटाना चाहे तो वह उलट सकती है।

२—कुल द्वारे पिंड में नौ हैं, यानी दो द्वारे आँखों के, दो कानों के, दो नासिका के, एक मुख, एक लिंग यानी पेशाब की इन्द्री और एक गुदा यानी पाख़ाने की इन्द्री।

३—जाग्रत अवस्था में अगर्चे सुरत की धार सब इंद्रियों के द्वारों पर मौजूद होकर कार्रवाई करती है, पर आँख के मुक़ाम पर उसकी ख़ास बैठक समझी जाती है, क्योंकि पुतली के ज़रा से खिंचाव और चढ़ाव में फ़ौरन् देह और कुल इन्द्रियाँ बेकार[1] हो जाती हैं।

४—सुरत के चढ़ाने के वास्ते चाहे जिस द्वारे से शुरू किया जावे, कोई आसरा यानी सवारी ज़रूर दरकार[2] है, बग़ैर इसके तनाव और खिंचाव और चढ़ाव मुमकिन नहीं है।

५—जिस किसी ने गुदा चक्र से खिंचाव और चढ़ाई शुरू की, वह प्राणों के आसरे[3] चले। यह सवारी बहुत कठिन है और इसके संजम और परहेज़ भी बहुत मुश्किल हैं। गृहस्थी जीवों से इस अभ्यास का बन आना नामुमकिन है और ख़ौफ़नाक है यानी ज़रा सी बदपरहेज़ी और बेतरतीबी[4] में सख़्त बीमारी या जान के जाने का

१—निकम्मी। २—आवश्यक। ३—सहारे। ४—बेक़ायदगी।

ख़ौफ़ है। और इसी तरह विरक्तों से भी यह अभ्यास दुरुस्ती से पूरा पूरा नहीं बन सकता। इस द्वारे पर यानी गुदा चक्र में गणेश का बासा है और बहुतेरे इस देवता के ध्यान और पूजा में अटक कर यहाँ के यहीं रह गये। और जो किसी बिरले विरक्त से यह अभ्यास प्राणों की चढ़ाई का थोड़ा बहुत दुरुस्ती से बन पड़ा, तो वह नाभि या हृदय या कंठ चक्र में पहुँच कर थक गये और वहीं थोड़ी बहुत सिद्धि[1] और शक्ति हासिल करके रह गये। कोई बिरला अभ्यासी छठे चक्र तक पहुँचा और भक्तराज[2] कहलाया और कोई कोई उसके परे चिदाकाश में समाये और जोगी ज्ञानी कहलाये।

६—किसी किसी ने इन्द्री द्वारे से अभ्यास शुरू किया और काम की धार के आसरे चढ़ने का इरादा किया और किसी क़दर प्राणों के रोकने का अभ्यास भी उसके संग किया, लेकिन यह आसरा या सवारी ऐसी सख़्त और अजीत[3] है कि कोई चलने वाला इस रास्ते से, सिवाय किसी बिरले के, छठे चक्र तक या उसके परे नहीं पहुँचा और इसी द्वारे यानी इंद्री चक्र में थक कर रह गये। इस मुक़ाम के अभ्यासी यानी उपासना वाले बाममार्गी और भैरवी चक्र वाले कहलाते हैं और आजकल के वक़्त में यह लोग निपट बाहरमुखी चाल ढाल और खान पान नामुनासिब में बरताव कर रहे हैं कि जिससे कोई परमार्थी फ़ायदा हासिल नहीं होता, बल्कि और घाटा होता है।

१—आध्यात्मिक शक्ति। २—भक्तों में श्रेष्ठ। ३—बेक़ाबू।

७—कोई कोई मुख के द्वारे जिभ्या को और उसके साथ सुरत चैतन्य की धार को उलटा कर और तालू के मुक़ाम पर जमा कर अमृत रस, जो ऊँचे से टपकता है, पीकर तृप्त हो गये और इतने ही को मुक्ति का साधन समझ कर आगे न चले और इसी आनन्द को आत्मानंद समझा।

८—कोई कोई नासिका[१] के द्वारे पवन खींच कर और भृकुटी[२] तक ले जा कर और वहाँ चंद मिनट ठहरा कर, फिर दूसरे द्वारे से नासिका की पवन को निकालने का अभ्यास करने लगे और इतने ही ठहराव को कुंभक समझ कर और कुछ रोशनी जो नज़र आई, उसको आत्मा का प्रकाश मान कर, इतने ही आनंद में तृप्त हो गये। इस अभ्यास को पूरक[३], रेचक[४] और कुंभक[५] कहते हैं। इनकी भी रसाई[६] इससे ज़्यादा नहीं हुई।

९—कोई कोई कानों को बंद करके और उन द्वारों से चैतन्य धार को समेट कर, मजमुआ का शब्द यानी अनहद घोर[७] (जो मुताबिक़ पातंजल शास्त्र के दस प्रकार की आवाज़ है) सुन कर मगन हो गये और जब मन और इंद्रियाँ उनकी आवाज़ का रस पाकर निश्चल हो गईं, तब चित्त के एकाग्र होने से उनको विशेष रस प्राप्त हुआ और समाधि की सी हालत हो गई। वे इसी आनंद को आत्मानंद और समाधि की हालत को अपना सिद्धान्त समझ कर इतनी ही कार्रवाई करके तृप्त हो गये और शब्द का खोज कि कौन धुन कहाँ से आती है, न किया और

१—नाक। २—भौंह। ३—साँस अंदर लेने की क्रिया। ४—साँस बाहर निकालने की क्रिया। ५—साँस अंदर रोक रखने की क्रिया। ६—पहुँच। ७—शब्द।

इसी सबब से पिंड के परे उनके मन और सुरत नहीं गये यानी अंतरगत[1] छः चक्र के रहे।

१०—किसी किसी ने दृष्टि की साधना इस तौर पर करी कि अपनी नज़र को दोनों आँखें खुली रखकर नाक की नोक पर जमाया या श्याम[2] बिन्दी सफ़ेद दीवार पर लगा कर या चिराग़ की लौ पर ठहराया और तरह तरह की रोशनी देख कर और कुछ थोड़ी सी शक्ति दूर नज़री की हासिल करके तृप्त हो गये। या किसी ने आँखें बंद करके अपनी नज़र को दोनों भवों के मध्य में या उससे ऊपर की तरफ़ जमाया और पाँच रंग की रोशनी को (जो कि तत्त्वों का सूक्ष्म और नूरानी स्वरूप है) या सफ़ेद रोशनी ज़्यादा से ज़्यादा चमक के साथ चारों तरफ़ मिस्ल चाँदनी के छाई हुई देख कर और उसी को आत्मानंद और आत्म दर्शन समझ कर मगन और तृप्त हो गये और इससे आगे न बढ़े।

११—यह सब अभ्यास वाले सत्त पद से बेख़बर थे, क्योंकि इनको सतगुरु धुर[3] पद के भेदी और पहुँचे हुए नहीं मिले और इसी सबब से यह थोड़ी दूर चल कर रास्ते में रह गये। हरचंद कि यह सब जुक्तियाँ ओछी हैं यानी माया के मंडल में ख़त्म हो जाती हैं, पर यह अभ्यासी लोग इन जुक्तियों की भी पहुँच यानी रसाई के मुक़ाम तक नहीं पहुँचे और उनका आनंद भी कच्चा और ओछा रहा यानी जब माया का भारी चक्कर आया उस वक़्त उसी की तरफ़ झोका खा गये। सिवाय इसके इनके

१—अंदर। २—काली। ३—सबसे ऊँचे।

अभ्यास में बड़ी भारी कसर[1] भक्ति की रही यानी इन्होंने किसी को अपना भगवंत क़रार[2] न दिया और न उसके नाम और धाम का भेद पाया, सिर्फ़ आत्मा को सर्व व्यापक मानकर और उसको रोशनी रूप समझ कर उसी में लै[3] होने का इरादा करके अभ्यास करते रहे और हाल यह कि जो रोशनी उनको नज़र आई, वह या तो तत्त्वों का थी या आत्मा का भास[4] नीचे के दर्जे में था। सिर्फ़ योगी ज्ञानी, आत्मा के मुक़ाम तक पहुँच कर चिदाकाश में जो कि छः चक्र के परे है, लै हुए और जोगेश्वर ज्ञानी त्रिकुटी में पहुँच कर उसके परे महा आकश में लै हुए, लेकिन यह दोनों प्राणों के चढ़ाने का अभ्यास करके अपने अपने सिद्धान्त पद में पहुँचे।

१२—लेकिन जोकि प्राणों की चढ़ाई का अभ्यास महा कठिन और ख़तरनाक़ था, इस सबब से कोई बिरले अभ्यासियों को जोगी और जोगेश्वर पदवी हासिल हुई। और बाक़ी अभ्यासी छः चक्र के अंतरगत किसी न किसी स्थान पर रह गये। ऐसी हालत अभ्यासियों की और बाक़ी लोगों का झुकाव बाहरमुखी कार्रवाई में मिस्ल तीर्थ, व्रत और मूर्त्तिपूजा वग़ैरह के और बाचक ज्ञानी और वेदान्तियों का फँसाव विद्या और ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने में मुलाहिज़ा[5] करके कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल आप संत सतगुरु रूप धर कर प्रगट हुए और अति दया करके सीधा और सहज और धुर पद में

१—कमी। २—स्वीकार। ३—लीन। ४—आभास, हल्का प्रकाश। ५—देख।

पहुँचाने वाला मार्ग सुरत शब्द और ध्यान का प्रगट फ़रमाया कि जिसका अभ्यास हर कोई, औरत और मर्द, लड़का, जवान और बूढ़ा, और पढ़ा लिखा और अनपढ़, चाहे गृहस्थ होवे या विरक्त, आसानी से बग़ैर किसी ख़तरे और विघ्न के कर सकता है।

१३—शरह[1] उस अभ्यास की जो कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने दया करके प्रगट किया यह है कि पहिले तो भेद धुर धाम का मय[2] मंज़िलों यानी स्थानों के, जो कि रास्ते में जीव यानी सुरत की पिंड में बैठक के मुक़ाम से धुर पद तक वाक़े[3] हैं, बतलाया और फिर हर एक स्थान का रूप और वहाँ के शब्द का भेद, जो कि जुदा जुदा है, समझाया और हुक्म दिया कि मन और सुरत और दृष्टि को आहिस्ता आहिस्ता उलटा कर, धुन और रूप के संग घट में ऊपर की तरफ़ चढ़ाना शुरू करो। जिस क़दर मन और सुरत सिमट कर ऊपर की तरफ़ सिमटते जावेंगे, उसी क़दर रस और आनंद मिलता और बढ़ता जावेगा और सतगुरु की दया और राधास्वामी दयाल की मेहर से आहिस्ता आहिस्ता और सहज सहज सुरत और मन पिंड से न्यारे होकर ब्रह्मांड में चढ़ते जावेंगे और फिर मन का संग छोड़कर उसके परे सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के देश में चढ़कर पहुँचेगी। और वही इसका निज घर है, जहाँ से आदि में उतरी थी, सो वहीं पहुँच कर महा आनन्द को प्राप्त होगी। वहाँ किसी तरह का कष्ट और क्लेश और

१—बयान। २—साथ। ३—स्थित।

जन्म मरण और काल और कर्म का चक्र नहीं है।

१४—सुरत शब्द मार्ग के अभ्यासी को दिन दिन अपने बंधन, जो कि पिंड और कुटुम्ब परिवार और भोगों और संसारी पदार्थों के साथ लगे हुए हैं, ढीले होते और छूटते हुए मालूम होंगे और उसी क़दर दिन दिन कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रेम और विश्वास और सतगुरु के चरणों में प्रीति और प्रतीति भी बढ़ती जावेगी, यानी अपनी इसी ज़िन्दगी में अपना उद्धार होता हुआ दिखलाई देता जावेगा।

१५—बड़ी महिमा इस अभ्यास की यह है कि इसके कराने वाले और हर दम रक्षक[1] आप राधास्वामी दयाल हैं। सच्चे अभ्यासी को इस करनी के करने में किसी क़िस्म की तकलीफ़ या क्लेश अंतर में नहीं होता, बल्कि दिन दिन उमंग और शौक़ इस अभ्यास के करने और बढ़ाने का बढ़ता जाता है और अपने प्रीतम कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और दया और हर तरह की रक्षा अन्तर और बाहर प्रत्यक्ष मालूम होकर प्रेम और निश्चय को बढ़ाती और पकाती जाती है कि जिससे दिन दिन आनन्द बढ़ता जाता है और अपने सच्चे और पूरे उद्धार के होने में किसी तरह का शक और शुबहा[2] बाक़ी नहीं रहता।

१६—राधास्वामी मत के अभ्यासी की सुरत अपनी यानी जान की धार पर सवार होकर निज घर की तरफ़

१—रक्षा करने वाले। २—संदेह।

उलट कर चढ़ती है। और बाक़ी जितने अभ्यास कि और मतों में जारी हैं, उनमें चढ़ाई किसी न किसी मायक[1] धार पर सवार होकर की जाती है। और इस सबब से वे माया के घेर में (कि जहाँ जन्म मरण का चक्कर देर सवेर जारी है) ख़त्म हो जाते हैं, यानी ऐसे अभ्यासियों का, चाहे वे अपने मत के सिद्धान्त पद तक भी पहुँच जावें, सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होता।

१७—और मालूम होवे कि किसी मत का कोई अभ्यास चढ़ाई का इस वक़्त में बग़ैर कमाई संतों की जुगत यानी सुरत शब्द मार्ग के क़तई नहीं बन सकता और इस मार्ग का भेद सिर्फ़ संत सतगुरु या साधगुरु या उनके सच्चे और प्रेमी अभ्यासी सतसंगी से मिल सकता है। और किसी तरह कोई भेद और जुगत अभ्यास की मालूम नहीं कर सकता और जो कोई किताबों को देख कर या थोड़ा बहुत हाल ज़बानी लोगों से सुन कर अपनी तजवीज़ पर अभ्यास शुरू करेगा, उसका रास्ता हरगिज़ नहीं चलेगा, बल्कि धोखा और झटका और ख़ौफ़ खाकर उस अभ्यास को थोड़े अरसे में छोड़ देगा।

१८—इस वास्ते अब आम तौर पर पुकार के कहा जाता है कि जो कोई अपना सच्चा और पूरा उद्धार सहज और सुखाला[2] चाहता है और दुनियाँ और उसके कारोबार को देख कर जिसका दिल इस तरफ़ से उदास हुआ है, उसको बल्कि कुल जीवों को मुनासिब और लाज़िम[3] है

१—माया की। २—सुखपूर्ण। ३—ज़रूरी।

कि अपने जीव के कल्याण के निमित्त[1] कुल मालिक राधास्वामी दयाल की सरन में आवें यानी दीन अधीन होकर उनकी मेहर और दया के आसरे और भरोसे पर उनकी सहज जुगत की कमाई थोड़ी बहुत (जिस क़दर बन सके) शुरू कर दें, तो उनकी मेहर और दया से थोड़ा बहुत रस मिलता जावेगा और अभ्यास दिन दिन आहिस्ता आहिस्ता बढ़ता जावेगा और इसी तरह एक दिन धुर पद में पहुँच कर निर्भय[2] और निश्चिंत हो जावेंगे।

१६-सुरत शब्द मार्ग की ऐसी महिमा है कि जिसने प्यार और शौक़ के साथ थोड़े दिन भी इस अभ्यास को किया और जो उसका चोला[3] छूट गया तो वह किसी नीचे की जोन में नहीं जावेगा और फिर नरदेही पिछले जन्म से उत्तम और विशेष सुखदाई धारण करके, सतगुरु के सतसंग में शामिल होवेगा और जहाँ से कि अभ्यास छोड़ा है, वहाँ से शुरू करके ऊपर की तरफ़ चढ़ाई की तरक़्क़ी करेगा और जब तक कि धुर पद यानी राधास्वामी धाम में नहीं पहुँचेगा, तब तक बराबर मनुष्य स्वरूप धारण करके तीन, चार या पाँच जन्म में संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया से अभ्यास पूरन करेगा।

२०—एक और सिफ़त[4] राधास्वामी मत के अभ्यास की यह है कि जो कोई सच्चा होकर शौक़ के साथ इस काम में लगेगा, वह नित्य जितना अभ्यास दुरुस्ती से करेगा, उसी क़दर उसको रस और आनन्द मिलता जावेगा यानी

१—लिए। २—निडर। ३—शरीर। ४—ख़ूबी।

अपनी कमाई का जिस क़दर बन सके, रोज़मर्रा[1] फल लेता जावेगा और दिन दिन वह रस और आनन्द बढ़ता जावेगा कि जिससे अभ्यासी के शौक़ और प्रीति प्रतीति की तरक़्क़ी होती जावेगी और नई नई उमंग प्रेम और भक्ति की सतगुरु और कुल मालिक दयाल के चरणों में जागती जावेगी और उसी क़दर संसार और उसके भोगों और पदार्थों से चित्त में उदासीनता पैदा होती और बढ़ती जावेगी। इस तरह राधास्वामी मत के अभ्यासी को पूरा और सच्चा सहज वैराग्य और सहज अनुराग[2] हासिल होकर, उसका काम पूरा हो जावेगा और संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की मेहर और दया से कोई विघ्न काल और माया का उसके काम में हर्ज नहीं डाल सकेगा।

२१—एक और भारी सिफ़त राधास्वामी मत के अभ्यास की यह है कि इसमें रोज़गार और गृहस्थ आश्रम के छोड़ने की ज़रूरत नहीं है। सुरत शब्द अभ्यासी का चित्त सहज स्वभाव, जैसा कि उसका अभ्यास बढ़ता जावेगा, दुनियाँ और उसके भोगों और बंधनों से उपराम[3] होता जावेगा यानी मन से पदार्थों का भाव और चाव[4] जाता रहेगा। फिर, चाहे वह गृहस्थ में रहे और चाहे विरक्त में, कोई भोग और संसारी चाह उसको बाँध नहीं सकेगी यानी इसमें उसकी आसक्ति[5] न होवेगी। बरख़िलाफ़ इसके और मतों में जो अभ्यास जारी हैं, उनके संजम ऐसे कठिन हैं कि शुरू करते ही अभ्यासी को गृहस्थ और

१—हर रोज़। २—प्रेम। ३—उदासीन। ४—शौक़। ५—पकड़।

उद्यम[1] का छोड़ना लाज़िम और ज़रूर होता है। इसी सबब से गृहस्थियों में किसी क़िस्म के अभ्यास का करना या उसका खोज और दरियाफ़्त करना मौक़ूफ़[2] हो गया यानी उनके उद्धार का रास्ता ही बिलकुल बंद हो गया। और वे संजम ऐसे कठिन हैं कि विरक्तों से भी दुरुस्ती से नहीं बन पड़ते। इस वास्ते उनमें से कोई बिरला उस रास्ते पर कुछ दूर तक चला और फिर मन और माया के चक्कर में आकर वहीं थक गया या उलटा गिरा और किसी का काम दुरुस्त नहीं बना यानी ब-सबब न मिलने संत सतगुरु और उनकी जुगती के यह सब ख़ाली रह गये और सच्चा और पूरा उद्धार किसी का नहीं हुआ।

२२—राधास्वामी मत के अभ्यासी को सिर्फ़ इस क़दर संजम दरकार[3] हैं—(१) सच्चा शौक़ राधास्वामी दयाल के दर्शनों का और उनके धाम में पहुँच कर परम आनन्द और बिलास का प्राप्त होना और (२) दुनियाँ के सामान की चाह औसत दर्जे के गुज़ारे के लायक़ उठाना और फ़ज़ूल और नामुनासिब या ग़ैरवाजिब चाहों को घटाना और दूर करना और (३) नशे की चीज़ों और मांस अहार से परहेज़ करना और (४) अपने मन रंजन[4] के लिये किसी को बेसबब और बेफ़ायदा और नामुनासिब तौर पर अंतर या बाहर दुख या तकलीफ़ न देना। जो शौक़ थोड़ा सा है तो वह सतसंग और अभ्यास करके दिन दिन बढ़ता जावेगा और यह संजम भी सहज बनते जावेंगे और रफ़्ता रफ़्ता पुष्ट[5] हो जावेंगे और इस तरह राधास्वामी

१—रोज़गार। २—बंद। ३—आवश्यक। ४—बहलाव। ५—पक्के।

दयाल की मेहर और दया से एक दिन पूरा शौक़ और पूरा प्रेम हासिल हो कर धुर घर में पहुँचा देगा।

२३—राधास्वामी मत के अभ्यासी को सब मतों के सिद्धान्त पद रास्ते में पड़ेंगे यानी वह कुल मुक़ामों की सैर करता हुआ एक दिन कुल मालिक के चरणों में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगा। और वह रास्ते के मुक़ाम यह हैं:—शिवलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, रामलोक, कृष्णलोक, शक्ति का लोक और आत्मा और परमात्मा और ईश्वर और परमेश्वर और ब्रह्म और पारब्रह्म पद और जैनियों और सरावगियों का निर्वाण पद और शुद्ध शिला और बौद्ध मत वालों का सिद्धान्त[1] पद और मुसलमानों के मुक़ामात मलकूत, जबरूत और लाहूत और अर्श और कुरसी वग़ैरह और ईसाइयों का मुक़ाम हज़रत ईसा और ख़ुदा और पिछले संतों का सत्तलोक और सत्तनाम और अनामी वग़ैरह।

२४—इस क़दर बड़ा दर्जा, जैसा कि ऊपर ज़िक्र हुआ, सुरत चलने वाली यानी अभ्यासी को संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और दया से हासिल होना मुमकिन है।

२५—अब मालूम होवे कि जितने अभ्यासों का ज़िक्र ऊपर हुआ है और वह नौ द्वारों के मुक़ाम से शुरू किये जाते हैं, उनमें सुरत की एक एक धार का सिमटाव और फिर खिंचाव होता है। और जो जुगत कि कुल मालिक

१—अंतिम।

राधास्वामी दयाल ने जारी फ़रमाई, उसमें संतों के प्रथम स्थान सहसदलकँवल के (जो कि कुल मतों का सिद्धान्त और आख़िरी मुक़ाम है) रूप और शब्द के आसरे से सुरत की पूरी धारा के सिमटाव और खिंचाव और चढ़ाई का अभ्यास किया जाता है यानी सुरत की असली बैठक का मुक़ाम जो तीसरा तिल है, वहाँ से उसकी चढ़ाई शुरू की जाती है और इस अभ्यास के करते ही अंग अंग से और नौ द्वारों से भी सिमटाव और खिंचाव सुरत का शुरू हो जाता है और वह तीसरे तिल में भरती[1] जाती है और वहाँ ऊँचे की तरफ़ सहसदलकँवल और त्रिकुटी वग़ैरह पर चढ़ती जाती है और यही अभ्यास करने से रफ़्ता रफ़्ता एक दिन धुर मुक़ाम में पहुँच कर पूरा काम बन जाता है।

२६—यह तीसरा तिल योगियों का दसवाँ द्वार है और संतों के बचन के मुआफ़िक़ यह पिंड का नाका[2] है यानी इसके नीचे पिंड और ऊपर की तरफ़ ब्रह्मांड की हद है। राधास्वामी मत का अभ्यास इसी मुक़ाम और द्वारे से शुरू होता है।

जिसका शौक़ सच्चा है और विरह और प्रेम अंग लेकर अभ्यास शुरू करता है, उस पर यह हालत सुरत के सिमटाव और खिंचाव और चढ़ाई की गुज़रती है और वही अभ्यासी निज कर देखता है और जाँच करता है कि इस जुगत की कमाई से (जो दुरुस्ती से बन आवे) बहुत जल्द मन और सुरत का खिंचाव और सिमटाव होता है

१—प्रवेश करती। २—हद।

और उस वक़्त तमाम बदन सुन्न[१] होता जाता है।

२७—अब बुज़ुर्गी और बड़ाई राधास्वामी मत की जुगत की कुल अभ्यासों पर ऊपर के लिखे हुए हाल से साफ़ ज़ाहिर है और उसका असर भी मन और इन्द्री और देह पर बहुत जल्द और पूरा पूरा होता है, और ब-सबब लेने सरन और ओट संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के इस मत के अभ्यासी को कोई विघ्न काल और माया का नहीं सताता है। यह बड़ाई और आसानी और रक्षा और किसी अभ्यास में नहीं पाई जाती है। हरचंद कि मन और इन्द्रियाँ और पाँचों दूत (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) थोड़ा बहुत अपनी पुरानी आदत और चाल के मुआफ़िक़ किसी क़दर अपना ज़ोर दिखाते हैं, पर संत सतगुरु के सतसंग की मदद और राधास्वामी दयाल की दया से वे दिन दिन ढीले और कमज़ोर होते जाते हैं यानी अभ्यासी के चित्त में दिन दिन संसार और उसके पदार्थों की तरफ़ से उदासीनता बढ़ती जाती है और उसके साथ ही चरणों में प्रेम और दीनता बढ़ती जाती है और रास्ता आहिस्ता आहिस्ता तै होता जाता है कि जिसके सबब से दिन दिन सुरत का माया के मंडल से उबार यानी निकास[२] होता जाता है और उसी क़दर संसार के बंधन ढीले और हलके होते जाते हैं। और जिस क़दर इस तरह चढ़ाई होती जाती है, उसी क़दर निर्मल रस और आनन्द मिलता अ र

१—निर्जीव सा। २—निकलना।

बढ़ता जाता है।

२८—जैसे कि भारी दया कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने इस वक़्त के जीवों को दुखी और बलहीन देख कर, इस आसान और पूरी जुक्ति के प्रगट करने में फ़रमाई है, ऐसी किसी वक़्त में जीवों पर नहीं हुई। इसका पूरा पूरा शुकर किसी की ताक़त नहीं कि अदा कर सके। जिस किसी की समझ में यह बात अच्छी तरह से आ गई, उसके मुआफ़िक़ दुरुस्ती से अमलदरामद[1] यानी कार्रवाई शुरू करना, यही उस गहरी और पूरी दया राधास्वामी दयाल की क़दरदानी यानी महिमा जाननी है। फिर वही जीव दयापात्र और बड़भागी समझना चाहिये, क्योंकि वह राधास्वामी दयाल की चरन सरन दृढ़ करके और नित्त अभ्यास करके दिन दिन विशेष दया हासिल करता हुआ एक दिन धुर पद में पहुँच कर अपना काम पूरा बनवा लेगा और परम आनन्द को प्राप्त होकर काल के कष्ट और क्लेश और जन्म मरण के दुक्खों से हमेशा को बच जावेगा।

२९—ऐसी बड़ी महिमा राधास्वामी मत और उसके अभ्यास और जुक्ति की है कि जिसकी बराबरी कोई अभ्यास किसी क़िस्म का, जो दुनियाँ भर में जारी हैं, नहीं कर सकता। सबब यह है कि राधास्वामी मत के अभ्यास का रक्षक कुल मालिक आप है और संत सतगुरु जो उस मालिक के निज अंश यानी निज पुत्र या उसका निज रूप

१—अमल।

हैं, इस संसार में प्रगट होकर उस अभ्यास को जारी फ़रमाते हैं और अपने सरन आए हुए जीवों यानी अभ्यासियों की आप रक्षा और ख़बरगीरी करते हैं और दिन दिन उनके मन और सुरत को निर्मल करके आप अपनी दया से उबारते और चढ़ाते जाते हैं। और जब जब उनके इस क़िस्म के जीव संसार में वास्ते पूरे करने अपने अभ्यास के भेजे जाते हैं, तब तब आप भी अति दया करके, वास्ते उनकी सम्हाल और तरक़्क़ी के प्रगट होकर, सतसंग खड़ा करते हैं।

३०—और मतों के अभ्यास में न तो ऐसी सहज जुगत चलने की है और न पूरा भेद धुर घर और उसके रास्ते का है और न किसी बड़े का अंतर और बाहर सहारा और आसरा लेकर चाल चलती है, बल्कि यह सब जीव अपने बल और पुरुषार्थ का अहंकार लेकर कार्रवाई करते हैं। इस सबब से रास्ते में धोखा और ठोकरें खाते हैं और कहीं न कहीं थक कर या ख़ौफ़ खाकर या थोड़ी बहुत सिद्धि और शक्ति में आसक्त हो कर[1] ठहर जाते हैं और आगे चलने का रास्ता उनका बंद हो जाता है, यानी माया के घेर के पार कोई नहीं गया और न जा सकता है।

३१—कुल रचना प्रेम की धार से प्रकट हुई और प्रेम ही के आसरे ठहरी हुई है और कुल कार्रवाई रचना और जीवों की प्रेम के वसीले से हो रही है, यानी जहाँ जिसका

१—आसक्त हो कर—फँस कर।

शौक़ है, वहीं वह तन मन धन और इन्द्रियों को लगाता है यानी काम में लाता है। फिर राधास्वामी मत में सिर्फ़ प्रेम की महिमा है यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरणों में पहिले प्रीति और प्रतीति करना ज़रूर है और फिर सतसंग और अभ्यास करके वही प्रीति और प्रतीति दिन दिन बढ़ाई जाती है यानी दर्शनों का शौक़ और प्रेम रोज़-ब-रोज़ तेज़ होता जाता है, जिस क़दर कि अभ्यास में चरणों का रस और आनन्द मिलता जाता है।

३२—जिस मत में कि प्रेम नहीं है, वह मत और उसका अभ्यास ख़ाली और थोथा[1] है। इसी सबब से और मतों के अभ्यासी जो कि अपने बल से चले या अपने को ब्रह्म मान कर ख़ुश हो गये, रास्ते में थक कर रह गये, बल्कि उनको सीधा और सच्चा रास्ता भी मालूम न हुआ, माया और काल के जाल में फँसे रहे और उन्हीं के मार्ग होकर के चले कि जिससे उस जाल से बाहर न निकले।

यह बड़ी भारी कसर[2] कुल मतों में है कि पहिले तो प्रेम का कुछ ज़िक्र ही नहीं और जो कहीं है, तो वह मूरतों और ग्रन्थों और नक़्लों में लगाया या व्यापक चैतन्य[3] में ख़र्च किया कि जहाँ से उलट कर कोई फ़ायदा या मदद नहीं मिली और न आइंदा को तरक़्क़ी हुई। और फल उसका यह हुआ कि यह प्रेम रास्ते के तै करने के वास्ते

१—सारहीन। २—कमी। ३—चिदाकाश।

कुछ मदद न दे सका, क्योंकि सच्चे कुल मालिक का भेद न पाया और न उसका रास्ता जाना। और जिनको मालिक क़रार दिया, उनका कोई ठिकाना सिवाय मंदिर और मूरत या तीर्थ या ग्रंथ या और किसी नक़्ल के मुक़र्रर न किया और व्यापक चैतन्य को हर जगह मौजूद समझ कर चलना और चढ़ना सुरत का फ़ज़ूल समझा। इस सबब से सब के सब पिंड ही में रहे और उसकी हद के बाहर नहीं गये और इस वास्ते मन के आकाश में समाये और अपने कर्म और बासना[1] के अनुसार बारम्बार देह धर कर जगत में भरमे। यह हालत उनकी सिर्फ़ न जानने भेद कुल मालिक और न करने प्रेम उसके चरणों में और न मिलने पूरे सतगुरु से हुई। बरख़िलाफ़ इसके राधास्वामी मत में अव्वल खोज सतगुरु का और प्रीति उनके चरणों में करनी पड़ती है और फिर प्रेम और दीनता कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरण कँवल में, जिनका भेद संत सतगुरु समझा कर मिलने का जतन[2] बतलाते हैं, की जाती है और नित्त सतसंग और अभ्यास करके यही प्रेम बढ़ाया जाता है कि जिसकी मदद से रास्ता आसानी से तै होता है और राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया से सब विघ्न हटा कर अभ्यासी एक दिन निज चरणों में पहुँच कर परम आनंद को प्राप्त होता है।

३३—हरचंद[3] सब मतों में थोड़ी बहुत महिमा और

१—इच्छा। २—उपाय। ३—गोकि।

ज़रूरत गुरू की वर्णन की है, पर गुरुभक्ति का बरतावा प्रेम के साथ सच्चे तौर पर इस ज़माने में कहीं जारी नहीं है, बल्कि इस वक्त में जो विद्या और बुद्धिवानों ने समाज खड़े किये हैं, उनमें तो कुछ गुरू की ज़रूरत और क़दर बिलकुल नहीं रक्खी है, क्योंकि इन समाजों में सिर्फ़ किताबों का पढ़ना और पढ़ाना और भजन वग़ैरह का गाना बजाना, जिनमें अंतरी अभ्यास का सिवाय ध्यान (बे ठिकाने[1]) व्यापक चैतन्य के कुछ ज़िक्र नहीं है, जारी है। और यह कार्रवाई सब आदमी जिन्होंने थोड़ी बहुत विद्या क़ाबिल पढ़ने उन किताबों के हासिल की है, बग़ैर मदद अभ्यासी गुरू के कर सकते हैं और ऐसी आसानी और आज़ादगी[2] देख कर, नये विद्या पढ़े हुए लोग कसरत[3] से शामिल हो गये हैं। यह लोग सच्चे मालिक के भेद और निशान से बेख़बर[4] हैं और न उनको उसका खोज और तलाश है और इस वास्ते वे सच्चे और पूरे गुरू की (जिनसे यह भेद पूरा पूरा मिल सकता है और हाल रास्ते का और जुगत चलने की भी मालूम हो सकती है) क़दर नहीं जान सकते और न उनकी पहिचान कर सकते हैं।

३४—राधास्वामी अथवा संत मत में सच्चे और पूरे गुरू की तलाश और वक्त प्राप्ति के उनके चरणों में सच्ची भक्ति और प्रेम करने के वास्ते निहायत[5] ताक़ीद[6] है, क्योंकि इस मत में सच्चे मालिक से मिलने और उसके धाम में चल कर

१—बिना किसी लक्ष्य के। २—स्वतंत्रता। ३—अधिकता। ४—अनजान। ५—अत्यन्त। ६—अनुरोध।

और चढ़ कर पहुँचने की कार्रवाई की जाती है और इसी के दुरुस्ती से बन आने के लिए भेदी और पहुँचा हुआ या चलता हुआ और पहुँचनहार गुरू दरकार[१] है। बग़ैर उसकी मदद के इस मत और अभ्यास की कार्रवाई क़तई[२] नहीं बन सकती है। और कुल मालिक और ब्रह्म यानी त्रिलोकीनाथ का भी हुक्म है कि मेरे धाम में कोई बग़ैर वसीले[३] पूरे गुरू के नहीं दख़ल पा सकता है और न वहाँ ठहर सकता है, यानी जब तक कि पूरे गुरू से मिल कर योग अभ्यास (यानी मिलने का जतन) न करेगा और जो लक्षण[४] और सफ़ाई या जिस क़िस्म की रहनी दरकार है, वह पूरे गुरू की दया और जो अभ्यास वह बतावें उसकी मदद से हासिल न होंगे, तब तक कोई जीव मालिक के धाम में यानी ब्रह्म पद और धुर[५] पद में नहीं पहुँच सकता है और न वहाँ ठहर सकता है।

३५—जब हक़ीक़त[६] हाल यह है जैसा कि ऊपर लिखा गया, तब समझवार और निर्पक्ष[७] सच्चा दर्दी परमार्थी ज़रा ग़ौर करके आप समझ सकता है कि जिन मतों में अंतरी भेद और अभ्यास चढ़ाने मन और सुरत का जारी नहीं है और न उसके भेदी और सिखाने वाले गुरू की ज़रूरत या तलाश है, तो वह मत और जो कुछ कि कार्रवाई उनमें जारी है, सब ज़ाहिरी और ऊपरी मिस्ल छिलके के है और मग़ज़[८] यानी तत्त्व वस्तु की समझ और पहिचान और प्राप्ति उसमें बिलकुल नहीं है। फिर

१—आवश्यक। २—बिलकुल। ३—ज़रिये। ४—गुण। ५—अंतिम। ६—सच्चा। ७—पक्षपात रहित। ८—गिरी।

जीव का उद्धार और माया के मंडल से उबार वहाँ कैसे हो सकता है? शुभ कर्म का फल ऐसी कार्रवाई से अलबत्ता हासिल हो सकता है, पर सच्चे और कुल मालिक का दीदार[1] या उसके धाम[2] में रसाई या चढ़ाई की कार्रवाई शुरू करने के वक्त से थोड़ा बहुत चरणों का रस और आनंद का मिलना और बढ़ना हरगिज़ मुमकिन नहीं है।

बचन ३३

मन और सुरत नौ द्वारों से झाँक कर इस लोक के भोगों में फँस गये हैं, सो दसवें द्वार की तरफ़ झाँकने और चलने से उन बंधनों से छुटकारा होगा और संत सतगुरु की दया से एक दिन निज घर में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होंगे।

१—मालूम होवे कि सुरत की धार अव्वल मन के स्थान पर और फिर वहाँ से (अनेक धारों में तक़सीम हो[3] कर) इन्द्री घाट पर बैठी और इन्द्रियों के मुक़ाम से धारें जारी होकर, उनका मेल इस संसार की रचना और भोगों और पदार्थों के साथ हुआ और हर एक इन्द्री द्वार पर जुदा जुदा रस और स्वाद भोगों का मन लेकर मगन[4] होने लगा।

२—हर एक इन्द्री का रस भारी है और मन सर्व अंग

१—दर्शन। २—लोक। ३—तक़सीम हो—बँट। ४—प्रसन्न।

करके[१] इन रसों का आशिक़[२] और आधीन हो गया है और तवज्जह उसकी इन द्वारों के वसीले से बाहर पदार्थों में और अनेक चीज़ों में निहायत मज़बूती के साथ जम गई है, यहाँ तक कि उन पदार्थों और चीज़ों की हालत बदलने में मन की भी हालत बदल जाती है और उस तवज्जह को जो कोई हटाया चाहे तो नहीं हटती है और ज़ोर और दबाव डालने में निहायत दुख मन को होता है।

३—यह धारें जो इन्द्री द्वारों से निकस कर अनेक जीवों और चीज़ों में बँध गई हैं, इस मन के बाँधने के वास्ते गोया[३] ज़ंजीरें हो गई हैं और आदत करके[४] ऐसी कड़ी और मज़बूत हो गई हैं कि उनके हटाने या तोड़ने में मन को भारी तकलीफ़ होती है। और जो क़ुदरती तौर पर एकाएक कोई बंधन ढीला होता है या टूट जाता है, तो मन निहायत ग़मगीन[५] और उदास होता है और बावैला[६] करता है यानी चिल्लाता बिल्लाता है और रोता है और झींकता है।

४—दुनियादारों की समझ ऐसी ओछी है कि जिस किसी के ऐसे बंधन भारी और कसरत से हैं, उसी को वे दुनियाँ में भागवान और सुखी समझते हैं और वह शख़्स आप भी अपनी गिरिफ़्तारी को बड़भागता समझ कर बहुत ख़ुशी के साथ झेलता[७] है और दिल और जान से उसको क़बूल करके दिन दिन उसकी ज़्यादती चाहता है और बावजूदेकि हर रोज़ झटके और धक्के खाता है,

१—सर्व अंग करके—पूरी तरह। २—प्रेमी। ३—मानों। ४—की वजह से। ५—दुखी। ६—शोर गुल। ७—बरदाश्त करता।

फिर भी ऐसा उस नशे में मस्त और दीवाना[1] हो रहा है कि ज़रा ख़ौफ़ और होश नहीं लाता और ज़रा भी सोच और विचार नहीं करता कि मैं किस आफ़त में फँस गया हूँ और आइंदा क्या हालत होगी और कैसी सख़्ती और तकलीफ़ उठानी पड़ेगी।

५—जब कभी ऐसे जीवों को कोई परमार्थ का बचन सुनावे और उनके हाल की ख़राब हालत से उनको ख़बर देवे और जो कुछ कि इस तरह की रहनी का आइन्दा नतीजा यानी फल होवेगा, उसको जतावे तो यह जीव अचरज करके उसके बचन को तवज्जह के साथ नहीं सुनते, बल्कि वह बचन इनको बहुत बुरे और सख़्त मालूम होते हैं, क्योंकि उनमें इनके भोगों और प्यारे रिश्तेदारों और पदार्थों की नाशमानता और बे-वफ़ाई[2] का ज़िक्र है और जो जो हर्ज इनमें प्रीति और बंधन जारी रखने से आइंदा पैदा होंगे, उनका बयान है।

६—यह लोग बावजूदेकि रोग सोग और मरी और मौत वग़ैरह की कार्रवाई हर रोज़ अपनी आँख से इस दुनियाँ में देखते हैं और जीवों को अनेक तरह की तकलीफ़ों और बीमारियों और मुसीबतों में मुब्तिला[3] और निहायत दुखी मुलाहिज़ा करते[4] हैं, पर उनके दिल पर बहुत कम असर इन बातों का होता है और कभी सोच और विचार इस बात का नहीं करते कि एक दिन दुनियाँ और देह और घर और कुटुम्ब परिवार और माल और असबाब को ज़रूर छोड़ना पड़ेगा और उस वक़्त कैसी

१—पागल। २—धोखेबाज़ी। ३—फँसा ४—मुलाहिज़ा करते—देखते।

सख़्त चोट मन पर पड़ेगी और आइंदा कहाँ जाना होगा और वहाँ क्या हाल होवेगा यानी सुख मिलेगा या दुख और इस ज़िन्दगी में उसका कुछ बन्दोबस्त करना चाहिये या नहीं।

७—जो जीव कि संसार में पैदा होते हैं, शुरू में सब भोले और अनजान होते हैं, पर संग करके उनकी हालत और चाह बदलती जाती है यानी जैसा संग मिला और जैसी हालत की महिमा सुनी और जिन चीज़ों चा लोगों की तबीयत में भाव और बड़ाई देखी, उसी मुआफ़िक़ चाहें भी उठती हैं और वैसी ही हालत पसंद आती है और उसके हासिल करने को जतन किया जाता है। जतन सिद्ध होने पर मन ख़ुश होता है और सिद्ध न होने में दुखी होता है।

८—और परमार्थ का यह हाल है कि अनेक मत, मन और बुद्धि के रचे हुए या ईश्वर और देवताओं और महात्माओं के (जो ब्रह्मांडी मन की अंश और कला हैं) जारी किये हुए इस दुनियाँ में फैल रहे हैं और हर एक अपनी अपनी समझ और तजरुबे और चाह और पहुँच के मुआफ़िक़ अनेक रीति से बयान करता है कि फ़लाँ फ़लाँ काम करने से आइंदा सुख मिलेगा या ईश्वर या किसी देवता या महात्मा की भक्ति और सेवा करने से यह यह फ़ायदा होगा। फिर बिचारे जीव हैरान[1] हैं कि किसका कहना मानें और किसका न मानें। इस वास्ते सब के सब अपने अपने क़ौम और बुज़ुर्गों की चाल ढाल और

१—परेशान।

कार्रवाई के मुआफ़िक़ थोड़ा बहुत अमलदरामद[1] करने लगे और खोज और तलाश पूरी और सच्ची समझ देने वाले का किसी के दिल में पैदा नहीं हुआ। और जो किसी ने अपनी बुद्धि और विद्या के बमूजिब[2] तलाश भी करी तो विद्यावानों के ग्रंथ और किताबें पढ़ कर और ओछी या उलटी समझ धारण करके और भारी ग़लती में पड़ गये कि वहाँ से उनका निकालना ज़्यादा मुश्किल हो गया।

९—खुलासा यह है कि सच्चे और कुल मालिक का पता और भेद किसी को नहीं मिला और न सच्चा और सीधा रास्ता अपने निज घर में जाने का कि जिससे आवागमन और देह धर कर दुख सुख भोगना दूर हो जावे, मालूम हुआ। फिर सब जीव मन और बुद्धि की निकाली हुई चालों में, कि जिनसे भूल और भरम नहीं मिट सकता और न दुख सुख के जाल से छुटकारा मुमकिन है, अटक[3] गये।

१०—असल हाल यह है कि ईश्वर या ब्रह्म या महात्मा या देवता, मिस्ल ब्रह्मा विष्णु और महादेव वग़ैरह, आप ही सच्चे और कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के भेद से बेख़बर थे। इस सबब से जो बानी और बचन और किताबें मज़हबी उन्होंने बनाईं, उनमें वह भेद कुल मालिक का और जुगत पहुँचने की उसके धाम में बयान नहीं की। और जो ब्रह्म पद तक का भेद और जैसी जुगत उसके प्राप्ति की प्राणायाम और और[4] साधनों के

१—अमल। २—अनुसार। ३—फँस। ४—दूसरे।

वसीले से वर्णन करी, वह ऐसी कठिन और ख़तरनाक और संजम[1] उसके ऐसे सख़्त कहे कि उसकी कार्रवाई गृहस्थ और विरक्त दोनों से न हो सकी। और इस तरह सब के सब ख़ाली रह गये यानी सच्ची मुक्ति के रास्ते पर कोई न चल सका, सिर्फ़ थोड़ा बहुत अभ्यास करके और कुछ लज़्ज़त[2] और सरूर[3] या सिद्धि शक्ति के हासिल होने पर रास्ते में तृप्त[4] हो गये और आगे न बढ़े।

११—और जोकि ख़ुदमतलबी यानी स्वार्थी लोग जीवों को उपदेश देने के वास्ते जा-ब-जा[5] बहुत से प्रगट हो गये और उनका संग करके और बचन मान कर जीवों को तकलीफ़ पहुँची और सरीह यानी प्रत्यक्ष धोखा मालूम पड़ा, इस सबब से अब जो कोई सच्चा रास्ता और भेद बताने वाला मिलता है, तो उसके बचन की ज्यों की त्यों प्रतीति नहीं करते और अनेक तरह के भरम और ख़ौफ़ उठा कर बचन नहीं मानते और वही पुरानी नाक़िस[6] चालों में बारम्बार फँसे और अटके रहना मंज़ूर करते हैं और अपने नफ़े और नुक़सान का बहुत कम ख़्याल करके सच्चे गुरू की तलाश में भी ढीले रहते हैं।

१२—जो जीव कि मूर्ख और निपट[7] दुनियादार और मन सैलानी[8] हैं, वह तीर्थ, व्रत और मूर्त्तिपूजा में अटक रहे और जिन्होंने कि थोड़ी बहुत विद्या पढ़ कर अपनी बुद्धि किसी क़दर जगाई, वे ज्ञान के ग्रंथ पढ़ने पढ़ाने में बाचक रह गये यानी समझ बूझ परमार्थ की किसी क़दर

१—परहेज़। २—मज़ा। ३—आनन्द। ४—संतुष्ट। ५—जगह जगह। ६—ख़राब। ७—बिलकुल। ८—घूमने फिरने के शौक़ीन।

हासिल की, पर उसके मुआफ़िक़ अभ्यास नहीं किया। इस सबब से उनकी सुरत रूह का घाट यानी स्थान नहीं बदला और निरे बातून[१] रह गये।

इनमें से बाज़ों ने अपने तईं ब्रह्म मान कर बिलकुल निश्चिंताई[२] और बेख़ौफ़ी इख़्तियार करी और अपने मन और इन्द्रियों की चाल और चाह को उनका स्वभाव समझ कर बेधड़क सैर और तमाशा और भोगों में (जब वे भाग से मिल गये) बरतने लगे और गृहस्थियों को इस क़िस्म का ज्ञान सिखा कर उनको भक्ति मार्ग से हटा कर बेधर्म[३] कर दिया।

१३—कोई कोई जीव तप जप और अनेक क्रियाओं के साधन में लग गये, जैसे नेती धोती[४] बस्ती[५] क्रिया करना और खड़े रहना या मौन साधना[६] या जल शयन[७] करना या पंच अग्नि तपना या हमेशा तीर्थों में भरमते रहना या मेले तमाशों में उलटे लटकना या कीलों पर बैठना या नंगे रहना और अनेक तरह के स्वाँग बना कर जगत को रिझाना[८] वग़ैरह। इन कामों में किसी तरह का परमार्थी फ़ायदा नहीं है। अलबत्ता थोड़ी सफ़ाई जिस्मानी[९] हासिल हो सकती है या यह कि लोगों को ख़ुश करके धन कमाना और अपनी मान बड़ाई करानी।

१४—बहुत से जीव ख़ास कर वे जिन्होंने नई विद्या पढ़ी, वे अनेक तरह के शक और शुबहा निस्बत कुल मालिक और सुरत रूह के अपने मन में पैदा करके

१—बातें मारने वाले। २—बेफ़िक्री। ३—धर्म से पतित। ४—हठ योग की क्रियाएँ। ५—वस्तिकर्म। ६—चुप रहना। ७—पानी में रहना। ८—प्रसन्न करना। ९—शरीर की।

परमार्थ से बिलकुल बेमुख[1] हो गये और खान पान और सैर तमाशे और कुटुम्ब परिवार और धन सम्पत्ति के मोह में फँस कर और उसी को माहसल अपनी ज़िंदगी का यानी इस नर देही का फल और लाभ समझ कर मगन हो गये और परमार्थ का खोज फ़ज़ूल समझ कर उस तरफ़ की कार्रवाई बिलकुल बंद कर दी और आज़ादी को पसंद करके बेधड़क और बेक़ैद, जैसी रहनी कि उनको पसंद आई, उसी मुआफ़िक़ रहने लगे और अपने मन की चाह के मुआफ़िक़ खान पान और लिबास[2] वग़ैरह में बरतने लगे।

१५—ऐसी हालत जगत की देख कर यानी जीवों का परमार्थी उद्धार क़तई बंद मुलाहिज़ा करके कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल संत सतगुरु रूप धारण करके प्रगट हुए और अति दया करके भेद अपने धाम का और हाल रास्ते और मंज़िलों का और जुगत सुरत के वहाँ चढ़ कर पहुँचने की आसान और निर्विघ्न[3] तरीक़े से वर्णन करी और जीवों को निहायत मेहरबानी से समझाया कि नौ द्वारों में सुरत की धार का बरताव रोज़मर्रा इस लोक में हो रहा है और हर एक द्वारे पर थोड़ा बहुत रस या स्वाद या ख़ुशी मन को उन इन्द्रियों के विषय यानी भोगों के वसीले से हासिल होती है और इसी क़दर रस और स्वाद और ख़ुशी को प्राप्त होकर, कुल जीव बहुत शौक़ के साथ भोगों में लिपट गये और असली आनन्द, जो मन

१—विरुद्ध। २—पोशाक। ३—बिना विघ्न के।

और सुरत को अंतर में दसवें द्वार की तरफ़ तवज्जह करने से मिल सकता है और जो आनन्द कि निर्मल और ठहराऊ और स्वतंत्र (यानी जीव के इख़्तियार में) है, उसको भूल कर और किसी से उसका भेद और पता न पाकर, बिलकुल बेख़बर रह गये और इस तरह अपने जीव का भारी अकाज[1] किया।

१६–दसवें द्वार से मुराद[2] उस द्वारे से है कि जिसमें हो कर रूह की धार ऊँचे मुक़ाम से उतर कर पिंड को तरो-ताज़ा[3] करती है और ताक़त बख़्शती है। और वही धार नौ धारों में तक़सीम होकर, हर एक इन्द्री के द्वार पर बैठ कर, दुनियाँ के भोगों का रस देती है। तो जब कि उसके एक एक हिस्से में इस क़दर स्वाद है कि जीव उसी में लिपट कर मस्त और बेहोश हो गये, तो उस धार में (जिसकी वह नौ धारें एक एक हिस्सा हैं) किस क़दर रस और आनन्द बग़ैर वसीले भोगों के हासिल होना मुमकिन है। इस वास्ते कुल जीवों को लाज़िम[4] और मुनासिब मालूम होता है कि उस धार का पता और भेद लेकर उससे मन और सुरत और इन्द्रियों को थोड़ा बहुत समेट कर मेल करें, तब उसकी बुज़ुर्गी और महिमा की थोड़ी बहुत ख़बर होवे कि अपने घट में ही महा आनन्द हर वक़्त तैयार और मौजूद है और कोई दिन अभ्यास करके मन और सुरत के लगाने से मिल सकता है।

१७–और राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया कि जिस

१—हानि। २—मतलब। ३—हरा भरा। ४—ज़रूरी।

धार पर सुरत उतरी है (और वही धार जान और नूर[1] और अमृत और शब्द की धार है) उसी धार को पकड़ के यानी शब्द की धुन को सुनते हुए सुरत को चढ़ाना चाहिये यानी पिंड देश से जो दुख सुख और मलीनता का भंडार है, सुरत को निकाल कर पहिले ब्रह्मांड में और उसके परे सत्तपुरुष राधास्वामी धाम में, जहाँ से कि आदि में सुरत उतरी थी, पहुँचाना चाहिये। जब तक यह कार्रवाई न की जावेगी, तब तक सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होवेगा यानी देहियों के साथ दुख सुख के भोग और जन्म मरण के चक्कर से छुटकारा और बचाव नहीं होगा।

१८—नौ द्वारों के वार[2] यानी इस लोक की रचना में सुरत और मन की धार इन्द्रियों के वसीले से बराबर जारी है और हर एक द्वारे पर थोड़ा बहुत रस लेती है। फिर दसवें द्वार की तरफ़ भी जो कि निज घट (यानी मस्तक) में है, सुरत की धार को संत सतगुरु से भेद रास्ते का और जुगत चलने की लेकर ज़रूर चलना चाहिये। तब उस गहरे आनन्द और रस की, जिसके सामने सर्व रस यहाँ के भोगों के आहिस्ता आहिस्ता फीके पड़ते जावेंगे और जो घट में स्वतंत्र, बग़ैर मेहनत और ख़र्च करने धन के, जब चाहो जब छिन भर में हासिल हो सकता है, ख़बर पड़े और तब मन और सुरत उमंग कर उस आनंद और रस के दिन दिन ज़्यादा लेने के वास्ते ऊँचे देश की तरफ़ दौड़ने लगेंगे।

१९—यह काम बग़ैर दया और मदद संत सतगुरु के

१—प्रकाश। २—इसी तरफ़ यानी नीचे की तरफ़।

दुरुस्ती से नहीं बन सकता है। इस वास्ते राधास्वामी दयाल ने ताक़ीद के साथ फ़रमाया कि पहिले सतगुरु का खोज करके उनके चरणों में प्रतीति सहित[1] प्रीति करो और उनका सतसंग और सेवा और आरती करके उनको अपने ऊपर मुतवज्जह और मेहरबान कर लो। तब वे प्रसन्न होकर जो उपदेश सुरत शब्द के अभ्यास का करें, उसकी कमाई आहिस्ता आहिस्ता बन पड़ेगी यानी मन और सुरत, शब्द की धुन को पकड़ के घट में आँखों के मुक़ाम से चलना और चढ़ना शुरू करेंगे और जिस क़दर दसवें द्वार की तरफ़ इनकी धारा जारी होवेगी यानी मन और सुरत की चाल चलेगी, उसी क़दर रस और आनन्द आवेगा और दिन दिन बढ़ता जावेगा और संत सतगुरु की दया से माया और काल के विघ्न रास्ते में हलके और दूर होते जावेंगे और रास्ता आसानी से तै होता जावेगा। इस तरह एक दिन सुरत पिंड और ब्रह्मांड और मन और माया के घेर से न्यारी होकर अपने निज देश में पहुँच कर परम और अमर आनंद को प्राप्त होगी।

२०—और राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया कि माया और काल ने अनेक तरह के भोग और बिलास इस लोक में वास्ते लुभाने और फँसाने सुरत के रचे हैं और सुरत यहाँ इस क़दर मन और इन्द्रियों के बस में पड़ गई है कि अपने बल से भोगों को छोड़ नहीं सकती। और चाहे जिस क़दर समझौती इसको दी जावे, लेकिन भोगों के

१—के साथ।

सन्मुख होते ही, मन उनकी तरफ़ झुक जाता है और उनमें लिपट जाता है और सुरत की धार भी लाचारी से उसके साथ भोगों की तरफ़ रवाँ[1] हो जाती है। इस वास्ते जब तक कि संत सतगुरु का संग न होगा और वे अपनी मेहर और दया से इसको सहारा नहीं देंगे और वक्त़ वक्त़ पर इसकी सम्हाल नहीं करेंगे, तब तक इसका बचाव और छुटकारा मन और इन्द्रियों के भोगों से कठिन बल्कि नामुमकिन है।

२१—कुल जीवों को (जो अपना बचाव और छुटकारा चाहते हैं) चाहिये कि संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल की सच्चे दिल से सरन दृढ़ करके, उनके चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाते रहें और उनके उपदेश के मुआफ़िक़ अंतरमुख अभ्यास सुरत शब्द मार्ग का करके अपना जन्म सुफल करें।

नर देही का फल और लाभ यही है कि अपने कुल मालिक और निज धाम का पता और भेद दरियाफ़्त करके वहाँ पहुँचने का जतन उमंग और प्रेम के साथ शुरू करें, नहीं तो मनुष्य और पशुओं में कुछ भेद नहीं है यानी जो जीव कि भोगों की प्राप्ति के लिये उम्र भर जतन करते रहे और उन्हीं की आशा मन में धरी रही, तो उनकी कार्रवाई पशुओं की कार्रवाई के साथ बराबर हुई और नर देही जिसमें निज घर की तरफ़ चलने की ताक़त मिली थी, मुफ़्त बरबाद हुई। इस बात की समझ

१—जारी।

लेकर जो जीव अपने निज फ़ायदे के वास्ते राधास्वामी दयाल के उपदेश को मानेंगे और उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करेंगे, वह एक दिन परम आनंद को प्राप्त होंगे, नहीं तो ऊँचे नीचे देशों और जोनों में हमेशा भटकते रहेंगे और दुख सुख भोगते रहेंगे।

अर्थ शब्द ५ बचन ३५ सारबचन नज़्म

कड़ी—१

आरत गाऊँ स्वामी सुरत चढ़ाऊँ, गगन मँडल में धूम मचाऊँ।

अर्थ—आरती राधास्वामी दयाल की गाऊँ और सुरत को गगन मंडल में चढ़ा कर धूम मचाऊँ यानी बिलास करूँ।

कड़ी—२

श्याम सुँदर पद निरखि निहारूँ। सेत पदम पर तन मन वारूँ।

अर्थ—और चढ़ाई के वक़्त श्याम सुन्दर पद यानी श्याम पद, जो अति सुन्दर है, और वहीं सुन्न यानी चैतन्य मंडल का द्वारा है, देखती चलूँ और सेत पदम यानी सत्तलोक में पहुँचकर सत्तपुरुष पर तन मन वारूँ यानी इन दोनों से न्यारी होकर पहुँचूँ।

कड़ी—३

बिन्दाबन मथरा पद लीना। गोकुल जीत कालिन्द्री छीना।

अर्थ—बिन्दाबन यानी देह को, जो बिन्द से बनी है, मथ कर रकार पद यानी सुन्न में पहुँची और गोकुल यानी इन्द्रियों के देश से न्यारी हुई और काल की शक्ति छीन हुई यानी जाती रही।

कड़ी—४

सुन्न महाबन गिरवर चीन्हा। महासुन्न जा अमृत पीना।

अर्थ—सुन्न मंडल की, जोकि महावन है और वही ऊँचा देश यानी पहाड़ है, पहिचान करी और वहाँ से आगे महासुन्न में पहुँच कर अमृत पान किया।

कड़ी—५

धीरज थाल प्रेम की जोती। धुन बिबेक घट मोती पोती।

अर्थ—धीरज का थाल लेकर यानी चित्त में धीरज रख कर और प्रेम की जोति जगा कर यानी प्रेम तेज़ कर के मोती रूप धुनों को घट में छाँट कर पोती हुई यानी सुनती हुई चली।

कड़ी—६

बिरह राग तज रंग लगाऊँ। सुरत निरत ले शब्द समाऊँ।

अर्थ—संसारी भोगों की बिरह छोड़ कर प्रेम बढ़ाऊँ और सुरत और निरत को जगा कर और संग लेकर शब्द में लगूँ।

कड़ी—७

रास मँडल घट लीला ठानी। काली नाथ निरख नभ जानी।

अर्थ—यानी घट में रासमंडल की लीला करके और काल अंग को नीचे डाल कर सुरत रास्ते की सैर करती हुई आकाश में पहुँची।

कड़ी—८

घोर उठा अब गगन कुंज में। मगन हुई लख तेज पुंज में।

अर्थ—आकाश में चढ़ कर आवाज़ गगन मंडल की सुनाई दी और वहाँ पहुँच कर त्रिकुटी में जो स्वरूप है उसका दर्शन करके खुश हुई।

कड़ी—९

मद और मोह हने और सूदे। मोहन मुरली बजी मन बोधे।

अर्थ—और मद और मोह दूर हुए और निहायत रसीली बाँसुरी की आवाज़ सुन कर मन को नया बोध हुआ।

कड़ी—१०

गोपी धुन और शब्द ग्वाल मिल। सुरत गूजरी आई चल चल।

अर्थ—शब्द की धुनें और शब्द सुनती हुई, जो कि गोपी और ग्वाल हैं, सुरत गूजरी यानी इन्द्रियों की जलाने वाली ऊपर को चढ़ती चली जाती है।

कड़ी—११

खेलत कूदत शोर मचावत। दधि अकाश सब मथ मथ लावत।

अर्थ—गोपी और ग्वाल यानी मन इन्द्री वग़ैरह बिलास और शोर करते हुए और आकाश में से दधि यानी चैतन्य को समेटते और छाँटते हुए मगन हो रहे हैं।

कड़ी—१२

पी पी चहुँ दिस होत पुकारा। सुन सुन राधा मगन बिहारा।

अर्थ—और सब चारों तरफ़ से अपने प्रीतम शब्द गुरू को पुकारते हैं और राधा यानी सुरत चलने वाली इस बिलास को देख कर मगन होती है।

कड़ी—१३

स्वामी स्वामी धुन अब जागी। उमँग हिये में छिन छिन लागी।

अर्थ—फिर स्वामी नाम की धुन सुनती हुई नवीन उमंग हृदय में बढ़ाती जाती है।

कड़ी—१४

जक्त बासना सब हम त्यागी। मन हुआ मेरा सहज बैरागी।

अर्थ—यह क़ैफ़ियत देखकर जगत की चाह और बासना बिलकुल छोड़ दी और मन सहज में बैरागी यानी उदासीन हो गया।

कड़ी—१५

कृपा करो अब राधास्वामी। करत रहूँ तुम चरन नमामी।

अर्थ—हे राधास्वामी दयाल ऐसी ही कृपा मेरे ऊपर जारी रक्खो और मैं तुम्हारी बंदना करती रहूँ।

कड़ी—१६

मन को फेरो दीनदयाला। छिन छिन निरखूँ दर्श बिशाला।

अर्थ—और मेरे मन को इस तौर से फेर दीजिये कि छिन छिन आपका दर्शन करती रहूँ।

कड़ी—१७

अब तो लिये जात मोहिं खींचे। मानत नाहिं डारे मोहिं भीचे।

अर्थ—इस वक़्त तो मुझको अपनी तरफ़ खींचे लिये जाता है और कहना नहीं मानता और मुझको तंग कर रहा है।

कड़ी—१८

भक्ति पौद जो तुमहिं लगाई। मेहर दया से सींचो आई।

अर्थ—भक्ति की पौद जो आपने लगाई है, उसको आप ही अपनी मेहर और दया से सींचो यानी बढ़ाओ और तरक्क़ी दो।

कड़ी—१६

मेरा बस मन से नहिं चाले। बहुत लगाये इन जंजाले।

अर्थ—क्योंकि मेरा मन मेरे क़ाबू में नहीं है और बहुत संसारी जाल इसने फैला रक्खा है।

कड़ी—२०

पर तुम समरथ पुरुष अपारा। काटोगे हम निश्चय धारा।

अर्थ—लेकिन आप सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल समर्थ हैं और मुझको यक़ीन है कि आप दया करके इस जंजाल को काटेंगे।

कड़ी—२१

अब आरत सब बिधि हुई पूरी। राधास्वामी रहूँ हज़ूरी।

अर्थ—अब यह आरती सम्पूर्ण हुई और मेरी अर्ज़ और माँग यही है कि राधास्वामी दयाल के सदा सन्मुख रहूँ।

अर्थ शब्द १६ बचन ४१ सार बचन नज़्म

कड़ी—१

सुत बन्नी गुरु पाया बन्ना। देख दरस छिन छिन मन भिन्ना।

अर्थ—प्रेमी सुरत को जब सतगुरु प्रीतम मिले, तब उनका दर्शन करके मन छिन छिन मगन हुआ।

कड़ी—२

तुरिया घोड़ी सहज सिंगारी। धीरज पाखर ता पर डारी।

अर्थ—तुरिया यानी चैतन्य आत्मा की धार को घोड़ी बना कर उस पर धीरज की पाखर डाली यानी धीरज के साथ उस पर सतगुरु सवार हुए।

कड़ी—३

चाँद सुरज दोउ करीं रकाबें। गगन ज़ीन ता पीठ धरावें।

अर्थ—चाँद सूरज यानी इड़ा और पिंगला की रकाबें बनाईं और गगन यानी चैतन्य आकाश रूपी ज़ीन उस पर धरा।

कड़ी—४

बिजली पवन चाल चली घोड़ी। फेर लगाम एड़ दे मोड़ी।

अर्थ—इस तरह सतगुरु उस तुरिया की घोड़ी यानी चैतन्य धार पर सवार होकर बिजली और पवन की चाल के मुआफ़िक़ चले और लगाम यानी मुख उस धार का घर की तरफ़ मोड़ कर ऊपर चढ़ने के वास्ते ज़ोर दिया यानी एड़ लगाई।

कड़ी—५

हीरे लाल झालरें मोती। मानिक पन्ना वारूँ जोती।

अर्थ—ऐसे सतगुरु के ऊपर हीरे, लाल और मोती की झालरें और माणिक पन्ना और जोति स्वरूप को (जो कि मुराद शब्दों की धुन और स्थानों के स्वरूप से हैं) वार डूँ। असल में जैसे कि सुरत चढ़ती जाती है, सब रास्ते के स्थान और वहाँ की रचना सब सतगुरु पर अपने आपे को वारते हैं यानी नीचे पड़ते चले जाते हैं।

कड़ी—६

ता पर बन्ना करो असवारी। बिजली चाल पवन धधकारी।

अर्थ—ऐसी चैतन्य धार की घोड़ी पर सतगुरु बन्ने सवार हुए और वह धार बिजली और पवन की चाल और ज़ोर शोर के साथ चली और चढ़ी।

कड़ी—७

चल बरात पहुँची गगनापुर। बन्नी बन्ना मिले शिष्य गुरु।

अर्थ—चलते चलते सतगुरु और प्रेमी सुरत और बरात यानी और सतसंगी और सतसंगिनों की सुरतें त्रिकुटी में पहुँची और वहाँ सतगुरु और सेवक का मेल हुआ।

कड़ी—८

ब्याह हुआ और फेरे डाले। बन्नी ले बन्ना घर चाले।

अर्थ—और प्रेमी सुरत सतगुरु की परिक्रमा करके उनके साथ घर को चली।

कड़ी—९

घर में धसे मात पितु हरषे। प्रेम मगन मानो बादल बरषे।

अर्थ—जब सत्तलोक में पहुँचे तब सत्तपुरुष (जो कि कुल रचना के माता पिता हैं) देख कर मगन हुए। जैसे कि बादल की वर्षा होती है, इसी तरह प्रेम और आनन्द की वर्षा होने लगी।

कड़ी—१०

मोती हीरे लाल जवाहिर। बुआ बहन मिल किये निछावर।

अर्थ—मोती, हीरे, लाल और जवाहर, बुआ और बहन यानी हंस और हंसिनियों ने न्यौछावर किये यानी सत्त शब्द की धुनों की जो हर एक हीरा, मोती और लाल रूप है, सतगुरु और प्रेमी सुरत पर वर्षा होने लगी।

कड़ी—११

करें आरत हँस बन्ना बन्नी। हंस पुकारं धन्ना धन्नी।

अर्थ—फिर सतगुरु और प्रेमी सुरत ने मगन हो कर उमंग सहित सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की आरत उतारी और चारों तरफ़ से हंस धन्य धन्य पुकारने लगे।

कड़ी—१२

राधास्वामी रलियाँ मन्नी। मगन हुए भइया और बहनी।

अर्थ—यह कैफ़ियत देख कर राधास्वामी दयाल मगन और प्रसन्न हुए और हंस हंसिनी भी इस बिलास में शामिल होकर आनन्द को प्राप्त हुए।

बचन—३४

कुल मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा और भेद सुन कर हर एक जीव को (जो उनके बाल बच्चे हैं) शौक़ मिलने का बिछुड़े हुए बालक के मुआफ़िक़ पैदा करके और सतगुरु से चलने की जुगत दरियाफ़्त करके दिन दिन बिरह और प्रेम अंग के साथ रास्ता तै करना चाहिये

१—जब कि सतसंग में निर्णय[1] सुन कर जीव को अच्छी तरह इस बात की समझ और प्रतीति आ गई कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समर्थ हैं, तब उसके हृदय में प्रीति उनके चरणों की और अभिलाषा उनके दर्शनों की ज़रूर जागनी चाहिये और यही प्रीति सतगुरु से उपदेश हासिल करके थोड़ी बहुत करनी यानी

अभ्यास ज़रूर करावेगी ।

२—वह निर्णय कि जिससे राधास्वामी दयाल के कुल मालिक और सर्व समर्थ होने का निश्चय दिल में पैदा होवे, ख़ुलासा तौर पर यह है कि कुल रचना जो नज़र आती है, उसको ग़ौर के साथ मुलाहिज़ा करने से कुल कर्त्ता का इरादा और मतलब और कारीगरी और क़ायदे के साथ बन्दोबस्त जारी रहने कार्रवाई कुल रचना का साफ़ साफ़ पाया जाता है और यह बातें वास्ते सबूत मौजूद और हस्ती[1] ऐसे मालिक और कर्त्ता की जो कि सर्व समर्थ और आगे पीछे के हाल का जानने वाला है, काफ़ी है।

सिवाय इसके रचना के हाल और कैफ़ियत को देख कर यह भी बात पाई जाती है कि चैतन्य में बसबब मिलौनी और हायल होने[2] पर्दा माया के कितने ही दर्जे हो गये यानी जहाँ माया मलीन और कसीफ़[3] है, वहाँ का चैतन्य ज़्यादातर पर्दा यानी आवरण से ढका हुआ और इस वास्ते उसकी ताक़त का ज़हूर[4] कम है और जिस क़दर कि ऊँचे देश में माया सूक्ष्म और लतीफ़ होती गई है, उसी क़दर वहाँ के चैतन्य पर पर्दा ख़फ़ीफ़[5] और इस वास्ते उसकी ताक़त का ज़हूर ज़्यादा है यानी नीचे के दर्जे के चैतन्य की कार्रवाई (रचना करने और उसके सम्हाल की) ऊँचे देश के चैतन्य के आसरे है, यानी जब तक कि किरणियाँ या धारा ऊँचे देश के चैतन्य से आकर मदद न करें, तब तक नीचे के देश का चैतन्य कुछ कार्रवाई नहीं

१—अस्तित्व । २—हायल होने—बीच में आने । ३—स्थूल । ४—प्रकाश । ५—हलका ।

कर सकता। इस वास्ते विशेष से विशेष चैतन्य के दर्जे तै करके जो आख़ीर में महा विशेष चैतन्य है, उसी के आसरे कुल रचना प्रगट हुई और वहीं से कुल की सम्हाल हो रही है। और वह पद आप निराधार[1] है यानी किसी दूसरे के आसरे नहीं है और अनन्त है और अपार है। उसी का नाम कुल मालिक राधास्वामी दयाल है।

३—जब ऊपर की समझौती से चित्त में निश्चय हो गया कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल हैं और उन्हीं के देश में परम आनंद और अमर सुख प्राप्त हो सकता है, क्योंकि वहाँ माया नहीं है और इसी सबब से आवरण यानी देही और उसका जन्म मरण यानी प्रगट और गुप्त होना भी नहीं है और न किसी क़िस्म का कष्ट और क्लेश और माया देश का सा दुख सुख है, तब इस बात की चाह और अभिलाषा मन में उठनी चाहिये कि जैसे बने तैसे राधास्वामी धाम में पहुँच कर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होवें। और यह बात बग़ैर सतगुरु की मदद और दया के हासिल नहीं हो सकती। इस वास्ते लाज़िम आया कि पहले सतगुरु का खोज किया जावे और जब वे मिल जावें तो उनके चरणों में प्रेम प्रीति करे और उनका सतसंग होशियारी के साथ करके अपने भरम और संदेह दूर करावे। और फिर रास्ते का भेद और सुरत शब्द मार्ग का उपदेश लेकर, राधास्वामी दयाल की दया के आसरे अभ्यास शुरू करे, तो जिस क़दर अभ्यास दुरुस्ती से

१—बिना किसी अधार के।

बनेगा और बढ़ता जावेगा, उसी क़दर रस और आनन्द अंतर में मिलता जावेगा और संसार और उसके पदार्थों की तरफ़ से दिन दिन चित्त हटता जावेगा और जिस क़दर सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया और रक्षा के परचे[1] अंतर और बाहर मिलते जावेंगे, उसी क़दर प्रतीति[2] मज़बूत होती जावेगी और प्रीति बढ़ती जावेगी।

४—ऐसी प्रतीति प्रीति के पैदा होने में मन और इच्छा संसार के भोग और बिलास की तरंगें उठाकर जीव के मन में परमार्थी समझ और दर्शन की चाह को ठहरने और बढ़ने नहीं देते। इस सबब से अभ्यास में भी अकसर गुनावन पैदा करके स्वरूप और शब्द का रस जैसा चाहिये, नहीं लेने देते हैं और प्रतीति और प्रीति को अनेक तरह के भरम उठाकर पकने नहीं देते। इस सबब से जीव अक्सर दुखी रहता है।

५—जो कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समर्थ हैं और वे ही कुल जीवों के सच्चे माता और पिता हैं और जब कि अभ्यासी जीव को उनकी मेहर और दया और रक्षा के परचे अंतर और बाहर मिलने लगे, तो सच्चे प्रेमी के मन में ऐसा शौक़ उनके मिलने का पैदा होना चाहिये, जैसे कि बिछड़े हुए बालक को अपने माँ बाप से मिलने का और स्त्री को अपने बिछुड़े हुए पुरुष से मिलने का। यह दोनों यानी बालक और स्त्री अपने २ प्रीतम से बिछुड़ी हुई हालत में निहायत दुखी रहते हैं,

१—तजरुबे। २—बिश्वास।

यानी उनके मन को सच्चा चैन और पूरा आराम नहीं मिलता। ऐसे ही सच्चा प्रेमी इस संसार को बिदेश समझ कर, अपने निज देश यानी सच्चे माता पिता कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम में पहुँचने की अभिलाषा रखता है और इस लोक में चाहे जैसे भोग और माया के पदार्थ उसको प्राप्त हो जावें, पर पूरी शान्ति नहीं आती और मन में बेकली और घबराहट अपने प्यारे पिता राधास्वामी दयाल से मिलने की बनी रहती है। ऐसे प्रेमी के अभ्यास में मन और इच्छा बहुत कम विघ्न डालते हैं।

६–सच तो यह है कि हर एक परमार्थी के मन में जो राधास्वामी दयाल की सरन में आया, थोड़ी बहुत बेकली और घबराहट अपने निज घर में जाने के वास्ते ज़रूर रहना चाहिये, क्योंकि बग़ैर ऐसी बिरह के रास्ते का तै होना और मन और माया के विघ्नों को राधास्वामी दयाल की मेहर के बल[1] से जीतना और दूर करना दुरुस्ती से मुमकिन नहीं है।

७–ज़ाहिर है कि जिस क़दर जिसके मन में बिरह दर्शन की होगी, उसी क़दर उससे अभ्यास सहज और दुरुस्त बनेगा और विघ्न कम सतावेंगे और जिनके मन में संसार के भोगों और मान बढ़ाई की आशा धरी हुई है, वे अभ्यास में ढीले रहेंगे और मन और इच्छा उनके परमार्थी इरादे और कामों में हमेशा ख़लल[2] और विघ्न डालते रहेंगे।

१—सहारे। २—रुकावट।

इस वास्ते हर एक परमार्थी को मुनासिब है कि दुनियाँ और उसके सामान की हक़ीक़त[1] को अच्छी तरह समझ कर, यानी उनको तुच्छ और नाशमान और ज़हरीला यानी दुखदाई देख कर, उनमें ज़रूरत के मुआफ़िक़ बरतें और ज़्यादा चाह उनकी प्राप्तिऔर भोग की न उठावें।

सतगुरु और प्रेमी जन के संग से यह बात जल्द और आसानी से हासिल होगी और बानी और बचन के मनन और बिचार और अपने मन और इच्छा की निगरानी और जाँच करते रहने से जल्द संसारी स्वभाव और आदत बदलेगी, यानी मन में संसारी तरंगों का उठना और भोगों की तरफ़ धार का दौड़ना आहिस्ता आहिस्ता कम होता जावेगा और प्रेम प्रीति चरणों में सतगुरु राधास्वामी दयाल के दिन दिन बढ़ती जावेगी और उसी क़दर अभ्यास दुरुस्त बनता जावेगा यानी अंतर में रस और आनंद मिलता जावेगा और बढ़ता जावेगा।

शब्द

गुरु प्यारे नज़र करो मेहर भरी ॥ टेक ॥
मैं हुई दासी तुम्हरे चरन की ॥
सब तज[2] तुम्हरे द्वारे पड़ी ॥ १ ॥
तुम्हरे चरन की ओट[3] गही अब ॥
काल कर्म से नाहिं डरी ॥ २ ॥
जब से तुम्हरी सरना लीनी ॥
माया ममता सकल जरी[4] ॥ ३ ॥

१—हैसियत। २—छोड़कर। ३—सरन। ४—नाश हो गई।

प्रीति प्रतीति बढ़त गुरु चरनन ॥
जग से छिन छिन सहज तरी ॥ ४ ॥
शब्द भेद ले सुरत लगाऊँ ॥
सुन सुन धुन अब अधर चढ़ी ॥ ५ ॥
दरस दिखाय किया गुरु प्यारा ॥
तन मन तज हुई आज छड़ी[1] ॥ ६ ॥
राधास्वामी सतगुरु दीनदयाला ॥
अब मोपै पूरन दया करी ॥ ७ ॥

बचन मुतफ़र्रिक़ पिछले महात्माओं के

बचन १

बड़ी भारी अभागता क्या है ? मन का मुर्दा होना और मन का मुर्दा होना क्या है ? मालिक को भूलना और दुनियाँ को चाहना ।

बचन २

लोग कहते हैं कि हम मालिक को पूजते हैं और हक़ीक़त में[2] वे अपने मन के पुजारी हैं और कहते हैं कि मालिक हमारा सहाई है और इससे और उससे मदद चाहते हैं और किसी का शुकर और किसी की शिकायत करते हैं ।

बचन ३

दुनियाँ से होशियार और बचते रहो कि इसने विद्यावान् और बुद्धिवान् और धनवानों को अपना गुलाम बना रक्खा है ।

१—बंधन रहित । २—हक़ीक़त में—दर अस्ल ।

बचन ४

तीन मर्द भक्त, एक औरत भक्त के पास गये और सच्ची भक्ति का ज़िक्र करने लगे। एक भक्त ने कहा कि उसकी भक्ति पूरी और सच्ची है, जो उस तकलीफ़ में जो कि उसका मालिक भेजे, सबर करे। स्त्री ने कहा कि इस बचन से अहंकार की बू[1] आती है। दूसरे भक्त ने कहा कि जो तकलीफ़ में अपने मालिक का शुकर करे, उसकी भक्ति पूरी और सच्ची है। स्त्री ने कहा कि कुछ इससे बढ़कर कहो। तीसरा भक्त बोला कि जो अपने प्यारे की भेजी हुई तकलीफ़ में रस पावे, उसकी पूरी और सच्ची भक्ति है। फिर स्त्री भक्त ने कहा कि इससे भी बढ़कर कहो। तब तीनों भक्त बोले कि अब आप ही कहो। तब वह बोली कि मैं उसकी भक्ति पूरी और सच्ची जानती हूँ, जो कि तकलीफ़ को अपने प्यारे के ध्यान और दर्शन में इस क़दर भूल जावे कि उसको उस तकलीफ़ की ख़बर भी न होवे।

बचन ५

जिस पर मालिक मेहरबान होता है, तो उसका दिल अकसर ग़मगीन[2] और उदास रखता है और जिस पर उसकी नज़र मेहर की नहीं है, उसको दुनियाँ का सामान और ऐश और आराम ज़्यादा देता है।

बचन ६

दुनियाँ से प्रीति लगानी तो आसान है, पर उससे अलहदा होना और छूटना निहायत मुश्किल है। जिस किसी को जिस क़दर दुनियाँ के ऐश और आराम का सामान दिया गया है, उसकी एवज़[3] में उससे सौ गुना

१—गंध। २—दुखी। ३—बदले।

परमार्थ घटा दिया गया है। अगर दुनियाँ सोने की होती और परमार्थ मिट्टी का, तो भी चाहिये था कि लोग परमार्थ ही को क़बूल करते, मगर अफ़सोस है कि परमार्थ सोना और हीरा है और दुनियाँ ख़ाक[1] है और फिर लोग ख़ाक को ही चाहते हैं।

बचन ७

जिसका मन इन तीन कामों में बिलकुल संग न देवे तो जानना चाहिये कि अभी उस पर मालिक की दया नहीं आई। एक मालिक के बचनों के पाठ और सतसंग के वक़्त, दूसरे मालिक के नाम के सुमिरन और भजन के वक़्त, तीसरे मालिक के स्वरूप के ध्यान के वक़्त।

बचन ८

भक्ति में तीन परदे हैं। इन तीनों को मन से हटाना चाहिये, तब परमार्थ और भजन का पूरा रस आवेगा और मालिक का दर्शन पावेगा। पहिला यह कि जो इस लोक और परलोक का राज और भोग उसको दिये जावें और वह उसको पाकर मगन न होवे, क्योंकि जो मगन हो गया तो लालची है और लोभी को दर्शन नहीं मिलेगा। दूसरा परदा यह है कि जो इस लोक और परलोक का राज और भोग उसको हासिल है और वह उससे छीन लिया जावे तो दुखी न होवे और अफ़सोस न करे, क्योंकि जो अफ़सोस किया तो झूँठा है और झूँठा परमार्थ के क़ाबिल नहीं है। तीसरा परदा यह कि चाहे जिस क़दर कोई स्तुति[2] और आदर करे, उस पर अपने मन में ख़ुश न होवे और

१—मिट्टी। २—प्रशंसा।

ग़ाफ़िल[1] न हो जावे, क्योंकि जो ऐसा है तो ओछा पात्र है और अभी ऊँचे देश और गहरे रस के क़ाबिल नहीं है।

बचन ९

शाह इब्राहीम ने (जो बलख़ देश की बादशाही को छोड़ कर फ़क़ीर हुआ) कहा है कि एक वक़्त मैंने एक गुलाम ख़रीद किया और उससे पूछा कि तेरा नाम क्या है। उसने जवाब दिया कि जिस नाम से आप पुकारें। फिर मैंने पूछा कि क्या खायगा। उसने जवाब दिया जो आप खिलावेंगे। फिर मैंने कहा क्या पहनेगा। वह बोला जो आप पहिनावेंगे। फिर मैंने कहा क्या काम करेगा। बोला जो आप हुक्म करेंगे। फिर मैंने कहा क्या चाहता है, तो जवाब दिया कि बंदे[2] को अपनी चाह नहीं उठानी चाहिये, जो मालिक की मरज़ी और चाह है, वही उसकी चाह होनी चाहिये। फिर मैंने अपने दिल में सोचा कि तू भी इसी तरह से मालिक का बंदा है और इस क़दर उम्र तेरी गुज़र गई और अब तक चरन सरन और भक्ति की रीति न जानी। यह ख़याल करके मैं बहुत रोया।

बचन १०

किसी ने शाह इब्राहीम से पूछा कि किस तरह गुज़रान[3] करते हो। जवाब दिया, मैंने चार दस्तूर[4] मुक़र्रर किये हैं। पहिला, जब कोई ख़ास दया होती है, तब शुकर करके चरणों की तरफ़ दौड़ता हूँ। दूसरे, जब कोई क़सूर बन पड़ता है, तब पछताता हूँ और अंतर में प्रार्थना करता हूँ। तीसरे, जब कभी तकलीफ़ आती है, तब सब्र और

१—बेख़बर। २—सेवक। ३—ज़िंदगी बसर। ४—रिवाज।

बरदाश्त के साथ उसकी अगवानी करता हूँ। चौथे, जब भजन और सेवा दुरुस्त बन आती है, तब प्रेम के साथ क़दम आगे रखता हूँ।

बचन ११

जो कोई अपने गुरू की आज्ञा में न बरतेगा, वह कभी सेवक नहीं बनेगा। और जो गुरू से डरता है और गुरू ही की तरफ़ दौड़ता है, उसी का एक दिन सच्चा उद्धार होवेगा।

बचन १२

मालिक कहता है कि जो तू मुझ से मिलना चाहता है, तो वह चीज़ भेट लेकर आ जो मेरे पास नहीं है और वह चीज़ सच्ची दीनता है।

बचन १३

दो बातें याद रखना चाहिये। एक यह कि मालिक तेरा अंतरजामी है। दूसरे यह कि जो कुछ तू करता है, वह उसको देखता है।

बचन १४

एक सेवक ने अपने गुरू से पूछा कि सेवा और भजन में बराबर रस क्यों नहीं मिलता है। जवाब दिया कि जो बराबर रस हर रोज़ मिलता रहेगा तो बिरह और तड़प नहीं उठेगी और इस सबब से तरक्क़ी बंद हो जावेगी।

बचन १५

जो मालिक के प्यारे हैं, उनमें तीन सिफ़तें[1] ज़रूर होंगी। (१) उदारता (२) दया और (३) ख़ातिरदारी सच्चे परमार्थी की।

१—गुण।

बचन १६

अच्छे लोगों की संगत अच्छे काम करने से बेहतर है और बुरे लोगों की संगत बुरे काम करने से बदतर[1] है।

बचन १७

जो कोई तुझको कुछ देवे तो पहिले मालिक का शुकर कर और उसके पीछे उस शख़्स का शुकर कर, जिसके दिल को मालिक ने प्रेर[2] कर तुझ पर मेहरबान किया। और जो कोई मुसीबत तुझ पर आवे, तो दीनता के साथ मालिक की प्रार्थना कर, क्योंकि जो तू सब्र और बरदाश्त नहीं कर सकता है, तो मालिक तुझ पर दया करेगा और प्रार्थना फ़ौरन् कर, क्योंकि जो पछता कर प्रार्थना करता है, वह नादान है।

बचन १८

असल बंदगी और भजन यह है कि सच्चा ख़ौफ़ और सच्चा भरोसा और विश्वास और सच्ची प्रीति मालिक के चरणों में होवे। निशान ख़ौफ़ का यह है कि पाप कर्म छोड़ देवे और निशानी सच्चे भरोसे और विश्वास की यह है कि हमेशा मालिक का भजन और याद करता रहे और निशान प्रीति का यह है कि शौक़ दर्शन का दिन दिन बढ़ता रहे।

बचन १९

जो कोई ख़ूब पेट भर कर खाता है, उसमें यह पाँच इल्लतें[3] पैदा होती हैं। एक यह कि भजन में उसको रस

१—ज्यादा ख़राब। २—प्रेरणा। ३—दोष।

नहीं मिलता। दूसरे उसकी तन्दुरुस्ती में फ़र्क़ आता है। तीसरे दयावंत कम होता है। चौथे मालिक की सेवा और भजन उसको भारी पड़ता है। पाँचवें मन उसका ज़बर हो जाता है।

बचन २०

तीन वक्त अपने मन को होशियार रक्खो। एक करतूत[1] के वक्त याद रक्खो कि मालिक तुझको देखता है और जब बात करो तो याद रक्खो कि जो कुछ कि तू कह रहा है, मालिक सुनता है और जब चुप हो तो याद रक्खो कि मालिक जानता है कि तू किस वास्ते चुप हुआ है।

बचन २१

जो मन कि विद्या और बुद्धि और चतुराई से भरा हुआ है, वह सबके मनों से ज़्यादा सख़्त हो जाता है और ऐसे कठोर मन की पहिचान यह है कि हमेशा नाक़िस[2] तदबीरों और बहानेबाज़ियों में बँधा रहता है और अपनी समझ और तदबीर के आगे गुरू या मालिक के हुक्म को क़बूल नहीं करता।

बचन २२

परमार्थी को इन तीनों बातों का लिहाज़[3] रखना चाहिये। एक यह कि जो किसी को फ़ायदा न पहुँचा सके तो नुक़सान भी न पहुँचावे। दूसरे जो किसी को ख़ुश नहीं कर सके, तो नाख़ुश[4] और दुखी भी न करे। तीसरे अगर किसी की तारीफ़ करना नहीं चाहे तो बुराई

१—काम करने। २—बुरे। ३—ख़याल। ४—नाराज़।

भी न करे।

बचन २३

परमार्थी को इन दस नाक़िस बातों से परहेज़ करना गोया[1] काल के जाल से बचना है। (१) सूमता,[2] (२) अहंकार, (३) मान, (४) ईर्षा, (५) छल और कपट, (६) क्रोध, (७) हिर्स और तृष्णा खान पान में, (८) बेमौक़े और बे फ़ायदे बोलना, (९) चाह और प्रीति धन और माल की, (१०) चाह और प्रीति मान बड़ाई और मर्तबा[3] और हुकूमत की। और इन दस भली बातों को इख़्तियार[4] करना गोया मालिक को प्रसन्न करना है। (१) पछताना और प्रार्थना करना अपने क़सूरों पर, (२) सब्र और धीरज, (३) जैसे बने तैसे मालिक की मौज पर राज़ी होना, (४) शुकराना मालिक की दात और दया का, (५) ख़ौफ़ मालिक की नाराज़गी का, (६) भरोसा मालिक की दया और बख़्शायश[5] का, (७) वैराग्य चित्त में रखना, (८) सेवा और भजन मालिक का करना, (९) सबके साथ मित्र भाव से बरतना, (१०) बढ़ाना प्रेम का सतगुरु और मालिक के चरणों में।

बचन २४

इन पाँच बातों को याद रखना ज़रूर चाहिये। एक किसी की पीठ पीछे बुराई न करना। दूसरे किसी के भेद या गुप्त बात को प्रगट न करना। तीसरे झूँठ बात न बोलना। चौथे सतगुरु की आज्ञा में बरतना। पाँचवें चोरी

१—मानों। २—कंजूसी। ३—ओहदा। ४—ग्रहण। ५—दात।

न करना अंतर या बाहर।

बचन २५

शैतान हज़रत मूसा की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहने लगा कि मैं आपको तीन बातें सिखाता हूँ ताकि मालिक से आप मेरे हक़ में दुआ[१] नेक[२] माँगें। उन्होंने पूछा कि वह तीन बातें क्या हैं। कहा कि क्रोध और तुनकमिज़ाजी[३] से परहेज़ कीजिये क्योंकि जो कोई तेज़ मिज़ाज और हल्का होता है यानी जल्द भड़क उठता है, उससे मैं ऐसे खेलता हूँ जैसे लड़के गेंद से कि जिधर चाहा गेंद को फेंक दिया। दूसरे औरतों से बचे रहिये, क्योंकि संसार में मैंने जितने जाल और फंदे बिछाये हैं, उन सबसे ज़्यादा मज़बूत और भारी फंदा औरतों का है और मुझे इस फंदे का पूरा एतबार[४] है। तीसरे कंजूसता से बचिये क्योंकि जो कंजूस होता है उसका मैं संसार और परमार्थ दोनों मटियामेट[५] कर देता हूँ।

बचन २६

जिसमें यह तीन बातें यानी संतोष और मालिक का ख़ौफ़ और दर्शन की बिरह और बेकली नहीं है, उसका उद्धार मुश्किल है।

बचन २७

किसी अभ्यासी से पूछा कि तुम शादी क्यों नहीं करते। कहा कि दो भूतों से लड़ने की मुझ में ताक़त नहीं है। एक तो मेरा मन भूत है, दूसरे उसका मन होगा।

१—प्रार्थना। २—अच्छी। ३—चिड़चिड़ाहट। ४—भरोसा। ५—बरबाद।

मैं अकेला दो भूतों से किस तरह लड़ सकूँगा।

बचन २८

तीन काम न करने चाहिये, चाहे उनमें किसी क़दर लोगों का ज़ाहिरी उपकार भी होवे। (१) राजों और अमीरों का संग, (२) किसी स्त्री के साथ अकेले बैठना उठना, चाहे वह परमार्थी होवे और तू उसे परमार्थ ही सिखाता होवे, (३) कानों का कच्चा होना[1] कि इसमें बहुत हर्ज और नुक़सान पैदा होते हैं।

बचन २९

थोड़ा सा हाल मनमुख और गुरुमुख की चाल का लिखा जाता है, जिससे अपनी हालत की परख होती रहे—

(१) गुरुमुख का मतलब कुल परमार्थी करतूत से यह रहता है कि मालिक और सतगुरु प्रसन्न होवें। मनमुख सब कामों में अपने मन और इन्द्री का बिलास और प्रसन्नता देखता है।

(२) गुरुमुख भूख प्यास को सहता है ताकि उसका भजन बंदगी अच्छी तरह बने। मनमुख जानवरों की तरह खाने पीने में मगन होता है और परमार्थी करतूत में मन नहीं लगाता है और आलस करता है।

(३) गुरुमुख हमेशा विचार में रहता है और डरता है। मनमुख तृष्णा और चाह दिन दिन बढ़ाता है और बेफ़िक्र और निडर रहता है।

(४) गुरुमुख सतगुरु के सिवाय सबसे बेख़ौफ़ रहता

[1]—कच्चा होना—जो सुने उसे मान लेना।

है। मनमुख सतगुरु के सिवाय सबसे डरता है।

(५) गुरुमुख सतगुरु के सिवाय सबसे निरास रहता है। मनमुख सतगुरु के सिवाय सबसे आस रखता है।

(६) गुरुमुख धन को परमार्थ पर नौछावर[१] करता है, मनमुख परमार्थ को धन पर नौछावर करता है, यानी धन के लिये अपने परमार्थी नुक़सान का ख़्याल नहीं करता है।

(७) गुरुमुख भजन और बन्दगी करता है और रोता है। मनमुख गुनाह[२] करता है और हँसता है।

(८) गुरुमुख तनहाई[३] और एकान्त को पसन्द करता है। मनमुख भीड़ भाड़ और शोर गुल से राज़ी होता है।

(९) गुरुमुख जोतता है और बोता है, पर डरता है कि शायद खेत न काटने पाऊँ। मनमुख न जोतता है और न बोता है, पर आशा बाँधता है कि काट कर खलियान लगाऊँ।

(१०) गुरुमुख शर्मीला और हयादार[४] होता है। मनमुख ढीठ, निर्लज्ज और बेहया[५] होता है।

(११) गुरुमुख कमगो[६] कमरंज[७] और सच्चा है। मनमुख बकबादी, ज़ूद-रंज[८] और झूँठा है।

(१२) गुरुमुख सब काम सलाह और धीरज के साथ करता है। मनमुख सब काम बे सोचे समझे और घबराहट के साथ पूरा करना चाहता है।

(१३) गुरुमुख भजन और ध्यान में लौलीन रहता है। मनमुख ऐंड़ने और सोने में मगन रहता है और बेफ़ायदे वक्त खोता है।

१—क़ुरबान। २—पाप ३—अकेला रहना। ४—शर्म वाला ५—बेशर्म। ६—कम बोलने वाला। ७—कम क्रोध करने वाला ८—जल्द क्रोधित होने वाला।

(१४) गुरुमुख सब का हितकारी[१] है। मनमुख ख़ुद-मतलबी है।

(१५) गुरुमुख की बड़ाई सबके मन में समा जाती है। मनमुख सबके मनों से गिर जाता है।

(१६) गुरुमुख जो मालिक ने दिया है, उसमें सब्र करता है और शुकर करता है। मनमुख बेसब्र और नाशुकरा है।

(१७) गुरुमुख का दिल फूल से ज़्यादा कोमल होता है। मनमुख का दिल पत्थर से ज़्यादा सख़्त होता है।

(८) गुरुमुख किसी बात की तमा[२] नहीं रखता, क्योंकि वह कहता है कि मालिक ने मेरे लायक़ मुझे बहुत दे रक्खा है और उसी में राज़ी रहता है। मनमुख लालची है। उसकी तृष्णा कभी नहीं बुझती, चाहे जितना उसको मिल जावे। इस सबब से वह हमेशा दुखी और नाराज़ रहता है।

(१६) गुरुमुख कभी गाली या बुरा लफ़्ज़ मुँह से नहीं निकालता है। मनमुख अक्सर गाली के साथ बोलता है और बुरा लफ़्ज़ निकालते उसे शर्म नहीं आती।

(२०) गुरुमुख सतगुरु की याद और दर्शन में मगन रहता है। मनमुख दर्शनों में रूखा सूखा और फीका रहता है।

(२१) गुरुमुख की बोली मीठी है, क्योंकि वह हमेशा अमृत रूपी बचन, सतगुरु की महिमा और उनके गुणानुवाद[३] में पगी[४] रहती है। मनमुख की बोली कड़वी है क्योंकि वह

१—भलाई करने वाला। २—तृष्णा। ३—गुण वर्णन। ४—डूबी।

हमेशा संसार की बुराई और भलाई में सनी रहती है।

बचन ३०

जीव को अपनी कसरों की चार तरह से ख़बर पड़ सकती है। एक तो गुरू के सतसंग से कि वे दया करके इसकी कसरों को जतावेंगे। दूसरे हितकारी सतसंगी के पास बैठने से कि वह प्रीति की रीति से इसकी कसरों को दिखाता और समझता रहेगा। तीसरे निंदक और विरोधी के बचन सुनने से, क्योंकि उसकी नज़र हमेशा ऐबों[1] पर पड़ती है और वह बग़ैर किसी लिहाज़ के उनको प्रगट कर देता है। चौथे, और जीवों के हालात को ग़ौर से देखने और सुनने से और जो कसरें उनमें दीखें, उनको अपने ऊपर घटा कर उनसे प'हेज़ करना।

बचन ३१

वह बड़ा मूर्ख है, जो अपने को उत्तम जानता है और वह बड़ा अक़्लमंद है, जो अपनी कसरें निहारता रहता है, क्योंकि जो अपने तईं रोगी नहीं जानेगा, वह अपना इलाज न कर सकेगा। और यह जीव मन के रोगों में ग्रसा[2] हुआ है और इस बीमारी का दूर करना ज़रूर है।

बचन ३२

जो साधू, राजा लोग और बड़े आदमियों के पास जाता है, वह अपने परमार्थ को गँवाता है, क्योंकि उनके ख़ुश करने के वास्ते वह ऐसी बातें और काम करेगा, जिनके सबब से सच्चे मालिक की अप्रन्नता होगी।

१—दोषों। २—फँसा।

बचन ३३

किसी ने एक साधू से कहा कि मैं तुम्हारा सतसंग चाहता हूँ। उसने कहा कि दीनता करनी पड़ेगी। फिर कहा कि मैं मालिक को चाहता हूँ। उसने जवाब दिया कि जो मुसीबत और तकलीफ़ आन कर पड़े, उसको ख़ुशी से झेलना पड़ेगा।

बचन ३४

सतगुरु अपने सेवक को वक़्त मुसीबत और तकलीफ़ और नुक़सान वग़ैरह के इस तरह आज़माइश करते हैं, जैसे सुनार सोने को आग से आज़माता है। कोई सोना ख़ालिस[1] निकलता है और कोई ख़राब यानी मिलौनी का।

बचन ३५

एक साधू ने एक शख़्स को बीमार देखकर मालिक के चरणों में प्रार्थना की कि हे मालिक इस पर दया कर। मालिक ने फ़रमाया कि इस पर और क्योंकर दया करूँ, मैं तो इसी बीमारी के सबब से इस पर दया कर रहा हूँ क्योंकि उसके कर्म इसी तरह काटने के लायक़ हैं और उसकी अंतरी तरक़्क़ी इसी बीमारी के सबब से होगी।

बचन ३६

जो कोई थोड़ा बहुत रोगी बना रहता है, उस पर परमेश्वर की दया है, क्योंकि इसके सबब से वह बहुत से गुनाहों से बच जाता है। ईश्वर का बचन है कि जो मेरे भक्त हैं, उनको मैं तीन बातें देता हूँ, निर्धनता[2], बीमारी, और

१—साफ़। २—ग़रीबी।

निरादर[1] । इसी जुगत से मैं अपने भक्त की रक्षा करता हूँ ।

बचन ३७

एक ने किसी साधू से पूछा कि साधू किसका नाम है । उसने जवाब दिया कि जिसकी बातों से भजन की कैफ़ियत और प्रेम की हालत दिल में पैदा होवे और शौक़ बढ़े और जिसका चुप रहना बिलकुल ध्यान और विचार की हालत है और देखना बिलकुल वैराग्य और इबरत[2] और नसीहत[3] लेना ।

बचन ३८

किसी ने एक साधू से पूछा कि ऐसी बात मुझे बताइये कि जिससे मालिक मुझको दोस्त रक्खे और प्यार करे । कहा कि संसार और मन के संसारी अंगों को दुश्मन यानी परमार्थ में विघ्नकारक जान, मालिक तुझको दोस्त रक्खेगा यानी तुझ पर दया करेगा ।

बचन ३९

जिसने इन छः बातों को इख़्तियार किया, वह सतगुरु का प्यारा हुआ और चौरासी के चक्कर से बच कर निज घर में पहुँचने का अधिकारी हुआ । एक, सतगुरु की जिस क़दर बन सके पहिचान करना और उनकी आज्ञा में बरतना । दूसरी, मन को जानना और उसके कहने में न चलना । तीसरी, सत्य वस्तु को पहिचानना और उसको जकड़ कर पकड़ना । चौथी, झूंठी और असार वस्तु को जानना और उससे हाथ खींचना । पाँचवीं, संसार को जाँचना और

१—बेइज़्ज़ती । २—सबक़ । ३—शिक्षा ।

उसमें होशियारी से बरतना यानी फँसना नहीं। छठी, परमार्थ की क़दर जानना और उसको दृढ़ कर पकड़ना यानी उसके मुआफ़िक़ अपनी करनी और रहनी दुरुस्त करना।

बचन ४०

इस संसार में जो वस्तु कि मालिक ने तुमको दी है, वह पहिले भी किसी को दे चुका होगा और जब तुम नहीं रहोगे, तब भी किसी को देगा। फिर ऐसी नापायदार[१] चीज़ पर कि ज़रूर छोड़नी पड़ेगी, दिल नहीं लगाना चाहिये। सुबह शाम के खाना खाने और तन ढकने के सिवाय और कुछ तुम्हारा हिस्सा नहीं है। इतने के वास्ते काहे को[२] अपने तईं इस क़दर खपाते हो? सतगुरु के चरणों में पहुँच कर उस चीज़ की प्राप्ति के वास्ते क्यों नहीं कोशिश और मेहनत करते कि जो हमेशा रहे और तुम भी उसका हमेशा आनन्द ले सको?

बचन ४१

मालिक की प्रीति और प्रतीति सहित सेवा एक घड़ी की सत्तर वर्ष की बे प्रीति और प्रतीति की सेवा से बेहतर है।

बचन ४२

परमार्थ तीन बातों में है। ख़ौफ़, उम्मीद और मुहब्बत। ख़ौफ़ क्या है? जो बातें परमार्थ में मनै[३] हैं, उनसे परहेज़ करना। उम्मीद क्या है? सेवा और भजन पित्ता मारके[४] करना, जिससे एक दिन अपने निज मुक़ाम

१—क्षणिक। २—क्यों। ३—वर्जित। ४—मेहनत के साथ।

को पा जावेगा। मुहब्बत क्या है? मालिक की मौज और हुक्म में राज़ी रहना।

बचन ४३

सवाल—अभ्यासी सेवक कब सच्चे हृदय से बिनती और प्रार्थना करता है और कब सच्चे मन से अंग अंग उसका सेवा और भजन में लगता है और कब सच्चा होकर मन के विकारों को छोड़ता है?

जवाब—जिस वक़्त मन उसका सच्चा डरता है और ख़ौफ़ खाता है या जब उसके मन में गहरा प्रेम पैदा होता है।

बचन ४४

मालिक ने अपने तईं जीवों से मसलहत समझ कर गुप्त रक्खा है और जो संत या फ़क़ीर उसके भेदी हैं, वह भी संसार में इसी तरह गुप्त रहते हैं और जो मौज होवे तो प्रगट होकर उसका भेद कहते हैं।

बचन ४५

सवाल—परम पद के उपदेश का सच्चा और पूरा अधिकारी कौन है?

जवाब—परम पद के उपदेश का सच्चा अधिकारी वह है, जिसमें यह तीन बातें पाई जावें— (१) एक, निर्लोभी होना यानी जिसके नज़दीक सोना चाँदी और मिट्टी बराबर हों, (२) दूसरी, यह कि संसारियों के बचन की क़दर उसके मन से बिलकुल जाती रही हो, यानी निंदा और स्तुति दोनों उसके नज़दीक समान हों, न स्तुति में ख़ुशी और

न निंदा में दुखी, (३) तीसरी, यह कि मन की तरंगों और बिकारों में न बरतने में ऐसा ख़ुश होता होवे, जैसा कि संसारी उनके बरतने में मगन होते हैं। वही परम पद के उपदेश का पूरा अधिकारी है।

बचन ४६

जो कोई मालिक की याद में ऐसा लगा रहता है कि और कामों की उसको सुध नहीं रहती, तो मालिक उसके ज़रूरी कामों की आप सुध लेता है और उनको दुरुस्त बना देता है, यानी सब तरह से रक्षा और सम्हाल अपने भक्त की वह आप करता है।

बचन ४७

मालिक का जलवा और ज़हूर यानी प्रकाश अंतर में प्रगट है, यानी जो करतूत कि हम करते हैं, उसको वह देखता है। पिता के रूबरू[1] लड़का बदफ़ेली[2] नहीं करता। इस वास्ते हमको भी चाहिये कि अपने सच्चे पिता यानी मालिक के रूबरू बुरे काम सोचने और करने से डरें।

बचन ४८

सच्चे और कपटी भक्त की क्या पहिचान है? सच्चा अंतर और बाहर एकसाँ बरतता है, उसके किसी काम में दिखावा और नमूद[3] नहीं होती। और कपटी दिखावे और नमूद के काम ज़्यादा करता है, पर उसके अंतर में मालिक की प्रीति कम होती है और धन का प्यार उसके दिल में ज़्यादा रहता है। इसी वजह से उसका मन दोरुखा[4] है,

१—सामने। २—बदमाशी। ३—दिखावे के काम। ४—दो तरह का।

जैसे कि रुपया कि जिसकी दोनों तरफ़ें एकसाँ नहीं होतीं।

बचन ४९

ख़ास दया मालिक की उस शख़्स पर जाननी चाहिये जिसको वह अपने चरणों की सच्ची प्रतीति बख़्शें। यह प्रतीति ऐसी रोशनी है, जो मालिक और जीव के बीच में जितने परदे हैं सबको दूर कर देती है।

बचन ५०

मालिक के सच्चे प्रेम और दर्शन के हासिल करने के वास्ते चार दरियाओं को पार करना चाहिये, तब उसके चरणों में पहुँचना मुमकिन है। पहिला, संसार और किश्ती[1] उसकी वैराग्य है। दूसरा, संसारियों का संग और किश्ती उसकी सतगुरु का संग और संसारियों से जिस क़दर बने दूर रहना है। तीसरा, मन और किश्ती उसकी प्रीति सहित सुमिरन और ध्यान और शब्द का श्रवण है। चौथा, गुनावन और तरंगें और किश्ती उसकी मालिक के चरणों का प्रेम और चित्त को एकाग्र करके चरणों में लगाना है।

बचन ५१

मालिक के प्रेमियों का हृदय मालिक के भेद और प्रेम का एक संदूक़चा है। और वह अपना यह अनमोल[2] जवाहिर ऐसे संदूक़चे में नहीं रखता है, जिसमें संसारी चीज़ें रक्खी हुई हैं यानी सच्चे मालिक की प्रीति उसी दिल में पैदा होगी, जो दुनियाँ की ख़्वाहिशों से ख़ाली

१—नाव। २—बेशक़ीमत।

है और वही उसके भेद को जानेगा।

बचन ५२

जो आँख कि अपने मालिक के नूर और जमाल के देखने में मशग़ूल[1] न होवे, अंधी बेहतर है। और जो ज़बान कि उसके गुणानुवाद के गाने में मगन न होवे, गूँगी भली है। और जो कान कि सतगुरु का बचन और मालिक का अंतरी शब्द श्रवण करने में न लगा रहता हो, बहरा अच्छा है। और जो तन कि उसकी सेवा में न लगे, वह नाकारा[2] है।

बचन ५३

जो वक़्त कि गुज़र जाता है फिर वह हाथ नहीं आता है। इस वास्ते वक़्त से ज़्यादा कोई क़ीमती चीज़ नहीं है, इसकी क़दर हमेशा चित में रखना चाहिये और उसको बेफ़ायदा और बुरे कामों में ख़र्च नहीं करना चाहिये। जहाँ तक बने सतगुरु और मालिक की सेवा और बंदगी और याद में ख़र्च करो, ताकि यहाँ और वहाँ दोनों जगह फ़ायदा और सुख हासिल हो।

बचन ५४

जो काम कि मालिक के निमित्त[3] किया जाता है, उसमें बंधन नहीं होता है, पर जो कर्म मालिक के निमित्त न होगा, उसमें मन का बंधन ज़रूर होगा। इस वास्ते फल की आशा छोड़ कर सब काम मालिक के चरणों में अर्पण करके यानी मौज के आसरे करना चाहिये, ताकि

१—लीन। २—बेमसरफ़। ३—लिए।

मन फँसने न पावे, क्योंकि मन के बंधन से दुख सुख पैदा होता है।

बचन ५५

जो लोग कहते हैं कि मालिक है और फिर उसकी बंदगी और उसके चरणों में प्रीति नहीं करते, और बानी पढ़ते हैं और फिर उस पर अमल नहीं करते, और मालिक की दात भोगते हैं, और फिर उसका शुकर नहीं करते, और जानते हैं कि भजन करके महा सुख का स्थान प्राप्त होगा फिर उसकी चाह नहीं उठाते, और समझते हैं कि बिना भजन नरक और चौरासी में जावेंगे और फिर उसका ख़ौफ़ नहीं करते, और जानते हैं कि काल और मन बैरी हैं और फिर उन्हीं के कहने में चलते हैं, और जानते हैं कि मौत सिर पर खड़ी है और फिर उसका सामान नहीं करते, और बहुतेरों को गाड़ दिया और फूँक दिया पर अपने मरने का ख़ौफ़ नहीं करते, और औरों की कसरें देखते हैं और अपनी कसरें दूर नहीं करते—ऐसे शख़्सों की दुआ और प्रार्थना किस तरह मालिक क़बूल करे।

बचन ५६

जो कोई कि बहुत खाना खाता है या बहुत कम खाता है, और वह जो बहुत कम सोता है या बहुत सोता है, वह कभी परमार्थ दुरुस्ती से नहीं कमा सकता। मगर जो शख़्स खाना खाने और सोने जागने में ऐतदाल रक्खेगा, वह परमार्थ की कमाई बखूबी कर सकेगा।